आंध्र प्रदेश सार्वत्रिक विश्वविद्यालय

A3_H3

हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहास

खण्डः 4–5

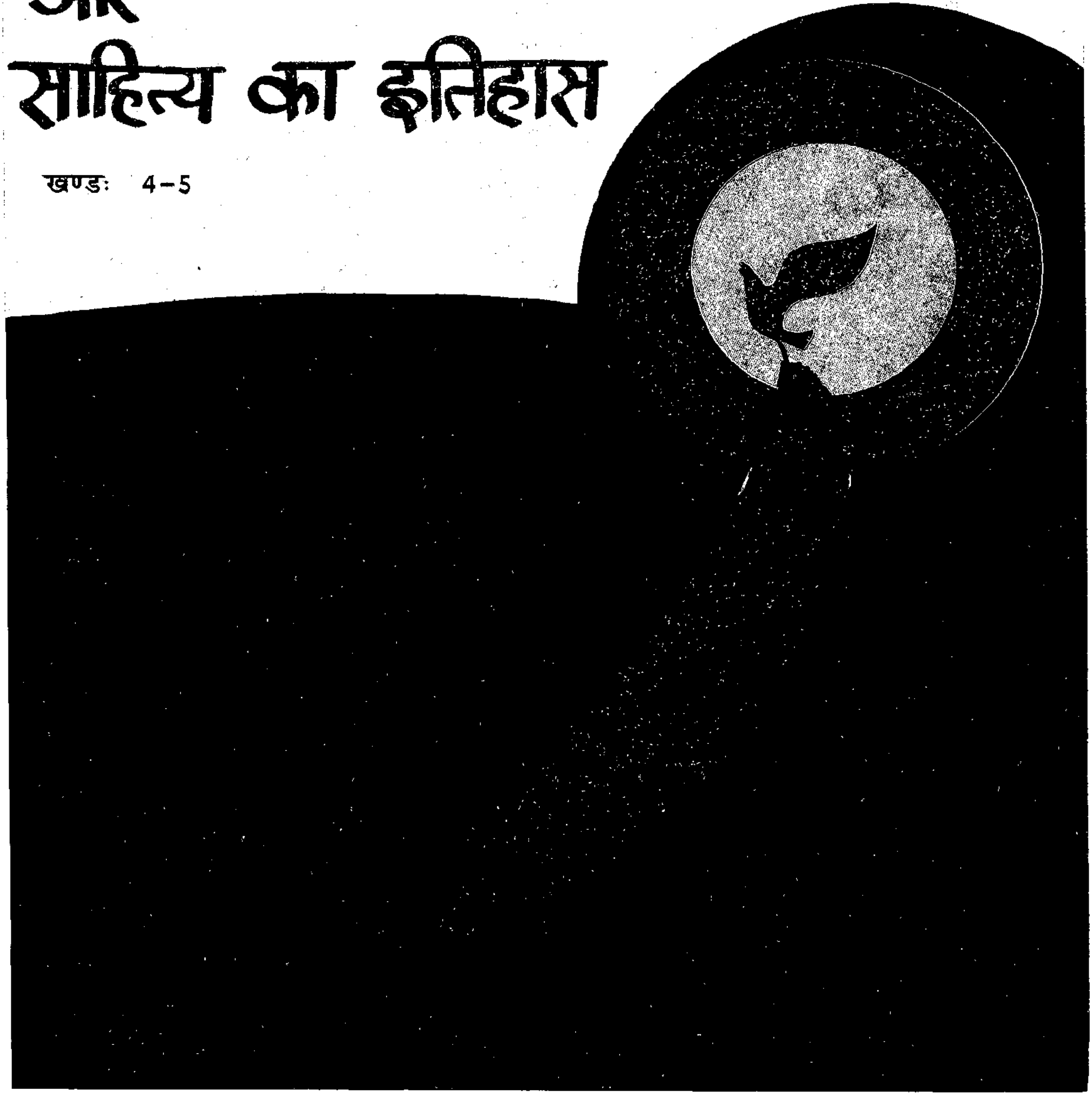

BRAOU

हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहास

खण्डः 4-5

खण्ड - 4 : हिन्दी साहित्य का आधुनिक काल
5 : समसामयिक सामाजिक-सांस्कृतिक गतिविधि

BRAOU

आंध्र प्रदेश सार्वत्रिक विश्वविद्यालय
1990-91

पाठ्य निर्माण मंडल

चैयरमैन :

डॉ. के. विश्वनाथ रेड्डी

सम्पादक :

डॉ. एस.टी. नरसिम्हाचारी

लेखक :

डॉ. बिजेन्द्र नारायण सिंह
डॉ. चंद्रभान रावत
डॉ. वैंकटरमण राव
डॉ. विजय राघव रेड्डी
डॉ. विष्णु स्वरूप
डॉ. दीलिप सिंह
डॉ. शशि मुदिराज
डॉ. सरोज पाण्डेय

संयोजक :

डॉ. यशवंत जाधव

प्रचारी
हिन्दी विभाग
आन्ध्र प्रदेश सार्वत्रिक विश्वविद्यालय
हैदराबाद

BRAOU

मुद्रण
आर्ट वेव्स,
ऑफसेट प्रिंटर्स,
मलकपेट, हैदराबाद.
फोनः 44323

प्राक्कथन

स्नातक स्तर पर हिन्दी भाषा और साहित्य का अध्ययन करने के लिए पुस्तकों का अभाव नहीं है। ऐसी स्थिति में सहज ही यह प्रश्न उठता है कि इस नई पुस्तक की क्या आवश्यकता है। पाठों के विभाजन, क्रम और शीर्षकों से स्पष्ट पता चलता है कि एक विशेष दृष्टिकोण से इस पुस्तक की रचना हुई है। वह है, सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ और दृष्टि। सामाजिक संदर्भ और दृष्टि से भाषा और साहित्य के बाह्य स्वरूप, विकास और प्रगति का बोध होता है तो सांस्कृतिक संदर्भ और दृष्टि के द्वारा भाषा और साहित्य की आंतरिक प्रकृति एवं चेतना की गतिविधि तथा उनके विकास-प्रसार का आकलन कर सकते हैं। एक के द्वारा लौकिक मूल्य-व्यवस्था से और दूसरे के द्वारा भाववादी मूल्य-व्यवस्था से अवगत होते हैं। इस दृष्टि का पाठ-रचना में पूर्ण निर्वाह हो पाया है, यह कहा नहीं जा सकता, लेकिन प्रयत्न अवश्य हुआ है।

भाषा, साहित्य, सामाजिक जीवन और संस्कृति इन चारों को एक दूसरे से अलग करके देखा-परखा नहीं जा सकता। भाषा और साहित्य, किसी राष्ट्र या जाति के सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन के अंग हैं। भारत की भौगोलिक स्थिति ऐसी है कि जहाँ उसका सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन मूलतः एक सूत्रता में बँधा हुआ है, प्रादेशिक जीवन की सामाजिक-सांस्कृतिक व्यवस्थाओं में कुछ वैशिष्ट्य भी परिलक्षित होता है। इस कारण तमिल संस्कृति, तेलुगु संस्कृति आदि पर विचार करते हुए प्रादेशिक भाषा साहित्यों के साथ उसका संबंध जोड़ा जा रहा है। हिन्दी की स्थिति इससे कुछ भिन्न है। वह उत्तर भारत के अनेक प्रदेशों की भाषा है। इन हिन्दी प्रदेशों की समष्टि को इतिहास में "मध्य देश" की संज्ञा दी गई है। उसके सामाजिक जीवन और सांस्कृतिक चेतना को अखिल भारतीय सामाजिक जीवन और संस्कृति से अलगाना कठिन है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि अनेक जातियाँ बाहर से आकर इस मध्य देश में प्रविष्ट हुईं। उनके सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन के संगम और समन्वय के द्वारा भारतीयता का विकास-प्रसार हुआ।

मध्य देश में प्रचलित और विकसित वैदिक भाषा, लौकिक संस्कृत, पाली, प्राकृत, अपभ्रंश और हिन्दी भाषा-साहित्यों की सुदीर्घ परंपरा इस बात का प्रमाण है। हिन्दी भाषा और साहित्य के प्रस्तुत अनुशीलन में प्रादेशिक सामाजिक-सांस्कृतिक तत्वों की चर्चा कम है, व्यापक भारतीय दृष्टि को ही ग्रहण किया गया है।

प्रथम खंड में हिन्दी भाषा और साहित्य की भूमिका के रूप में भारतीय सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन और भाषा-साहित्यों पर सामान्य विचार किया गया है। भारतीय जीवन के विकास की गति-विधि के समग्र आकलन के लिए लोक संस्कृति और साहित्य का ज्ञान भी आवश्यक है जो इस खंड का एक विचारणीय अंश है। हिन्दी भाषा और साहित्य को परंपरा के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखने और समझने की आवश्यकता भी इस खंड के पाठों से स्पष्ट हो जाती है। संदर्भ के अनुसार सैद्धांतिक सामग्री भी दी गई है।

हिन्दी भाषा पर विचार करते समय उस की प्रकृति, उसके विभिन्न रूप, उसकी बोलियाँ, उनका ऐतिहासिक विकासक्रम, उनका साहित्यिक प्रयोग, खडी बोली हिन्दी की नवीन प्रायोजनक मूलक शैलियाँ, उसके आधुनिकीकरण के प्रयत्न-सभी पहलुओं का ध्यान रखा गया है। छात्र को भाषा के ऐतिहासिक और आधुनिक दोनों संदर्भों से परिचित होना आवश्यक है।

BRAOU

हिन्दी साहित्य के इतिहास पर नई दृष्टि से विचार-विमर्श करने का प्रयास किया गया है। यह इतिहास-लेखन शुद्ध साहित्यिक न होकर सामाजिक-सांस्कृतिक है। साहित्य के इतिहास में युग की सामाजिक-सांस्कृतिक परिस्थितियों को पृष्ठभूमि के रूप में प्रस्तुत करने से काम नहीं चलता, युग की साहित्यिक चेतना और प्रवृत्तियों या काव्यधाराओं के साथ उनका संबंध-स्थापन भी होना चाहिए। साहित्य के इतिहास में सौंदर्य-संवेदना के विकास-परिवर्तन की आधार भूमि सामाजिक-सांस्कृतिक चेतना की गतिशीलता है। प्रस्तुत इतिहास-लेखन की दूसरी विशेषता, युग की साहित्यिक प्रवृत्तियों का विश्लेषण है; न कि साहित्यकारों के कृतित्व की आलोचना।

पाठ अनेक विद्वानों के द्वारा लिखे गये हैं। इसलिए दृष्टि, विचारधारा और भाषा शैली में एकरूपता संभव नहीं है। सूक्ष्म दृष्टि से पाठों का अध्ययन करने पर यह वैविध्य छात्रों के लिए लाभदायक ही होगा। पाठों की रचना में जो मौलिकता, गहराई और व्यापकता है, उसके लिए लेखक साधुवाद के पात्र हैं।

संपादक

BRAOU

विषयानुक्रमणिका

पृष्ठ संख्या

खण्ड–4: हिन्दी साहित्य का आधुनिक काल

इकाई–1 :	आधुनिक कालः सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ	1
इकाई–2 :	आधुनिक साहित्यः चिन्तन धाराएँ	11
इकाई–3 :	आधुनिक कालः साहित्यिक चेतना और सौंदर्य बोध	23
इकाई–4 :	साहित्य को प्रभावित करने वाले विभिन्न वाद	37
इकाई–5 :	हिन्दी काव्यधाराएंः प्रवृत्तिमूलक ऐतिहासिक विश्लेषण	45
इकाई–6 :	हिन्दी निबंधः ऐतिहासिक विकास और वर्गीकरण	52
इकाई–7 :	हिन्दी उपन्यास साहित्यः प्रवृत्तिमूलक ऐतिहासिक विश्लेषण	63
इकाई–8 :	हिन्दी कहानीः प्रवृत्तिमूलक ऐतिहासिक विकास	75
इकाई–9 :	हिन्दी नाटकः ऐतिहासिक विकास और नये रूप	85
इकाई–10 :	एकांकी और श्रव्य रूपकः ऐतिहासिक विकास-क्रम	97

खण्ड–5: सामाजिक-साहित्यिक गतिविधि

इकाई–1 :	भारतीय सामाजिक जीवन और संस्कृति (पूर्व आधुनिक काल)	107
इकाई–2 :	आधुनिक भारतीय जीवनः सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ	113
इकाई–3 :	समसामयिक संदर्भः सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश और चिंतन	127
इकाई–4 :	समसामयिक हिन्दी साहित्यः आधुनिकता बोध	144
इकाई–5 :	लोक संस्कृति और लोक साहित्य	163

BRAOU

BRAOU

इकाई-1: आधुनिक कालः सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ

1.0 विषय प्रवेश
1.1 उद्देश्य
1.2 पाठ-परिचय
1.3 मूलपाठ
 1.3.1 मध्यकालीनता से आधुनिकता की ओर
 1.3.2 आधुनिक जीवन में परिवर्तन
 1.3.3 नया आर्थिक ढाँचा
 1.3.4 यातायात के साधन
 1.3.5 प्रेस और जनमत
 1.3.6 भरतीय नवजागरण
 1.3.7 आधुनिक जीवन में परिवर्तन के कारण
 1.3.8 नवीन भारत- युरोप संपर्क
 1.3.9 युवा विद्रोह
1.4 सारांश
1.5 शब्दार्थ
1.6 अभ्यासार्थ प्रश्न
 1.6.1 'अ' श्रेणी के प्रश्न
 1.6.2 'ब' श्रेणी के प्रश्न
1.7 नमूने के प्रश्नोत्तर
 1.7.1 'अ' श्रेणी के प्रश्नोत्तर
 1.7.2 'ब' श्रेणी के प्रश्नोत्तर
1.8 पठनीय पुस्तकें

1.1 उद्देश्य

इस पाठ में आधुनिक काल के सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ पर विचार किया गया है। इसके अध्ययन से आप :

- आधुनिक भारतीय जीवन में परिवर्तन के कारणों पर प्रकाश डाल सकेंगे।
- भारतीय नवजागरण पर विचार कर सकेंगे।
- आधुनिक काल के सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ को स्पष्ट कर सकेंगे।
- आधुनिक चेतना के विकास पर प्रकाश डाल सकेंगे।
- भारत और युरोप के आधुनिक सांस्कृतिक संपर्क पर विचार कर सकेंगे।
- साठोत्तर युवा-विद्रोह और साहित्य पर उसके प्रभाव का निरूपण कर सकेंगे।

BRAOU

1.2 पाठ-परिचय

प्रस्तुत पाठ में आधुनिक हिन्दी साहित्य की भूमिका के रूप में आधुनिक सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भों का विश्लेषण किया गया है। मध्य कालीन मानसिकता से आधुनिक भावबोध की ओर प्रस्थान इस काल की विशेषता है। इसके अनेक कारण है। आधुनिक भारतीय जीवन और साहित्य में नवीन चेतना के विकास में सब से महत्वपूर्ण भूमिका भारतीय नवजागरण की है। स्वतंत्रता के बाद यह नव जागरण युवा पीढ़ी के चिंतन को नई दिशाओं की ओर ले रजा रहा है।

1.3 मूल पाठ

1.3.1 मध्यकालीनता से आधुनिकता की ओर

मध्यकालीन साहित्य का संबंध धर्म, अनैतिहासिक चेतना और मिथक से था/जिस प्रकार आज के जीवन की मुख्य प्रेरणा विज्ञान है उसी प्रकार मध्यकालीन जीवन का मुख्य प्रेरक धर्म है। मध्यकाल में एक ओरधर्म का पौराणिक रूप स्वीकृत था और दूसरा वह रूप भी था जिसका जन्म भक्ति आन्दोलन की विद्रोही चेतना से हुआ था, किन्तु एक बात निश्चित है और वह यह कि धर्म का स्वरूप चाहे- पौराणिक हो या विद्रोही चेतना से युक्त, लेकिन मध्यकाल में वह मुख्यतः भारतीय मनुष्य की पारलौकिक आकांक्षाओं से सम्बद्ध था, लेकिन आधुनिक काल में आकर नवजागरण की व्यवस्था को पूँजीवादी समाज व्यवस्था कहा जाता है और वह भौतिकता से ग्रस्त है। इस कारण नवजागरण के नेताओं को धर्म को भी लौकिक इच्छाओं का वाहक बनाना पड़ा।

हमारे देश में आधुनिक काल का आरंभ अंग्रेजी राज की स्थापना से होता है। यद्यपि अंग्रेज़ों ने इस देश में नई अर्थ-व्यवस्था, उद्योग-धंधे, रेल और तार तथा प्रेस आदि को अपने स्वार्थों के लिए स्थापित किया लेकिन इससे भारत को आधुनिक युग में प्रवेश करने में सुविधा हुई। रूढियां टूटने लगीं, भारतीय धर्म और संस्कृति पर ईसाई मिशनरियों ने कठोर आक्रमण किये और इस कारण धर्म के नये व्याख्याताओं को नई व्यख्याओं का कवच पहनाना पड़ा। नवजागरण के इन नेताओं ने ज्ञान-विज्ञान के आलोक में धर्म का नया विधान किया। धर्म की व्याख्या में अंधविश्वास के बदले विवेक का उपयोग होने लगा। इस युग में राजाराम मोहनराय और स्वामी दयानंद सरस्वती ये दो ऐसे व्यक्ति हुए जो मूलतः विवेक की नींव पर खड़े हैं। तर्क के आधार पर रूढ़ियों को छिन्न-विछिन्न करने की कोशिश हुई है।

इस समय दो तरह के धर्म सुधारक हुए। एक तो वे जो कि परंपरावादी है और दूसरा वे जो रैडिकल कहलाते है। असल में परंपरावादी न तो पूरी तरह परंपरावादी है और न रैडिकल पूरी तरह रैडिकल है। परंपरावादी भी थोड़ा बहुत रैडिकल है और रैडिकल भी बहुत दूर तक परंपरावादी है। इसी बात को विख्यात समाज शास्त्री डॉ. एम. एन. श्रीनिवासन ने इस प्रकार लिखा है- भारतियों को केवल स्याहीखोख का दर्जा देना तो स्पष्ट ही वाहियात है। यह कहना ठीक नहीं कि जिस किसी बात के सम्पर्क में वे आयें वह सब उन्होंने आत्मसात् किया, उसे दूसरों तक संप्रेषित कर दिया-यद्यपि कुछ एक व्यक्तियों के साथ निस्संदेह ऐसा हुआ। वास्तव में पश्चिम से कुछ बातें ग्रहण की गई और ग्रहण की गई बातों में भी रूपान्तर हुआ।"

BRAOU

रूपान्तरता की इस प्रक्रिया में यूरोप के विचारकों मिल, बेन्तम, काम्ते आदि से बहुत कुछ प्रेरणा ली गई। वर्णाश्रम व्यवस्था, छुआछूत आदि का विरोध तथा सामाजिक जीवन में स्वतंत्रता, समानता और भाईचारे आदि का समर्थन इस बात का प्रमाण है कि नवीन मानवतावाद का जन्म हो चुका था। हिन्दी के भक्ति-काव्य में भी एक प्रकार का मानवतावाद मिलता है किन्तु वह मानवतावाद ईश्वरवाद से जुड़ा हुआ है। मध्यकाल के भक्तकवि हिन्दू और मुसलमान के भेद पर यह कहकर प्रहार करते हैं कि वे सभी ईश्वर की संतान हैं। कर्मकांड का विरोध वे इसलिए करते हैं कि वह उन्हें ईश्वर तक पहुँचनेमेंबाधा दीखता है, पर आधुनिक काल में मनुष्य-मनुष्य की समता, स्वतंत्रता आदि को सामाजिक न्याय के आधार पर स्थापित किया गया है।

1.3.2 आधुनिक जीवन में परिवर्तन

उठारहवीं सदी में यूरोप का भारत में आगमन हुआ है और इसका दूरगामी प्रभाव समाज व्यवस्था पर पड़ा है। युरोप से संपर्क में आने पर हजारों वर्षों के अगतिशील भारतीय जीवन में स्पन्दन हुआ है। और उसके परिणाम-स्वरूप भारतीय मनुष्य की चेतना में बदलाव आये हैं। इसी बदलाव को आधुनिकता कहते हैं।

इस आधुनिकता की प्रक्रिया में कई कारण हैं जिनमें एक प्रमुख कारण है- नयी शिक्षा का सूत्रपात। शुरू में कंपनी सरकार की इच्छा अंग्रेजी भाषा के प्रचार की नहीं थी, तथापि आगे चलकर उसे इसी भाषा का प्रचार करना पड़ा। राजा राम मोहन राय पुरानी शिक्षा-प्रणाली के विरुद्ध थे। वे इस देश में नये ढंग की शिक्षा प्रणाली प्रचलित करना चाहते थे। उनका विश्वास था कि पुराने ढरे की पढ़ाई यदि जारी रही तो देश में किसी प्रकार का समाज सुधार नहीं हो सकता है। नयी शिक्षा-प्रणाली लागू करने के लिये लार्ड मैकाले ने बहुत कोशिश की। मैकाले की यह इच्छा थी कि भारतीय शिक्षित समाज भी अंग्रेजों की भांति ही सोचने-समझने लगे।

आधुनिक शिक्षा-पद्धति का आरंभ एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना है। इस नयी शिक्षा-प्रणाली के प्रसार में मुख्यतः तीन शक्तियों का योगदान है- (एक) ईसाई मिशन, (दो) अंग्रेज सरकार और (तीन) व्यक्तिगत प्रयास। सत्रह सौ तिरानवें (1793) ई. में मिशनरियों का एक दल कलकत्ते पहुँचा। इस दल में विलियम केरे भी थे। केरे और उनके दो सहयोगियों ने नये बंगाल के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। ईसाई मिशनरियों ने जो कुछ कार्य किया, उसके पीछे न तो कोई आध्यात्मिक प्रेरणा थी और न अनुग्रह की भावना। वे ईसाई धर्म के प्रचार में लगे हुए थे। तब भी स्त्री-शिक्षा के प्रसार में उनका महत्वपूर्ण योग है। दूसरा योगदान सरकारी प्रयत्न का है। 1765 से 1913 ई. तक ईस्ट इंडिया कंपनी ने शिक्षा के क्षेत्र में कुछ भी नहीं किया। लेकिन बाद में कलकत्ते का फोर्ट विलियम कालेज मुख्यतः कंपनी के सिविल सर्वेंट्स को अंग्रेजी शिक्षा देने के लिये खोला गया और बाद में लार्ड विलियम बेंटिंग के समय कंपनी ने नयी शिक्षा को पूरी तरह लागू कर दिया। आज तक भारतवर्ण का शिक्षित समाज मैकाले की इच्छा का शिकार बना हुआ है। भारतवर्ष के पिछले सौ, सवा सौ वर्षों का साहित्य इस नवीन परिवर्तित नीति से प्रभावित रहा है। सन् 1835 ई. में सरकार ने अंग्रेजी भाषा के माध्यम से नये ढंग की शिक्षा देने का आयोजन किया और सन् 1844 ई. में लार्ड हार्डिंग की वह महत्वपूर्ण घोषणा प्रकाशित हुई जिसके अनुसार सरकारी नौकरियों के योग्य वे ही समझे जाने लगे जिन्हें अंग्रेजी शिक्षा मिली।

इस प्रकार उन्नीसवीं सदी के पूर्वार्ध में नयी शिक्षा का जन्म हुआ और उसकी जड़ें मजबूत हुई। यहीं से अंग्रेजी भाषा ने इस देश की अपनी भाषाओं का स्थान दखल किया और धीरे धीरे शिक्षित जनता के चित्त में इस प्रकार जड जमा कर बैठी कि उससे आज तक विदेशी भाषा का पिंड नहीं छूट सका है।

इस नयी शिक्षा की बहुत तरह से निंदा की गई है किन्तु इस शिक्षा से हानि की तुलना में, लाभ कुछ अधिक हुआ है, इसे अस्वीकार करना व्यर्थ है। वर्तमान भारत का जन्म ही अंग्रेजी शिक्षा पद्धति के कारण हुआ है। समाज और देश के प्रति जो नवीन चेतना जागी, उसके भीतर से हमारी सारी राजनैतिक, सामाजिक और धार्मिक क्रांतियों का जन्म हुआ है। सामाजिक चेतना ही वह गुण है जो आज के औसत भारतवासी को प्राचीन अथवा मध्ययुगीन भारतवासी से विभक्त करता है और यह चेतना भारत को युरोपीय संपर्क से मिली है। अंग्रेजी का सार्वदेशिक प्रचलन के कारण देश की एकता बहुत ही पुष्ट हो गयी और सबसे बड़ी बात यह हुई कि जब अंग्रेजी भाषा भारत में अपना पांव फैला रही थी, ठीक इसी समय, युरोप में स्वतंत्रता, राष्ट्रीयता, प्रजातंत्र और उदार भावनाओं के जोरदार आंदोलन चल रहे थें। युरोप की वैचारिक क्रांतियों में उस समय भारत ने अपना योगदान, विचारक की हैसियत से भले ही न दिया हो, किन्तु उनका प्रभाव ग्रहण करने में यह देश युरोप से पीछे नहीं रहा।

1.3.3. नया आर्थिक ढाँचा

अंग्रेजी के आने से पहले भारतीय गांव का आर्थिक ढाँचा प्रायः अपरिवर्दनशील और स्थिर रहा है। गांव छोटे-छोटे गणतंत्र के समान थे। बाहरी दुनिया से इनका कोई संबंध नहीं था। जो आर्थिक परिवर्तन अंग्रेजों द्वारा ले आया गया वह मुसलमान आक्रमणकारियों द्वारा संभव नहीं था। अंग्रेजी ने सामंती व्यवस्था की जगह पूंजीवादी व्यवस्था लायी। सामाजिक विकास की दृष्टि से वे यहाँ के

BRAOU

लोगों से आगे थे। जब भूमि व्यक्तिगत संपत्ति हो गई और उत्पादन के वितरण का ढंग बदल गया तो पुराने सामाजिक संबंधों के स्थान पर नये सामाजिक संबंध बनने लगे। गांव की जड़ता टूटी, गांव और शहर एक दूसरे से संपर्क में आने के लिए बाध्य हुए। नये नये आर्थिक वर्गों का जन्म हुआ। उच्च वर्ग और श्रमिक के अतिरिक्त एक नये मध्य-वर्ग का उदय हुआ। इस देश में, इस वर्ग की भूमिका ही सबसे अधिक क्रांतिकारी कही जाएगी।

विज्ञान :

उन्नीसवीं सदी के आरंभ में इस देश को, जिस पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान के संपर्क में आना पड़ा, वह भारत के ज्ञान-विज्ञान से प्रकृति में ही भिन्न था। भारत की पुरानी शिक्षा पद्धति जीर्ण-शीर्ण और निष्प्राण हो गयी थी। जो बातें पुरानी पोथियों में लिखी हुई थीं, लोग उन्हें ही पढ़ते जा रहे थे। व्याकरण, साहित्य, दर्शन और ज्योतिष के सिवा यदि कोई और पाठ्यक्रम था तो वह अत्यंत साधारण गणित का था। इतिहास-भूगोल, ज्यामिति और स्वास्थ्य विज्ञान तक का प्रचार इस देश से उठ गया था। पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान नये जीवन-संदर्भों की ताजगी लियेहुए था। भारतीय ज्ञान-विज्ञान का लक्ष्य आध्यात्मिक और पारलौकिक था तो पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान का लक्ष्य भौतिक और इहलौकिक।

1.3.4 यातायात के साधन

उन्नीसवीं शताब्दी में यातायात के साधनों में परिवर्तन हुए। ईस्ट इंडिया कंपनी ने रेल, बस, स्टीम शिप आदि का उपयोग यातायात के साधनों के लिये किया। रेल और सड़कों ने कृषि को व्यावसायिक बनाने में मदद पहुँचायी। दूरियां सिमट कर कम हो गई। किताबों, पत्र-पत्रिकाओं आदि को दूर-दूर तक सरलता पूर्वक पहुँचाया जाने लगा। इससे पुराने, संकीर्ण विचारों को तोड़ने में सहायता मिली।

1.3.5 प्रेस और जनमत

BRAOU

अठारहवीं शताब्दी में ही मद्रास, कलकत्ता, हुबली, बंबई आदि स्थानों में छापखाने स्थापित हुए। मुद्रणालयों की स्थापना के कारण विचारों के प्रचार-प्रसार की ही सुविधा नहीं मिली बल्कि समाचार-पत्रों के माध्यम से विचारों का विनिमय भी होने लगा। भारतीय नवजागरण के लिये प्रेस बहुत ही कारगर साधन साबित हुआ। नवजागरण के नेताओं ने इस माध्यम का पूरा-पूरा उपयोग किया। छापखाने का प्रभाव साहित्य के लिये भी अत्यंत हितकर सिद्ध हुआ। भारतेन्दु के समय में शायद ही कोई ऐसा साहित्यकार रहा हो जो किसी न किसी पत्र-पत्रिका से सम्बद्ध न दिखाई पड़ता हो।

1826 में हिन्दी का पहला पत्र "उदन्त मार्तण्ड" प्रकाशित हुआ। 1834 में कलकत्ते से "प्रजामित्र" का प्रकाशन होने लगा। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में देश में पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन और भी अधिक संख्या में होंने लगा। इससे नए विचारों के आदान-प्रदान में सुविधा हुई। प्रेस की स्वतंत्रता को लेकर आरंभ से ही अंग्रेजों और भारतवासियों में टकराहट शुरू हुई। मुद्रणालयों की स्थापना के कारण सामाजिक, सांस्कृजिक, राजनीतिक, धार्मिक आदि विचारों के प्रचार-पसार की सुविधा ही नहीं मिली बल्कि समाचार-पत्रों के माध्यम से विचारों का विनिमय भी होने लगा। भारतीय नव जागरण के लिए प्रेस का वरदान बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ। नवजागरण के नेताओं ने इस माध्यम का पूरा उपयोग किया।

1.3.6 भारतीय नवजागरण

अंग्रेजी राज की स्थापना होने से भारत की अर्थनीति में बुनियादी परिवर्तन आया। अब अर्थव्यवस्था व्यक्ति की स्वतंत्रता पर आधारित होती है। पूर्व-पूँजीवादी समाज में व्यक्ति, कुल और लिंग के आधार पर एक विशेष सामाजिक व्यवस्था का अंग हो जाता है, पर नया पूँजीवादी समाज इन बंधनों से मुक्त होकर ही विकसित हो सकता है। यही कारण है कि भारतीय नवजागरण के मूल में व्यक्ति की स्वाधीनता का विशेष महत्व है।

भारत में नवजागरण उन्नीसवीं सदी के आरंभ से माना जाता है। यह नवजागरण युरोप की वैज्ञानिक संस्कृति और पुरानी भारतीय धार्मिक संस्कृति की टकराहट के फलस्वरूप उत्पन्न हुआ। नवजागरण के प्रवर्तक राजा राममोहन राय ने अपना चिंतन उपनिषदों से ग्रहण किया, पर उन्होंने हिंदू आराधना शैली की परंपरागत ऐकान्विक पद्धति को छोड़कर यूरोपीय चर्च का संगठन स्वीकार किया जिसमें पूजन की सामूहिक पद्धति प्रचलित थी। ब्रह्म समाज की स्थापना उन्होंने 1828 में की, जिसकी प्रेरणा से फिर महाराष्ट्र में "प्रार्थना समाज" का जन्म हुआ। हिन्दी क्षेत्र में स्वामी दयानंद ने आर्य समाज की नींव डाली। डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी ने ठीक ही लिखा है कि "यह सिर्फ संयोग नहीं है कि इन संस्थाओं के नामकरण के उत्तर-पक्ष में समाज पर विशेष बल दिया गया है। हिन्दू ऐकांतिक जीवन-पद्धति के विरूद्ध उठे समाज के रूप में गठित करने का यह प्रयास बड़े सजग रूप में नवजागरण के मनीषियों ने किया।" इन तीनों मुख्य समाजों की कई साझी विशेषताएँ परिलक्षित की जा सकती है। ये निर्गुण ब्रह्म के उपासक हैं, आराधना की सामूहिक शैली पर बल देते हैं, हिन्दू समाज के दो पिछले समूहों नारी और शूद्र को शेष उच्चवर्गीय पुरुषों के साथ समानता का दर्जा देते हैं। उपनिषद और गीता इनके चिंतन के केन्द्र में हैं, संगठन का ढाँचा ईसाई चर्च का स्वीकार करते हैं। भारतीय हिंदू विचारधारा और पाश्चात्य ईसाई संगठन का सामंजस्य-यह इनके आंदोलन का मूलमंत्र है। आध्यात्म को नवजागहण पहले लोकसेवा से जोड़ता है और फिर लोक सेवा को क्रमशः राष्ट्रीय भावना से/राममोहन राय से लेकर महात्मा गांधी तक की यह विचार धारा और कर्म-यात्रा है जिसे बनाने और बढ़ाने में रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानंद, लोकमान्य तिलक, अरविंद और राधाकृष्ण जैसे संतों और विचारकों का योगदान रहा है।

इस नवजागरण की एक बड़ी परिणति मनुष्य की अवधारणा में परिवर्तन के रूप में हुई। भक्ति काल में यह चित्रण ईश्वर का मनुष्य के रूप में हुआ है। आगे फिर रीतिकाल में ईश्वर और मनुश्य दोनों का मनुष्य के रूप में चित्रण हुआ है। आधुनिक काल में आकर मनुष्य सारे चिंतन का केन्द्र बन गयो है और आधुनिक काल का सारा साहित्य मानवतावादी साहित्य हो गया है।

1.3.7 आधुनिक जीवन में परिवर्तन के कारण

आधुनिक साहित्य में दृष्टि बदली और दृष्टि बदलने के मूल में विचार, चिंतन और दर्शन की नई दिशाएँ हैं। अंग्रेज इस देश में पूरी तरह तब स्थापित हुए जब इंग्लैंड में औद्योगिक क्रांति आरंभ हो गई थी और वे अपने साथ कुछ नए राजनीतिक मूल्य और औद्योगिक क्रांति के यंत्र लेकर आए। अंग्रेज उत्पादन-क्रियाओं की एक ऐसी व्यवस्था के प्रतिनिधि थे, जो उस समय भारत में प्रचलित सामंती अर्थ-व्यवस्था से अधिक आगे बढ़ी हुई थी। अर्थात् वे पूंजीवादी व्यवस्था के प्रतिनिधि थे। यही कारण है कि अंग्रेज भारतीय आर्थिक-व्यवस्था के मूलाधार में परिवर्तन कर सके। इस प्रकार वह परंपरागत कृषि-व्यवस्था टूटने लगी, जिसकी बुनियादी इकाई ग्राम-समुदाय था। ब्रिटिश विजेताओं के उद्देश्य जो भी रहे हों, सामंतवाद पर उन्होंने जो घातक हमले किये, उनके फलस्वरूप भारत को आधुनिक प्रगति की दिशा में आगे बढ़ने में मदद मिली। प्रसंगात् मार्क्स ने ठीक ही लिखा कि यह सच है कि हिंदुस्तान में इंग्लैंड ने निकृष्टतम उद्देश्यों से प्रेरित होकर सामाजिक क्रांति की थी और अपनी उद्देश्यों को साधने का उसका तरीका भी बहुत मूर्खतापूर्ण था किंतु, प्रश्न यह नहीं है। प्रश्न यह है कि क्या एशिया की सामाजिक व्यवस्था में एक बुनियादी क्रांति के बिना मानव जाति अपने लक्ष्य तक पहुँच सकती है? यदि नहीं तो, मानना पड़ेगा कि इंग्लैंड के चाहे जो गुनाहरहे हो, उस क्रांति को लाने में वह इतिहास का एक अचेतन उपकरण था। भारत को ब्रिटिश पूँजीवादी उद्योग-धंधों का एक खेतिहर उपांग बनाने के उद्देश्य से ब्रिटिश सत्तारूढ वर्ग को भारत में रेले शुरू करने पर मजबूर होना पड़ा। इस नए कदम के आर्थिक और राजनीतिक परिणाम बहुत दूरगामी हुए।

धर्म की मध्यकालीन दुनियाँ को एक जबर्दस्त धक्का विकासवाद के सिद्धांत के कारण लगा। पुराणों ने संसार को परमात्मा की सृष्टि बतलाया था। यह सिद्धांत अगतिशीलता का सिद्धांत था। संसार एकबारगी ही पूरा नहीं बना। डार्विन ने विकासवाद के सिद्धांत के द्वारा जीव-सृष्टि के क्रमशः विकास की एक रूपरेखा प्रस्तुत की। इससे संसार में प्रगति की अवधारणा स्थापित हुई। सब कुछ गति

में है, सब कुछ प्रवाह म है। पशु-पक्षी, मनुष्य, आर्थिक साधन, समाज सब में विकास का क्रम बना रहता है और तो और यह ब्रहमांड भी एक विकासशील प्रक्रिया है। इस सिद्धांत ने सृष्टि के ईश्वरपरक उत्पत्तिमूलक सिद्धांत को ध्वस्त कर दिया और परिणामतः सृष्टि के केन्द्र में मनुष्य की सर्वोच्चता स्थापित हुई।

मनुष्य के ईश्वरत्व के अपहरण में डार्विन के विकासवाद के बाद फ्रायड के मनोविश्लेषण शास्त्र का बहुत प्राभाव पड़ा। डार्विन ने यह बतलाया था कि विकास के क्रम में बंदर की दुम कहीं छूट गयी और तब मनुष्य बना। यानी मनुष्य पशु ही का विकसित रूप है। फ्रायड ने मनोविश्लेषण शास्त्र के द्वारा यह बतलाया कि दुम भले ही झड़ गयी हो, किंतु आदमी भीतर से उतना ही पशु है। उसकी काम-वासना पशुओं की काम वासना से भी अधिक प्रबल हो गई है, उसके अहंकार, उसकी दुष्टता को जन्म देते हैं और पशु के सारे शील मनुष्य में उसी प्रकार संक्रमित हो गए हैं। इस प्रकार, फ्रायड ने मनुष्य की दुर्बलताओं को उभारकर रखा। आधुनिक साहित्य की रचना में इस जीवन दृष्टि का बहुत प्रभाव पड़ा है।

जीवन-दृष्टि को बदलने में मार्क्सवाद और समाजवादी आंदोलन का प्रभाव भी बहुत ही महत्वपूर्ण है। सर्वाधिक महत्वपूर्ण राजनीतिक घटना एक बदलती शक्ति के रूप में समाजवाद का उदय और सोवियत संघ का अस्तित्व में आना था। उन्नीसवीं सदी के अंत में ही विवेकानंद ने घोषणा की थी कि भारत में समय का तकाजा यही है कि श्रमिक वर्गों के नेतृत्व में एक समाजवादी समाज की स्थापना हो। रूस की साम्यवादी क्रांति का प्रभाव भारतीय जीवन के प्रत्येक पहलू पर-राजनीतिक, आर्थिक और सैद्धांतिक पहलू पर-पड़ा। मार्क्सवाद के उदय ने न केवल श्रमिक जनसमुदाय को उनके संघर्षों में प्रोत्साहित और अपने देश की स्वतंत्रता के लिए जूझने तथा भारत में एक नई समाज-व्यवस्था का निर्माण करन के लिए अनुप्राणित किया, वरन् उसने भारतीय चिंतन के इतिहास में एक नए युग का सूत्रपात भी किया। इसका कारण यह था कि यह प्रभाव पूँजीवादी व्यवस्था के अधिकाधिक गहरे होते संकट के संदर्भ में फैल रहा था। बड़े पैमाने पर बेरोजगारी, भूखमरी, कारखानों के बंद होने, लाखों किसानों और व्यापारियों की आर्थिक तबाही, इन सब बातों ने पूँजीवादी समाज व्यवस्था के प्रति विश्व की जनता की आस्था को छिन्न-भिन्न कर दिया था। कोई आश्चर्य नहीं कि नैतिक और बौद्धिक क्षेत्रों में भी संकट स्पष्ट दिखाई दैता था। पूँजीवादी व्यवस्था के सिद्धांतकारों में निराश और सिनिकवाद फैल रहा था। परिस्थिति का विरोधाभास यह था कि पूँजीवादी मूल्यों की चुनौती ठीक ऐसै काल में दी जाने लगी, जो विज्ञान औरतकनीक की अभूतपूर्व प्रगति का काल था। भारत का बुद्धिजीवी मार्क्सवाद से बहुत प्रभावित हुआ। मार्क्सवाद के इस महत्व को रेखांकित करते हुए जवाहरलाल नेहरू ने "आत्मकथा" में लिखा था "मार्क्सवाद का पूरा मूल्य मुझे इस बात में निहित मालूम होता है कि उसमें मतवाद का अभाव है, उसमें एक विशेष दृष्टिकोण और उपागम पर जोर दिया जाता है और क्रियाशीलता पर बल दिया जाता है। यह दृष्टिकोण हमें समकालीन सामाजिक वातावरण को समझने में मदद करता है और अक्रियाशीलता तथा परिस्थिति से निकलने का मार्ग भी दिखाता है।"

1.38 नवीन युरोप से भारत का संपर्क

युरोप का भारत-आगमन भारतीय ज्ञान के लिए नहीं बल्कि मसालों के व्यापार और ईसाईयत के प्रचार के लिए हुआ था। सूरोप भारत को धनधान्य से पूर्ण देश समझता था, नवाबों और मुगल बादशाहों का देश समझता था। किन्तु जब फ्रांसीसी विद्वान दुपरोन ने उपनिषदों का अनुवाद प्रकाशित कराया, तब इन उपनिषदों के अनुवाद के अध्ययन से जर्मनी में विचारों का जागरण कुछ इसी प्रकार आया जैसे रिनासां के काल में यूनानी प्राचीन साहित्य के संपर्क से सारे युरोप में जागा था। जोहौन फिक्रे और पाल दूसौन ने भी वेदांत के सत्य को संसार का सबसे बड़ा सत्य माना। मैक्समूलर के कामों से यह बात प्रत्यक्ष हो गई कि संसार की प्राचीनतम भाषा हिन्दी नहीं, संस्कृत है और विश्व की प्राचीनतम जाति यूनानी और यहूदी नहीं, बल्कि हिंदू और ईरानी जातियाँ है।

BPRAGU

लेकिन, जब से विज्ञान का उदय हुआ, संसार के अधिकांश देशों में अतीत और वर्तमान के बीच संग्राम-सा छिड़ गया और अधिकांश देशों में आज अतीत पराजित और वर्तमान सत्ताधीन है। लेकिन, विशुद्ध मशीनी संसार, मशीनी की आलोचना करते हुए अपनी पहली अमरीकी यात्रा के दौरान महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने कहा था कि पश्चिमी सभ्यता की आत्मा मशीन से बनी है, यह मशीन बराबर चलती रहती है और बराबर अपनी गति को कायम रखने के लिए वह मनुष्यों का उपयोग ईंधन के रूप में करती है। राममोहन राय से लेकर विवेकानंद, गाँधी, राधाकृष्णन और जवाहरलाल नेहरू तक हमारे सभी चिंतक जिस एक बात पर जोर देते आए हैं, वह यह है कि भारत की सफलता इस बात में है कि वह पुरातन और नवीन के बीच समन्वय का संधान करे। पश्चिमी ज्ञान का जो श्रेष्ठ अंश है, उसका सामंजस्य हम अपने प्राचीन ज्ञान से बिठाना चाहते हैं। एक हाथ में धर्म का कमल और दूसरे में विज्ञान की मशाल यही वह कल्पना है, जिसे चरितार्थ करके भारत अपने ध्येय में सफल हो सकता है। पश्चिम ने विज्ञान को पाकर जिस चीज को खो दिया, भारत अगर विज्ञान के साथ उस वस्तु को भी कायम रख सके तो इससे कल्याण केवल भारत का ही नहीं, सारे संसार का हो सकता है।

भारत के प्राचीन ज्ञान और पश्चिम की नवीन संस्कृति के समन्वय की कीमत वही समाज दे सकता है जो विलास से बचने के लिए स्वेच्छया अमीरी का त्याग कर सकता है। व्यापार पर पहरा देने के लिए सारी रात टेलिफोन सुननेवाला सेठ, धन संचय की चिंता में खाद्य-सामग्रियों और दवाइयों में मिलावट करनेवाला सौदागर, अनावश्यक चिंताओं और व्यर्थ की दौड़-धूप से थके शरीर को शराब से सींचनेवाला अमीर और हर औरत से मुहब्बत करनेवाले नौजवान, ये सब-के-सब उस सभ्यता के स्वाभाविक परिणाम हैं, जो विज्ञान की सहायता से उत्पन्न हुए हैं। विज्ञान भी हमारे वश में तभी रहेगा जब हम यह मानकर चलें कि विज्ञान से हमें अपनी वाजिब जरूरतों की पूर्ति में सहायता लेनी है।

इन सारी बातों से हमारे साहित्य में बदलाव आया है। अब साहित्य में देवताओं और अवतारों का स्थान मनुष्य ने ले लिया है तथा भावुकता, सांप्रदायिकता और मध्यकालीनता का स्थान बुद्धिवाद, धर्म-निरपेक्षता और आधुनिकता ने ले लिया है। मनुष्य अब मिथकीय काल में नहीं जीता है और उसका साहित्य भी उस काल से बाहर आ गया है। यह साहित्य में ऐतिहासिक बोध के विकास का काल है। इसलिए साहित्य में जो सबसे प्रमुख प्रवृत्ति विकसित हुई, वह यथार्थवाद की प्रवृत्ति है। यह यथार्थवाद विज्ञान से मनुष्य के सारोकार से उत्पन्न साहित्य की दृष्टि है। हिन्दी साहित्य में छायावाद युग आदर्श और यथार्थ के संघर्ष का युग है। वह श्रद्धा और इड़ा के संघर्ष का युग है। बाद के हिन्दी साहित्य में श्रद्धा परास्त हो जाती है और उसका स्थान इड़ा ले लेती है। प्रसंगात् कवि दिनकर ने "चक्रवाल" की भूमिका में ठीक ही लिखा कि आज की कविता की राह जुही और चमेली कुंजोंसे होकर नहीं बल्कि समर्थ बुद्धि की कड़ी चट्टान से होकर जानेवाली है। आश्चर्य नहीं कि आठवें दशक में विचार काव्य का आंदोलन चला और उसने सारे हिन्दी साहित्य को छा लिया।

BPAOU

1.3.9 युवा-विद्रोह

युवा लेखन में विद्रोह का तेवर मिलता है। नई कविता के बाद कई प्रकार के रचना-आंदोलन उभकर आए दिखाई देते हैं। इन सभी आदोलनों के बीच हमारे युग की युवा पीढ़ी का विक्षोभ, आक्रोश और विद्रोह भाव मूल प्रेरक शक्ति के रूप में देखा जा सकता है। विक्षोभ और विद्रोह एक अवधि के बाद रचनात्मक स्तर पर अपने लिए एक सीमा बना लेते है क्योंकि तब लेखक की दृष्टि विद्रोह के अलंबन से पूरी तरह बँध जाती है और स्वतंत्र-ढंग से सोच पाना बाधित होता है। इस स्वाधीन चिंतन और स्वतंत्र विकास में परंपरा और विद्रोह दोनों के पूर्वाग्रह आड़े आ सकते हैं। विद्रोह को परिभाषित करते रहने की प्रक्रिया इसीलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि तभी लेखक सोच पाता है कि उसे स्वयं क्या कहना है।

युवा लेखक में यह विद्रोह कई दिशाएँ प्राप्त कर सका है। साठोत्तरी हिन्दी साहित्य में नई कविता के बाद कई प्रकार के रचना-आंदोलन उभकर आए-भूखी पीढ़ी, विद्रोही पीढ़ी, अन्यथावाद, अकहानी, अकविता आदि। इन सभी आंदोलनों के बीच हमारे युग की युवा पीढ़ी का विक्षोभ, आक्रोश और विद्रोह-भाव मूल प्रेरक शक्ति के रूप में देखा जा सकता है। पर, ऐसा लगता है यह विक्षोभ आक्रोश और विद्रोह का भाव तथा दिशा ठीक-ठीक परिभाषित नहीं की जा सकी है, न तो रचना के क्षेत्र में और न विचार के क्षेत्र में स्वतंत्रा के पूर्व आक्रोश विदेशी सत्ता के प्रति सहज रूप में था। स्वतंत्रता के बाद आक्रोश की दिशा स्पष्ट नहीं रह गई है।

स्पष्ट ही, ज्ञान-विज्ञान और दर्शन-संबंधी नए विचार-सूत्र भारतीय चेतना को पिछले डेढ सौ वर्षों से प्रभावित करते रहे हैं। धीरे-धीरे मध्यकालीन बोध और मध्यकालीन मनुष्य तथा मध्यकालीन चेतना ढलते चले गए हैं और पश्चिम से भारत के संपर्क में नया बोध, नया मनुष्य और नई संवेदना बनती आई है। आधुनिक साहित्य में आधुनिक मनुष्य की पहचान उभरकर आ रही है। औद्योगिक और तकनीकी सभ्यता के कारण बहुत कुछ ढह गया है, बहुत कुछ बदल गया है। भारतीय संस्कृति अभी तक अनेक आक्रामक संस्कृतियों को झेलती आई है और समरस करती आई है। इस यांत्रिक युग से वह कैसे निपटेगी, यह देखने की बात है। और उसी टक्कर की प्रति-सभ्यता वह विकसित कर सके, यह भी आसान नहीं। ऐसी स्थिति में बीसवीं शती का यह द्वन्द्व उसके भावी विकास में निर्णायक भूमिका अदा करेगै। इस नए द्वन्द्व में हिन्दी मानस किस प्रक्रिया को अपनाये, यह विचारणीय है। संस्कृतियों के संघर्ष में उसने विरुद्धों का सामंजस्य किया। अब इस नई टकराहट में पश्चिम की यांत्रिक सभ्यता सामने है जो अपनी प्रकृति में जड़ है। इस संघर्ष से सांप्रतिक और भावी हिन्दी साहित्य की प्रकृति की रचना होगी।

1.4 सारांश

इस प्रकार, आधुनिक साहित्य की यात्रा मध्यकालीनता से आधुनिकता की ओर रही है। इस आधुनिक बोध के मूल में आधुनिक जीवन में परिवर्तन छिपा हुआ है। और इस परिवर्तन के कारण हैं। अंग्रेजी राज की स्थापना से पुराने भारत का नवीन युरोप के साथ संपर्क हुआ है। इससे बदलाव की प्रक्रिया शुरू हुई है। इस बदलाव में एक प्रमुख कारण है नई शिक्षा-पद्धति की शुरूआत। दूसरा प्रमुख कारण हैः आर्थिक ढाँचे में परिवर्तन। अब सामंतवाद के छोटे उत्पादन का स्थान कारखानों के बड़े उत्पादन साधनों ने ले लिया। इस कारण पूंजीवाद की प्रतिष्ठा हुई और इससे भारतीय जीवन की बुनियाद में परिवर्तन आया। इसके साथ ही विज्ञान और टेक्नोलौजी के कारण संचार-साधन विकसित हुए तथा दूरियाँ घटीं। यातायात के नवीन विकसित साधनों का प्रयोग होने लगा। फिर प्रेस की स्थापना के कारण विचारों के प्रसार की सुविधा बढ़ी। इन सारे कारणों से नवजागरण का आगमन हुआ है। नवजागरण नए संदर्भों में नये सिरे से भारत की अस्मिता की तलाश है। नई शिक्षा और ज्ञान-विज्ञान के संपर्क से भारत की चेतना पर पड़ी हुई झुर्रियाँ हट गई और भारत फिर नई आत्मा लेकर उभर सका। इतिहासकार ने इसी बात को नवजागरण कहा है। जब कभी कोई नया युग आता है तब उसके वाहक बड़े-बूढ़े नहीं, बल्कि नौजवान हुआ करते हैं। युवा पीढ़ी रूढियों को तोड़ती है और पुराने कायदों की पाबंदी नहीं मानती है। युवा विद्रोह जो दिखलाई पड़ रहा है, उसकी यही पृष्ठभूमि है। हमारा आधुनिक साहित्य वस्तुतः आधुनिक जीवन की उपज है।

1.5 पारिभाषिक शब्दावली

आधुनिकता	- आधुनिक समाज की एक प्रवृत्ति जिसमें वैज्ञानिक परिदृष्टि, तर्कमूलकता और बुद्धिवाद आदि विशेषताएँ मिलती हैं।
नई शिक्षा	- अंग्रेजों के द्वारा आरंभ की गई अंग्रेजी शिक्षा।
नवजागरण	- यह अंग्रेजी के "रिनासाँ" का हिन्दी अनुवाद है। यह किसी जाति की चेतना के नवीकरण का बोध कराता है।

पूँजीवाद :

उत्पादन के बड़े और विकसित साधनों का उपयोग इस प्रकार की अर्थ-व्यवस्था में होता है। इसके लिए बड़े पैमाने पर पूंजी का संचय किया जाता है।

बुद्धिजीवी :

जो शरीर का श्रम नहीं करता और बुद्धि जिसकी जीविका का आधार है, उसे बुद्धिजीवी कहते हैं, जैसे वकील, डॉक्टर, प्रोफेसर आदि।

मध्यकालीनता :

इतिहास में सातवीं सदी से लेकर अठारहवीं सदी तक का समय मध्यकाल कहलाता है। इस अवधि के बीच विकसित होनेवाले भावबोध और मूल्यबोध को मध्यकालीन या मध्यकालीनता कहा जाता है।

मार्क्सवाद :

कार्ल मार्क्स ने वर्ग-संघर्ष के सिद्धांत और सर्वहारा के अधिनायकत्व के द्वारा जिस मत की प्रतिष्ठा की, उसे मार्क्सवाद कहा जाता है।

यथार्थवाद :

वस्तुजगत और भवजगत के घटना-तथ्यों को यथावत् अंकित करना यथार्थवाद कहलाता है।

रैडिकल :

जो बुनियाद में ही परिवर्तन लाना चाहे, उसे रैडिकल कहते हैं।

सामंती व्यवस्था :

यह ऐसी आर्थिक, सामाजिक व्यवस्था है जिसमें छोटे पैमाने के उत्पादन होते हैं और उत्पादन के साधनों तथा राज्य व्यवस्था पर जमींदारों का अधिकार होता है।

BRAOU

1.6 अभ्यास के प्रश्न

1.6.1 'अ' श्रेणी के प्रश्न

250 शब्दों में उत्तर दीजिए:

1. आधुनिक भारतीय जीवन में परिवर्तन के कारणों पर प्रकाश डालिए।
2. भारतीय नवजागरण की व्याख्या कीजिए।
3. आधुनिक जीवन में परिवर्तन की दिशाओं का निरूपण कीजिए।
4. सामाजिक-सासंकृतिक संदर्भ में हिन्दी साहित्य का मध्यकालीन से आधुनिकता की ओर प्रस्थान स्पष्ट कीजिए।

1.6.2 'ब' श्रेणी के प्रश्न

125 शब्दों में उत्तर दीजिए:

1. आधुनिक काल में नवीन आर्थिक व्यवस्था के विकास पर प्रकाश डालिए।
2. आधुनिक चेतना के विकास में अंग्रेज के योगदान का विश्लेषण कीजिए।
3. भारत और युरोप के आधुनिक सांस्कृतिक संपर्क पर विचार कीजिए।
4. साठोत्तर युवा-विद्रोह और साहित्य पर उसके प्रभाव का निरूपण कीजिए।

1.7 नमूने के प्रश्नोत्तर

1.7.1 'अ' श्रेणी के प्रश्नोत्तर

प्रश्न :आधुनिक भारतीय जीवन में परिवर्तन के कारणों पर प्रकाश डालिए। (250 शब्दों में)
उत्तर :उठारहवीं शताब्दी में अंग्रेजों के आगमन ने भारतीय समाज व्यवस्था पर गहरा प्रभाव डाला। इससे अगतिशील भारतीय जीवन की जड़ता टूटी, मनुष्य की चेतना में बदलाव आया। अंग्रेजों ने भारत में नयी शिक्षा आरंभ की। इस महत्वपूर्ण कार्य में तीन शक्तियों ने प्रमुख भूमिका निभाई- ईसाई मिशनरियाँ, अंग्रेज सरकार तथा व्यक्तिगत प्रयास। ईसाई मिशनरियों ने स्त्री शिक्षा का प्रसार किया। अंग्रेज सरकार ने सरकारी अधिकारियों को अंग्रेजी शिक्षा देने के लिए कलकत्ते में फोर्ट विलियम कालेज की स्थापना की। अंग्रेजी शिक्षा ने भारतीय जीवन को अत्यधिक प्रभावित किया। इसने समाज और देश के प्रति नवीन चेतना जगायी, जो राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक क्रांतियों के मूल में है। यही चेतना मध्यकालीन भारत से आधुनिक भारत को अलग करती है। युरोप में चल रहे स्वतंत्रता, राष्ट्रीयता, प्रजातंत्र आधुनिक भारत को अलग करती है। युरोप में चल रहे स्वतंत्रता, राष्ट्रीयता, प्रजातंत्र आदि के आंदोलनों से भारतीयों का परिचय हुआ और उन्होंने उन आंदोलनों से प्रभाव और प्रेरणा ग्रहण की। अंग्रेजो के आने से भारत के ढाँचे में बदलाव आया। उन्होंने सामंती व्यवस्था की जगह पूंजीवादी व्यवस्था स्थापित की। व्यक्तिगत भूसंपत्ति का प्रचलन हुआ, गाँवों और शहरों का संपर्क बढ़ा, नए आर्थिक वर्गों का जन्म हुआ। आधुनिक भारतीय जीवन के परिवर्तन में विज्ञान की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। नई शिक्षा के द्वारा पाश्चात्य विज्ञान भारत पहुँचा। रेल, बस, स्टीमशिप आदि यातायात के साधन प्रचलित हुए और प्रेस की स्थापना हुई। समाचार पत्रों का प्रकाशन आरंभ हुआ और विचार-विनिमय होने लगा। भारतीय नवजागरण के लिए प्रेस अत्यंत कारगर साधन साबित हुआ। नवजागरण के नेताओं ने इसका पूरा उपयोग किया। इन्हीं सब कारणों से आधुनिक भारतीय जीवन में परिवर्तन आए।

1.8 पठनीय पुस्तकें

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
2. आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास : डॉ. बच्चन सिंह
3. हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास : डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी
4. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और नवजागरण की समस्याएँ : डॉ. रामविलास शर्मा
5. महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नवजागरण : डॉ. रामविलास शर्मा

BRAOU

इकाई-2: आधुनिक साहित्यः चिन्तन धाराएँ

2.0 विषय प्रवेश
2.1 उद्देश्य
2.2 पाठ-परिचय
2.3 मूलपाठ
 2.3.1 सुधारवाद
 2.3.2 पुनरुत्थान वाद
 2.3.3 नवजागरण और राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम
 2.3.4 क्रांति की भावना
 2.3.5 नवीन चिंतनः तकनीकी विकास और औद्योगिक जीवन की समस्याएँ
 2.3.6 अस्तित्ववाद और नया साहित्य
 2.3.7 साहित्य में आधुनिक बोध
2.4 सारांश
2.5 शब्दार्थ
2.6 आभ्यासार्थ प्रश्न
 2.6.1 'अ' श्रेणी के प्रश्न
 2.6.2 'ब' श्रेणी के प्रश्न
2.7 नमूने के प्रश्नोत्तर
 2.7.1 'अ' श्रेणी के प्रश्नोत्तर
 2.7.2 'ब' श्रेणी के प्रश्नोत्तर
2.8 पठनीय पुस्तकें

BRAOU

2.1 उद्देश्य

इस पाठ में आधुनिक साहित्य की चिंतन धाराओं पर प्रकाश डाला गया है। इसके अध्ययन से आप :

- भारतीय सुधारवाद की प्रमुख विशेषताओं पर प्रकाश डाल सकेंगे।
- हिन्दी साहित्य पर पुनरुत्थानवाद के प्रभाव को रेखांकित कर सकेंगे।
- भारतीय नवजागरण की चेतनाओं पर प्रकाश डाल सकेंगे।
- साहित्य में आधुनिक बोध पर विचार कर सकेंगे।
- अस्तित्ववाद और बुद्धिवाद के साहित्यिक दृष्टिकोण पर प्रकाश डाल सकेंगे।
- साहित्य विकास में विभिन्न चिन्तनधाराओं की भूमिका को स्पष्ट कर सकेंगे।

2.2 पाठ-परिचय

युग परिवेश या परिस्थितियों का जब साहित्य पर प्रभाव पड़ता है, उसकी प्रवृत्ति में परिवर्तन होता है। इससे गहरा प्रभाव युग की चिन्तन धाराओं का होता है। परिस्थितियाँ साहित्य के बाह्यस्वरूप को निर्धारित करती हैं तो चिन्तन धाराएँ उसकी आन्तरंग प्रकृति और प्रवृत्ति को।

मनुष्य अपने समय से जूझते हुए जीवन की समस्याओं का समाधन ढूँढने का बौद्धिक प्रयास करता रहता है। इस प्रयास में नवीन चिन्तन धाराओं का विकास होता है। बुद्धिजीवी साहित्यकार इन विचारधाराओं से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। ये उसकी रचना धर्मिता और सौंदर्यबोध को

निर्धारित करती है। महान साहित्यकार -युगद्रष्टा होने के साथ साथ युग स्रष्टा होकर चिन्तन की नई दिशाओं का प्रसार करता है।

2.3 मुलपाठ

आधुनिक साहित्य को प्रभावित करनेवाले तत्वों में परिस्थितियों के अतिरिक्त चिंतन धाराओं का भी योगदान है। साहित्य की दिशा मुख्यतया समाज की अंतर्धाराओं की टकराहट से निर्धारित होती है। साहित्य का फूल आकाश में नहीं खिलता है। कल्पना, भावना और शिल्प सब का संबंध सामाजिक संदर्भ से होता है। जैसे-जैसे समाज का चिंतन अपनी दिशा बदलता है, वैसे-वैसे साहित्य भी अपना रुप-रंग ग्रहण करता है। मध्यकाल का भारत अनेक रूढ़ियों, कुप्रथाओं और बुरे रिवाजों से जकड़ा हुआ था और इसलिए वह सभी दृष्टियों से अगतिशील बन गया था। गतिशील समाज की पहचान यह होती है कि उसका सामाजिक विकास रुकता नहीं है। उत्तरकालीन भारतीय समाज पतनशील सामंतवाद का निकृष्टतम रूप था और उसके प्राणों में कहीं भी स्पन्दन सुनाई नहीं दे रहा था। जब अंग्रेज भारत में आए और अठारहवीं सदी के उत्तरार्द्ध तथा उन्नीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में भारतीय शासन पर उनका आधिपत्य हुआ तब उन्होंने भारत में सामंती व्यवस्था को खत्म कर बुर्जुआ राजनीतिक व्यवस्था की स्थापना की और इसके दूरगामी राजनीतिक और सामाजिक परिणाम हुए।

2.3.1 सुधारवाद

उन्नीसवीं सदी का भारत सुधारवाद के द्वारा आधुनिक युग में प्रवेश करता है। उस समय अंग्रेजों के आने से भारत में जो आर्थिक और राजनीतिक विकास हुए, वे पुरानी सड़ी-गली धार्मिक मान्यताओं, रूढ़िग्रस्त रस्म-रिवाजों और भीतर से खोखले धार्मिक संबंधों से कतई मेल नहीं खाते थे। ऐसी परिस्थितियों में, स्वभावतः ही, आर्थिक और राजनीतिक संघर्षों ने धर्म का चोगा धारण किया। परिवर्तन के समर्थकों में भी दो अंतर्विरोधी और प्रायः परस्पर टकरानेवाली प्रवृत्तियाँ दृष्टिगोचर होती है। बुद्धिजीवियों का एक हिस्सा पश्चिम के आक्रमणों से राष्ट्रीय संस्कृति की सुरक्षा के लिए पुरानी धार्मिक परंपराओं के पुनरुत्थान को एक महत्वपूर्ण तत्व मानता था। ये लोग पश्चिम की भौतिकवादी संस्कृति के मुकाबले भारत की आध्यात्मिक संस्कृति को खड़ा करते थे। उनका दावा था कि भारतीय संस्कृति पश्चिमी संस्कृति से श्रेष्ठतर है और वे हर किस्म के विदेशी सांस्कृतिक प्रभाव की निंदा करते थे। वे हिंदू धर्म के परंपरागत रीति-रिवाजों, रस्मों और कर्मकांडों के दृढ़ता से पालन पर जोर देते थे। हालाँकि वे कुछ पुराने सड़े0गले रिवाजों का विरोध भी करते थे। दूसरी तरह के नेता वे बुद्धिजीवी थे, जो समय आवश्यकताओं के अनुसार हिन्दू धर्म और समाज में सुधार के दृढ़ समर्थक थे। उनका कहना यह था कि आधुनिक विज्ञान और संस्कृति की सहायता से एक श्रेष्ठतर और महानतर भविष्य की ओर उत्सुकता से बढ़ा जाय। सुधारवाद और पुनरुत्थानवाद के अंतर को समझाते हुए लाला लाजपतराय ने लिखा था- "सुधारवादी तर्क और युरोपीय समाज के अनुभव पर अधिक निर्भर करते हैं, जबकि पुनरुत्थानवादी शास्त्रों, अतीत के इतिहास तथा जनता की उन परंपराओं और देश की उन संस्थाओं की ओर अधिक उन्मुख हैं, जो उस समय प्रचलित थीं, जब यह राष्ट्र गौरव के शिखर पर था।" हिंदू धर्म सुधारवादियों के रक्त में भी था, किंतु वे अन्य धर्मों के विरोधी नहीं थे। ये सुधावादी हिंदू धर्म, इस्लाम और ईसाई धर्म में समन्वय के लिए प्रयत्नशील थे और यहाँ तक कि एक विश्व धर्म का स्वप्न भी देखते थे। मोटे तौर पर कहा जाय तो वे वस्तुतः मानवतावाद पर अधिक बल दे रहे थे और मनुष्य-मनुष्य के बीच भेदभाव समाप्त करने के इच्छुक थे। किन्तु, अपने इन प्रयत्नों में वे पश्चिमी विज्ञान और उसके साथ जुड़े हुए तर्कयुक्त दृष्टिकोण को भी आत्मसात् करना चाहते थे। सुधारवाद के इन बड़े नेताओं में बंगाल के राजा राममोहन राय और महाराष्ट्र के महादेव गोविन्द रानाडे के नाम लिए जा सकते है।

BRAOU

सुधारवाद की अंतर्वस्तु मूलतः सामंत-विरोधी और उपनिवेशवाद-विरोधी है। वे जनता को सड़े-गले सामाजिक संबंधों के खातमें के लक्ष्य के लिए कार्य करने और नए संबंधों और विचारों का सृजन करने के लिए प्रोत्साहित करते थे। यही कारण है कि उन्होंने इतिहास में एक प्रगतिशील भूमिका अदा की। यह सुधारवाद भारतीय राष्ट्रीय नवजागरण का पहला चरण है। प्रत्येक राष्ट्रीय नवजागरण में अतीत की उपलब्धियों को बढ़ा-चढ़ाकर पेश करने की प्रवृत्ति मौजूद रहती है। भारत में नवजात राष्ट्रवाद की राजनीतिक और आर्थिक चेतना ने स्वयं को धार्मिक सुधार के रुप में अभिव्यक्त किया और उसका एक ऐसे राष्ट्रीय नवजागरण आंदोलन के रूप में विकास किया जिसने प्रतिक्रियावादी सामाजिक शक्तियों के संरक्षण में प्रचलित पुराने सड़े-गले रीति-रिवाजों और धार्मिक अंधविश्वासों को ठुकरा दिया। राजा राम मोहन राय इस आंदोलन के प्रथम महत्वपूर्ण नेता हैं। रवीन्द्र नाथ ठाकुर ने ही कहा है कि "राजा राममोहन राय ने ही भारत में आधुनिक युग का सूत्रपात किया"।

यह सुधारवाद मध्ययुगीन रूढ़िवादिता से आधुनिकता की ओर प्रस्थान का प्रथम चरण है। इस्लाम और ईसाई धर्म के सिद्धांतों ने यद्यपि राजा राममोहन राय के मस्तिष्क पर गहरा प्रभाव डाला था, तो भी उनका मौलिक दृष्टिकोण हिंदू धर्म पर ही आधारित था। वे पतनोन्मुख समाज-व्यवस्था के बहुत से आचार-विचारों और मान्यताओं के कट्टर विरोधी थे। वे हिंदुओं के बहुदेववाद और कर्मकांडों, पुनर्जन्म और अवतारों की उनकी अवधारणा, मूर्ति-पूजा, पशु-बलि और सती-प्रथा जैसे उनके रस्म-रिवाजों को स्वीकार करने को तैयार नहीं थे। उन्होंने हिंदू धर्मों के साथ युद्ध करने का काम अपने हाथों में लिया और सदियों से एकत्र हुए अंध विश्वास रूपी कूड़ा-करकट को फेंकने का बीड़ा उठाया। वे यह चाहते थे कि हिंदू धर्म को एक सच्चे राष्ट्रीय धर्म के रूप में पुनरूज्जीवित किया जाय जो सामाजिक जीवन की नई परिस्थितियों के अनुरूप हो। उन्होंने एकही ईश्वर और मानवीय मूल्यों की स्वीकृति पर आधारित एक विश्व-धर्म की भी कल्पना की। उन्होंने जनता को आहवान किया कि वह मूर्ति-पूजा और बहुदेववादी कर्मकांडों को त्याग दे और शुद्ध निराकार ब्रह्म की उपसना करे। उनके अनुसार एकतत्ववाद भारतीय एकता का प्रतीक था। उन्होंने पश्चिमी विज्ञान द्वारा सृजित नए मूल्यों को आत्मसात् करने और उन्हें भारत के परंपरागत मूल्यों से सम्मिश्रित करने का प्रयत्न किया ताकि नए युग की चुनौती का सामना किया जा सके।

BRAOU

सुधारवाद का हिन्दी साहित्य पर प्रभावः

सुधारवाद का मुख्यः लक्ष्य यह था कि हिन्दू जाति की एकांकित भावना का निरसन करके उसे एक समाज के रूप में गठित किया जाय। ब्रह्म समाज, प्रार्थना समाज, आर्य समाज और आगे चलकर स्वयं भारतेन्दु द्वारा संस्थापित "तदीय समाज" के नामकरण और उनके कार्यक्रम इस मान्यता को भली-भाँति पुष्ट करते हैं। राष्ट्रीयता से प्रेरित होकर आधुनिक हिन्दी साहित्य के प्रवर्तक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने स्वदेशी वस्तुओं के व्यवहार का प्रतिज्ञापत्र 23 मार्च 1868 की "कविवचन सुधा" में प्रकाशित किया। बंगाल में आरंभ हुई जागरण की लहर मध्यदेश में पहुँचकर अधिक प्रखर रूप में राष्ट्रीय हो जाती है और उसके वाहक बनाते हैं भारतेन्दु हरिश्चन्द्र। यह ध्यान रखने की बात है कि भारतेन्दु युग का जागरण हिन्दू पुनरुत्थान नहीं है। अपने बलियावाले व्याख्यान (1884) में भारतेन्दु कहते हैं "इस महामंत्र का जप करो, जो हिन्दुस्तान में रहे चाहे किसी रंग, किसी जाति का क्यों न हो, वह हिन्दू है। हिन्दू की सहायता करो। बंगाली, मराठी, पंजाबी, मद्रासी, वैदिक, जैन, ब्रह्मों, मुसलमान सब एक का हाथ पकड़ो।" स्वदेशी की भावना और राष्ट्र की धर्म निरपेक्ष परिकल्पना में भारतेन्दु का चिंतन अग्रगामी कहा जायगा। भारतेन्दु युग के साहित्य में समाज सुधार संबन्धी समस्त प्रवृत्तियाँ दिखाई देती है जैसे विधवा विवाह, जातिप्रथा का विरोध, सती-प्रथा का खण्डन आदि।

2.3.2 पुनरुत्थानवाद

पुनरुत्थानवाद सुधारवाद से भिन्न प्रकृति की चीज है। सुधारवादियों के तर्कयुक्त और विज्ञानसम्मत विचारों ने हिन्दू समाज को हिला दिया था, किन्तु गहरी जड़े जमायी बैठी धार्मिक मान्यताओं और सामाजिक रस्म-रिवाजों ने अलग हटकर युक्तियुक्त, वैज्ञानिक विचार और रहन-सहन के आधुनिक ढंग को आसानी

से स्थान नहीं दे दिया। प्रतिक्रियावादी वर्ग अपने निहित स्वार्थों को न्यायसंगत ठहराने के लिए ही वेदों और शास्त्रों से उद्धरण नहीं देते थे, वरन् ऐसा वे ब्रिटिश सरकार के समर्थन के लिए भी करते थे। बुद्धिजीवियों का एक हिस्सा पश्चिम के आक्रमणों से राष्ट्रीय संस्कृति की सुरक्षा के लिए पुरानी धार्मिक परंपराओं के पुनरुत्थान को एक महत्वपूर्ण तत्व मानता था। ये लोग पश्चिम की भौतिकवादी संस्कृति के मुकाबले भारत की आध्यात्मिक संस्कृति को खड़ा करते थे। उनका दावा था कि भारतीय संस्कृति पश्चिमी संस्कृति से श्रेष्ठतर है और वे हर किस्म के विदेशी सांस्कृतिक प्रभाव की निंदा करते थे। वे हिन्दू धर्म के परंपरागत रीति-रिवाजों, रस्मों और कर्मकांडों के दृढ़ता से पालन पर जोर देते थे हालाँकि वे कुछ पुराने सड़े-गले रिवाजों का विरोध भी करते थे। उस समय पुनरुत्थानवादियों का विरोध करते हुए महाराष्ट्र के सुधारवादी नेता न्यायमूर्ति महादेव गोविन्द रानाडे ने ठीक ही तर्क दिया था- "हमसे जब अपनी संस्थाओं और रस्म-रिवाजों का पुनरुत्थान करने को कहा जाता है तो लोग बहुत परेशान हुए जाते हैं कि आखिर किस चीज़ का पुनरुत्थान करें। क्या हम नियोग का पुनरुत्थान करें, जिसके अंतर्गत अपने भाइयों की विधवा पत्नियों से हमें पुत्रोत्पत्ति करनी चाहिए? क्या हम उस उन्मुक्तता का पुनरुत्थान करें, जो विवाह-बंधनों के मामलों में ऋषियों और ऋषि-पत्नियों के बीच व्याप्त थी? क्या हम वर्ष प्रतिवर्ष बलि दिए जानेवाले पशुओं के अंधारों को फिर खड़ा करके बलि-प्रथा का पुनरुत्थान करें? क्या हम वामांगी शक्ति-पूजा का पुनरुत्तान करें, जिसकी वीभत्सताओं और व्यावहारिक विषय संयोग की कोई सीमा नहीं थी? क्या हम सती प्रथा और बाल-हत्याओं का पुनरुत्थान करें? क्या हम एक पत्नी पर बहुत से पति थोपने का पुनरुत्थान करें? अथवा एक पति के गले में अनेकों पत्नियों को मढ़ देने की प्रथा का पुनरुत्थान करें? इन उदाहरणों से स्पष्ट हो जाना चाहिए कि पुरानी प्रथाओं और रस्म-रिवाजों का पुनरुत्थान करने से हमारा कल्याण नहीं होगा, न ही यह व्यावहारिक रूप से संभव है।"

तब भी जातीय जागरण के समय हर जाति में अतीत की गहराइयों का अनुसंधान होता आया है। इस भारतीय पुनरुत्थान के सबसे बड़े नेता स्वामी दयानन्द सरस्वती हुए। उन्नीसवीं सदी के भारतीय नवोत्थान के इतिहास का पृष्ठ बतलाता है कि जब युरोपवाले भारतवर्ष में आए तब यहाँ के धर्म और संस्कृति पर रुढ़ि की परतें जमी हुई थीं एवं युरोप के मुकाबले में उठने के लिए यह आवश्यक हो गया था कि ये परतें एकदम उखाड़ फेंकी जाएँ और हिन्दुत्व का वह रूप प्रकट किया जाय जो निर्मल और बुद्धिगम्य हो। दयानन्द सरस्वती के मत से यह हिंदुत्व वैदिक हिन्दुत्व ही हो सकता था। किन्तु, यह हिन्दुत्व पौराणिक कल्पनाओं के नीचे दबा हुआ था। उसपर अनेक स्मृतियों की धूल जम गई थी एवं वेद के बाद के सहस्रों वर्षों में हिंदुओं ने जो रुढ़ियाँ और अंधविश्वास अर्जित किये थे, उनके रूहों के नीचे यह धर्म दबा पड़ा था। राम मोहन राय, केशवचन्द्र सेन, रानाडे आदि से भिन्न स्वामी दयानन्द की विशेषता यह रही कि उन्होंने धीरे-धीरे पपड़िया तोड़ने का काम न करके उन्हें एक ही चोट से साफ कर देने का निश्चय किया। दयानन्द के अन्य समकालीन सुधारक केवल सुधारक मात्र थे, किन्तु दयानन्द क्रांति के वेग से आए और उन्होंने निश्छल भाव से यह घोषणा कर दी कि हिन्दू धर्म में केवल वेद ही मान्य हो, अन्य शास्त्रों और पुराणों की बातें बुद्धि की कसौटी पर कसे बिना मानी नहीं जानी चाहिए। छः शास्त्रों और अठारह पुराणों को उन्होंने एक ही झटके में साफ कर दिया। वेदों में मूर्तिपूजा, अवतारवाद, तीर्थों और अनेक पौराणिक अनुष्ठानों का समर्थन नहीं था। अतएव स्वामीजी ने इन सारे कृत्यों और विश्वासों को गलत घोषित किया।

स्वामी दयानन्द के पुनरुत्थानवाद का एक कुफल आर्यवाद है; जिसका फल आज भी देश को भोगना पड़ रहा है। स्वामीजी ने तो संस्कृत की सभी सामग्रियों को छोड़कर केवल वेदों को पकड़ा और उनके सभी अनुयायी भी वेदों की दुहाई देने लगे। परिणाम इसका यह हुआ कि वेद और आर्य, भारत में ये दोनों प्रमुख हो उठे और इतिहासवालों में भी यह धारणा चल पड़ी कि भारत की सारी संस्कृति और सभ्यता आर्यों की रचना है। भारत में जो अनेक जातियों का समन्वय हुआ था, उनकी ओर उस समय किसी ने देखा भी नहीं। हिन्दू सारे भारत में बसते है तथा उनकी नसों में आर्य के साथ द्राविड़ रक्त भी प्रवाहित है। हिन्दुत्व के उपकरण केवल संस्कृत में ही नहीं बल्कि संस्कृत के ही समान प्राचीन भाषा तमिल में भी उपलब्ध है और दोनों भाषाओं में निहित उपकरणों को एकत्र किये बिना हिंदुत्व का पूरा चित्र नहीं बनाया जा सकता।

BRAOU

हिन्दी साहित्य पर प्रभावः

अगर हम "आर्यसमाज" और स्वामी दयानन्द सरस्वती की उपेक्षा कर तत्कालीन साहित्यिक इतिहास लिखने का प्रयत्न करें तो यह भी इतिहास विरोधी दृष्टिकोण होगा। "हिन्दी साहित्यः उसका उद्‌भव और विकास" नामक अपने इतिहास-ग्रंथ में डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी काफी हद तक इस प्रसंग में सचेत और वस्तुनिष्ठ हैं। उनका कहना है कि 1865 के बाद "आर्य समाज" ने अपने युगांतरकारी नेता महर्षि दयानन्द के नेतृत्व में अनेक समस्याओं पर उग्र विवाद का आरंभ कर दिया। "इन दिनों शास्त्रार्थों की धूम मच गई। उत्तर-प्रत्युत्तर से, कटाक्षों से और व्यंग्यों से सामयिक पत्र भरे रहते थे और हिन्दी का भावी गद्य नवीन शक्तियों से सुसज्जित हो रहा था। इन वाद-विवादों ने भाषा को बहुत समृद्ध किया और प्रौढ़ता प्रदान करने में बड़ी सहायता पहुँचाई।" ध्यान देने की बाद है कि पुनरुत्थान के धार्मिक और सामाजिक वाहन के रूप में डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने "ब्रह्म समाज" "सनातन धर्म" आदि संगठनों की भूमिका को ही दिखाने का प्रयत्न किया है।

हिन्दी क्षेत्रों में पुनरुत्थान का नेतृत्व चूँकि स्वामि दयानन्द सरस्वती ने किया था, अतएवं यहाँ पुनरुत्थान के कवि मैथिलीशरण गुप्त हुए। यह बात सुनने में कुछ विचित्र-सी लगती है, क्योंकि गुप्तजी आर्यसमाजी नहीं, सनातनी कवि हैं। पुनरुत्थान ने हमारी सारी संस्कृति, संपूर्ण इतिहास और समग्र विश्वास पर जो नया आलोक फेंका, उसका अधिक से अधिक अभिव्यक्ति, सबसे प्रथम, मैथिली शरण गुप्त की कविताओं में ही हुई। मैथिली शरण में भी पुनरुत्थान का परिपाक पहले-पहल "साकेत" में आकर मिलता है। "साकेत" के राम हैं तो वही पात्र, जिनके दर्शन हमें वाल्मीकि अथवा तुलसीकृत रामायण में होते हैं, किन्तु पुनरुत्थान के भावों से प्रभावित कवि ने उन्हें सर्वथा भिन्न दृष्टि से देखा है। "साकेत" के कवि ने राम के बहाने मानव की ईश्वरता चित्रित की है। बुद्धिवादी युग ने मैथिली शरण की कृति को प्रभावित किया है और इसलिए राम का रूप उन्होंने वैसा ही अंकित किया, जैसा उनका युग चाहता था। पुनरुत्थान के समय यह मान्यता जो र पकड़ी कि अवतार और युग-पुरुष के बीच बहुत कुछ समता होती है, यह मान्यता भी राम के व्यक्तित्व के पीछे काम करती है-

मैं आर्यों का आदर्श बताने आया,
जन-सम्मुख धन को तुच्छ जताने आया॥
भव में नव वैभव व्याप्त कराने आया,
नर को ईश्वरता प्राप्त कराने आया।
संदेश यहाँ मैं नहीं स्वर्ग का लाया।
इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया॥

BRAOU

किंतु, इससे भी विचित्र यह बात है कि "साकेत" के राम स्वामी दयानन्द के मतों से प्रभावित दिखते हैं। प्राचीन और मध्यकालीन भारतवासियों को इतना ही विदित था कि रामचन्द्र रावण से लड़ने को दक्षिण गए थे, किंतु पुनरुत्थान का प्रकाश अब अतीत पर पड़ने लगा और तब राम की लंका-यात्रा की एक और व्याख्या निकल आई कि वे वेद तथा आर्यत्व का भी प्रचार करने को दक्षिण गए थे। "साकेत" के राम वैदिक धर्म तथा आर्य सभ्यता के प्रचारक हैं। यथाः

उच्चरित होती चले वेद की वाणी,
गूँजे गिरि-कानन-सिंधु-पार कल्याणी।
अम्बर में पावन होम-धूम गहरावें।
वसुधा का हरा दुकूल भरा लहरावे।

इस आख्यान के बावजूद द्विवेदी युग में पौराणिक और ऐतिहासिक वस्तु ग्रहण करने के मूल में पुनरुत्थान वादी प्रवृत्ति ही परिलक्षित होती है। पुनरुत्थान भारतेन्दु और उसके बाद के साहित्य को अनेक रूपों में प्रभावित करता रहा।

2.3.3 नवजागरण और राष्ट्रीय स्वाधीनता-संग्राम

भारतेन्दु-युग के साथ जिस नवजागरण का अभ्युदय होता है, उसके प्रेरण कारणों की छानबीन करना आवश्यक है। कुछ विद्वानों की यह मान्यता है कि समाज-सुधार की भावना से लेकर ब्रिटिश हुकूमत के विरोध के मूल में निहित राष्ट्रीयता की भावना तक सब कुछ पश्चिम की नई सभ्यता, ज्ञान-विज्ञान और नई शिक्षा से संपर्क के कारण संभव हो पाया। जातीय स्वत्व का बोध, राष्ट्रीय संपदा और श्रमशक्ति के शोषण की पहचान, विदेशी हुकूमत के जुए के नीचे पिसती हुई भारतीय जनता के उत्पीड़न का ज्ञान - क्या पश्चिम की नई सभ्यता के संपर्क से उत्पन्न हुआ था? यह विचित्र बात है कि जो लोग शोषण और उत्पीड़न कर रहे थे, उन्हीं लोगों को अपनी जागृति का प्रेरक मान बैठें। कुछ इतिहासकार और समालोचक भारतेन्दुकालीन नवजागरण की पृष्ठभूमि में 1856 की जनक्रांति को नहीं देखते, बल्कि 1856 में बंबई, कलकत्ता और मद्रास में स्थापित अंग्रेजी शिक्षा-पद्धति के विश्वविद्यालय, कंपनी राज्य में फैलाए गए तथाकथित ज्ञान विज्ञान और अंततः भारत-युरोप संपर्क को ही नवजागरण का मूल प्रेरण मानते हैं। भारत में राष्ट्रीयता के उद्‌भव के सवाल पर अंग्रेज दो बड़े-बड़े दावे करते हैं, उन्हीं दावों के बहकावे में कुछ भारतीय बुद्धिजीवी भी आ गए हैं। भारतीय स्वाधीनता आंदोलन के इतिहासकारों में भी कुछ अंग्रेज भक्त हैं, जो भारत के राष्ट्रीय आंदोलन के उद्‌भव के मूल में अंग्रेज विद्वानों द्वारा लिखित ज्ञान-विज्ञान के साहित्य को ही प्रमुख रूप से देखा करते हैं। "संस्कृति के चार अध्याय" नामक पुस्तक में कवि दिनकर ने भी इसी मत की पुष्टि करते हुए यह लिखा कि "वर्तमान भारत का जन्म ही अंग्रजी शिक्षा-पद्धति की गोद में हुआ है।" सवाल यह है कि क्या भारत में राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन इसलिए आरंभ हुआ कि यहाँ के शिक्षित वर्ग को उसके शासकों ने बर्क, मिल और मैकाले की रचनाओं को पढ़ना सिखा दिया था। वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण से देखा जाय तो साफ पता चलता है कि भारत में स्वाधीनता की भावना यहाँ कि अपनी सामाजिक परिस्थितियों से पौदा हुई भी। रजनी पाम दत्त ने इस प्रसंग में ठीक ही लिखा है कि हमारा स्वाधीनता आंदोलन इन सामाजिक तथा आर्थिक शक्तियों से पैदा हुआ, जो इस शोषण के कारण भारतीय समाज में उत्पन्न हो गई थीं। वह इस कारण पैदा हुआ कि भारत में पूँजीपति वर्ग जन्म ले चुका था और शिक्षा की जैसी भी व्यवस्था होती, ब्रिटिश पूँजीपति वर्ग के प्रभुत्व के साथ उसका टकराव अवश्य ही होता।

जब मैकाले ने भारत की सदियों से चली आ रही पुरानी शिक्षा-व्यवस्था नष्ट कर नए ढंग की साम्राज्यवादी अंग्रेजी शिक्षा की शुरूआत की तो उसका लक्ष्य भारत की जनता में राष्ट्रीय भावना पैदा करना न था। बल्कि उसकी जड़ खोदना था। रजनी पाम दत्त के शब्दों में कहे तो कहा जा सकता है कि "यह साम्राज्यवाद की पूरी व्यवस्था में निहित अंतर्विरोधों का परिणाम था कि शिक्षा की जो पद्धति साम्राज्यवाद के हितों की रक्षा करने के लिए जारी की गई थी, उसी ने भारत के लोगों के लिए इंग्लैंड के जनवादी जन-आंदोलनों और जन-संघर्षों से, मिल्टन, शेली तथा बायरन जैसे कवियों से प्रेरणा प्राप्त करने का भी रास्ता खोल दिया। इंग्लैड की यह महान जनवादी धारा उसी प्रकार की निरंकुशता से लड़ रही थी, जिस प्रकार की निरंकुशता भारत में कायम थी।" विचित्र बात यह है कि "भारतेन्दु की विचारधारा" नामक अपनी पुस्तक में डॉ. लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय ने राष्ट्रीय भावना के नवोत्थान का सारा श्रेय अंग्रेज शासकों को दिया है।

अंग्रेज गवर्नर जनरल हिन्दुस्तान की जनता के जातीय नवोत्थान और क्रंतिकारी प्रतिरोध से डरा हुआ था। इससे पता चलता है कि हमारे देश में राष्ट्रीय भावना का चढ़ाव कब और क्यों उत्पन्न हुआ। डॉ. रामविलास शर्मा ने भारतेन्दुकालीन नवजागरण की व्याख्या इसी पृष्ठभूमि में की है। "हिन्दुस्तान की राष्ट्रीय चेतना सीधे अंग्रेज डाकुओं के कारनामों का विरोध करके बढ़ी। इसलिए हिन्दुस्तान की राष्ट्रीय भावनाओं का तमाम नया साहित्य अंग्रेजी राज का विरोधी साहित्य है। अंग्रेज साम्राज्यवादियों ने भारतीय जनता को गुलामी की शिक्षा दी, सरकार उसके राष्ट्रीय सम्मान और उसकी प्रतिराध-भावना को कुचलने की कोशिश की। इसके बावजूद जनता के समर्थ लेखक देश की संस्कृति की रक्षा और विकास के लिए आगे बढ़े।" भारतेन्दुकालीन हिन्दी नवजागरण सन् 56 की गदर के प्रभाव से उत्पन्न हुआ। इस हिन्दी नवजागरण के मूल तत्व हैं- सामंत विरोध और साम्राज्य-विरोध, जन-संस्कृति से लगाव, प्रेम-भक्ति और उदारतावाद, स्वदेश-प्रेम और स्वदेशी का आंदोलन, साहित्य को सामाजिक परिवर्तन

का अस्त्र समझकर जन-जीवन के सान्निध्य में साहित्य-रचना, विज्ञान, शिल्प और उद्योग-धंधों के विकास से देश की प्रगति का स्वप्न, आध्यात्म और रहस्यवाद का विरोध। भारतेंदु मंडल के लेखकों के इन आदर्शों से आर्यसमाज अनेक प्रश्नों पर गंभीर रूप से टकराता है। इसीलिए भारतेन्दु ने स्वामी दयानन्द की निंदा करते हुए "दूषण मालिका" कविता लिखी। "स्वर्ग में विचारसभा का अधिवेशन" नामक निबंध में उन्होंने स्वामी दयानन्द और उनके अंधभक्तों के विज्ञान-विरोधी अतीत-पाखंड पर इन शब्दों में जोरदार व्यंग्य किया है- "धन्य दयानन्द जिसने वेद में रेल, तार, कमेटी, कचहरी दिखाकर आर्यों की कटती हुई नाक बचा ली।" स्पष्ट है कि भारतेन्दुकालीन नवजागरण हिन्दू पुनरुत्थानवाद का विरोध करता है, सामंतों और उनकी संस्कृति के भरोसे औपनिवेशिक शासन से मुक्ति की आशा छोड़ने की सीख देता है और जन-संस्कृति के जीवंत उपादानों से नई जातीय संस्कृति को सुसज्जित करने की प्रेरणा देता है।

जिस प्रकार मध्यकाल में भक्ति आंदोलन देशव्यापी सार्वजनीन धार्मिक, सामाजिक और साहित्यिक आंदोलन है, उसी प्रकार बीसवीं सदी में समग्र देश की चेतना को प्रभावित करनेवाला आंदोलन राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन है। इस आंदोलन ने देश की अस्मिता पहचानने में हमारी सहायता की। 1856 की गदर ने हमारी स्वाधीनता की चेतना को भड़काया था। भारतेन्दु युग में यह राष्ट्रीय भावना अंग्रेजों द्वारा भारत के आर्थिक शोषण के इर्द-गिर्द विकसित होती है। भारतेन्दु ने लिखा :

अंग्रेज राज सुख साज सजे सब भारी।
पै धन विदेश चली जात इहै अति ख्वारी॥

भारतेन्दु युग के साहित्यकारों ने राष्ट्रीयता की ऊर्जा में अंग्रेजी शासन-व्यवस्था और एंगलोसेक्शन जाति के सांस्कृतिक मिशन का मखौल उड़ाया। द्विवेदी युग में आकर हमारे साहित्य की राष्ट्रीय भावना, भारत माँ की कल्पना, भौगोलिक परिवेश के रूप में करती है। इससे भारत की एक छवि लोकमानस में उभरती और निर्मित होती है। द्विवेदी युग के साहित्यकारों ने अतीत गौरव का गान किया, वर्तमान की हीनावस्था का करुण चित्र उकेरा और भविष्य के स्वर्णिम सपनों का ताना-बना बुना। इस युग की राष्ट्रीयता की सबसे अच्छी अभिव्यक्ति मैथिलीशरण गुप्त की कविताओं में हुई।

लेकिन, राष्ट्रीय भावना का सबसे समर्थ रूप हिन्दी के छायावादी काव्य में उभरकर आता है। छायावाद, जैसा कि कवि दिनकर ने लिखा है, "बड़ा ही प्रतापी साहित्यिक आंदोलन था और जिधर को भी इसने एक मुठ्ठी गुलाब फेक दी, उधर का क्षितिज लाल हो गया" हिन्दी की राष्ट्रीय कविताएँ जो अबतक उपदेशों और प्रवचनों का नीरस भार ढोती आई थीं, इसी काल में आकर अनुभूतियों के सच्चें आलोक से जगमगा उठीं और सीधे उपदेशों का आश्रय बनाना छोड़कर उन्होंने अनुभूति के बल से जनता का हृदय हिलाना शुरू कर दिया। राष्ट्रीय कविताएँ भी प्रचार न होकर अनुभूतियों का जीवित कोष होती हैं, यह बात माखनलाल, "नवीन" और सुभद्रा कुमारी चौहान की रचनाओं को देखकर अनायास स्पष्ट हो जाती है। छायावाद अपनाकार्य बड़ी उमंगों के साथ कर रहा था, किन्तु सुशिक्षित जनता के बीच भी उसकी कविताओं का कोई विशेष प्रचार न था। हाँ, भावुक किशोर छात्र उन्हें अवश्य पढ़ते थे। ऐसे समय में छायावाद कालीन राष्ट्रीय कविताओं ने बड़ा काम किया क्योंकि मुख्यतः उन्हीं को लेकर जनता और समकालीन काव्य के बीच संबंध का तार अनुस्यूत रहा।

2.3.4 क्रांति की भावना

हमारा राष्ट्रीय आंदोलन ज्यों-ज्यों उग्र होता गया, त्यों-त्यों क्रांति की चेतना फैलती गई। परिवर्तन जब धीरे-धीरे होता है, तब उसे सुधार कहते हैं और जब वह एक बारही हो जाता है, तब उसे क्रांति कहते हैं। गाँधीजी के नेतृत्व में सत्य और अहिंसा को केंद्र में रखकर हमारी स्वाधीनता का जो संघर्ष चल रहा था, वह सुधारपरक था। गाँधीजी व्यवस्था के भीतर ही व्यवस्था से लड़ रहे थे। लेकिन, नौजवानों को यह धीमी गति पसंद नहीं थी। चन्द्रशेखर आजाद और भगत सिंह, खुदीराम बोस और रामप्रसाद विस्मित जैसे नवयुवकों ने हाथ में बंदूक लेकर सत्ता को बदलने की कोशिश की।

BRAOU

इन आतंकवादियों ने हमारी राष्ट्रीय स्वाधीनता के संदर्भ में बहुत ही महत्वपूर्ण काम किये और इनके संघर्ष से हमारी राष्ट्रीय काव्य-धारा में क्रांति की भावना आई। माखनलाल चतुर्वेदी ने "पुष्प की अभिलाषा" शीर्षक मार्मिक कविता लिखी और बलिशाला को ही मधुशाला बनाने का नारा दिया। क्रांति के जुनून में ही बालकृष्ण शर्मा "नवीन" नें नवयुवकों को आहवान करते हुए लिखा -

"कवि कुछ ऐसी तान सुनाओं, जिससे उथल-पुथल मच जाय। एक हिलोर इधर से आये, एक हिलोर उधर से आये।" और सचमुच ही यह हिलोर आई तथा संपूर्ण हिन्दी साहित्य तरंगित हो उठा। दिनकर ने क्रांति को विपथगा की संज्ञा दी। देश की स्वाधीनता के लिए लड़नेवाले अंगार के इन पुतलों की मार्मिक भक्ति, उबलाते हुए जोश तथा उच्छल रवानी का जैसा प्रतिनिधित्व बंगला के नजरूल इस्लाम तथा हिन्दी के रामधारीसिंह दिनकर ने किया, वैसा भारत के किसी और कवि ने नहीं। दिनकर में इतिहास अपनी संपूर्ण वेदना को लेकर बोलता है। उसकी वाणी में जागृत पौरुष का निनाद और क्रांति की चिनगारियाँ फूटती हैं। गाँधी और चंद्रशेखर आज़द, हमारे स्वाधीनता संग्राम के दो ध्रुवान्त हैं और इन दोनों ध्रुवांतों का एकत्र समन्वय दिनकर में मिलता है।

क्रांति की भावना राजनीतिक क्षेत्र में ही नहीं सामाजिक क्षेत्र में भी फैली और उसके अनेक दूरगामी परिणाम हुए। राजनीति के क्षेत्र में मार्क्सवाद से प्रभावित समाजवादी और साम्यवादी चिन्तन धाराओं ने राष्ट्रीय चेतना और साहित्य की गतिविधि को आमूल परिवर्तित कर दिया। जीवन के सभी पहलुओं में अन्याय के विरुद्ध आवाज़ उठाने और समता की स्थापना के लिए क्रांति का मार्ग अपनाया गया। मार्क्स के विचारों ने प्रगतिवादी साहित्य को ही नहीं, समस्त भारतीय साहित्यिक चिंतन को प्रभावित किया।

2.3.5 नवीन चिंतनः तकनीकी विकास और औद्योगिक जीवन की समस्याएँ

प्रविधि के (तकनीकी) विकास का एक सीधा परिणाम यह हुआ कि गति बढ़ी है और संसार की सीमाएँ संकुचित हुई हैं। इससे हुआ मनुष्य एक दूसरे के अधिकाधिक संपर्क में आया है। मनुष्य का तेजी से बढ़ता हुआ यह संपर्क मूल्यहीनता की स्थिति का एक प्रधान कारण है। अधिकाधिक बार संपर्क होते रहने से मनुष्य की अनुभूति शक्ति का क्षरण होता है। लोहे को लोहा ही काट देता है। अनुभूति के क्षरण का अर्थ है मानवीय सौहार्द में उत्तरोत्तर कमी तथा एक तरह की कठोरता का विकास जिसका साक्ष्य हमारा समकालीन जीवन और साहित्य दोनों प्रस्तुत करते हैं। मनुष्य का मनुष्य से संपर्क बढ़ते हुए रूप में तनाव, द्वंद्व या संघर्ष की मनः स्थिति को जन्म देता है, जो कि बौद्धिक चेतना-केन्द्रों के परस्पर संपर्क का स्वाभाविक परिणाम है। द्वितीय महायुद्ध को ही यदि फिर विभाजक रेखा मानें तो उससे पूर्व भारत का औसत मनुष्य अपने समूचे जीवन काल में सौ-दो सौ व्यक्तियों से मिल पाता था। पर, संचार के प्रत्यक्ष (रेल, मोटर, जहाज) और अप्रत्यक्ष (डाक, तार, टेलीफोन, समाचार पत्र, सिनेमा, रेडियो, दूरदर्शन) साधनों की सहायता से अब उसके परिचय का क्षेत्र कई सौ प्रतिशत बढ़ गया है। उन्नत देशों में तो इस परिचय का विस्तार और तेजी से बढ़ा है। इस बढ़ते संपर्क से मानवीय संवेदनशीलता पर बहुत दबाव पड़ रहा है, जिससे, अनुभूति का क्षरण होता है और स्नायविक रोगों की बढ़ोत्तरी। कुल मिलाकर अनुभूति के क्षेत्र में सनसनी का प्रवेश तेजी से बढ़ता जा रहा है।

दूसरी और बढ़ती हुई गति ने सारे मानवीय संबंधों और प्रतिमानों को अस्थिर कर दिया है। परिवार, धर्म, प्रेम और सामाजिक आचरण की अन्य मर्यादायें अनिश्चित हैं। यह इसलिए भी है कि जहाँ मनुष्य मनुष्य से टकरा रहा है, वहाँ अनेक राष्ट्र और जातियाँ, उनकी जीवन-पद्धतियाँ परस्पर टकरा रही है। फलतः संसार के विभिन्न क्षेत्रों के बीच परस्पर के संपर्क से जितनी एकता विकसित होती है, उससे कहीं अधिक संघर्ष बढ़ता है।

भारत औद्योगीकरण के क्षेत्र में पिछड़ा हुआ है और इस स्थिति की वजह से हमें इस बात की छूट और सुविधा है कि हम उन गलतियों से बच सकते हैं जो युरोप ने अपने विकास के दौरान की हैं। धार्मिक संस्कृति का कभी हमने विकास किया था और अब वैज्ञानिक के परिष्कार का दायित्व

हमारे ऊपर है। यह हमारे वश में है और करणीय है। इसके लिए खतरे कई तरह के हैं। पहला खतरा यंत्र या प्रविधि सभ्याता का है। एक दूसरा खतरा राजनैतिक स्तर पर सर्वसत्ता वादी पद्धति का है जिसका चित्रण आक्षेपण मनोरंजक ढंग से जॉर्ज आखेल ने अन्योक्ति शैली में "एनिमल फार्म" में किया है। तीसरा खतरा है तकनीकी सभ्यता की भीतरी गति का। और सबसे बड़ी बात यह कि मनुष्य को मनुष्य के खतरे से बचाना है। इन सबका उपाय एक ही है मनुष्य, प्रकृति और यंत्र के बीच उचित अनुपात विकसित करना। नए समाज और संसार की यह कन्द्रीय समस्या है।

2.3.6 अस्तित्ववाद और नया साहित्य

हमारा समसामयिक काल मोहभंग की जड़ता, वैफल्य-बोध के दंश और दिशाहीन अनास्था से पीड़ित युग है। हमारी सामाजिकता गला-काट प्रतिद्वन्द्विता की निर्लज्ज सामाजिकता है। मूल्यों का ह्रास, मानवीय आत्मा का विघटन और सामूहिक नैतिकता के अवमूल्यन ने चरित्र के नाम पर स्वार्थ, छल और बेईमानी को, कर्म के नाम पर षड़यंत्र, हत्या और प्रवंचना को तथा समाज कल्याण के नाम पर काले रूपये की चकाचौंध को प्रतिष्ठा दी है। सामाजिक, आर्थिक संदर्भों में मध्यम वर्ग की उपलब्धि के खाते में मुखभरी, बेरोजगारी और दैन्य है। राजनीति का समूचा परिवेश चरित्रहीन नेताओं की मुखौटोंवाली भीड़ से बना है। इस सर्वव्याप्त विषण्णता में बुद्धिजीवी का विद्रोह सामाजिक, आर्थिक परिवेश की तार्किक विसंगति के रूप में समझ में आता है। जीवन का नई विषमताओं और विसंगतियों में विकसित एक यूरोपीय चिन्तन धारा अस्तित्ववाद है।

मृत्यु की अनिवार्यताः

अस्तित्ववादी चेतना की स्वतंत्रता पर ज़ोर देते हैं और उन्होंने चेतना की स्वतंत्रता में पाँच वस्तुगत तथ्यों को बाधा के रूप में माना है। यह हैं देश, अतीत, परिवेश, अन्य और मृत्यु। अस्तित्ववादियों के लिए मृत्यु एक पवित्र संदर्भ रही है। मृत्यु की अपरिहार्यता, मानवीय अस्तित्व को क्षोभ देती है। अपनी मृत्यु-कामना करते हुए मनुष्य परम अनस्तित्व का साक्षात् करता है। इस प्रकार, अस्तित्ववादियों के लिए मृत्यु की अनिवार्यता और उसकी आसन्न उपस्थिति से होनेवाला संताप अस्तित्व की कालातीतता का संस्कार है, मृत्यु के बाद का जीवन जीने की एक संभावना है। वह भौतिकवादियों की भाँति मृत्यु को जीवन का अंत नहीं मानते। अस्तित्ववाद के आस्तिक चिंतक मृत्यु के सीमांत पर एक परम अस्तित्व की कल्पना करते हैं जो परम स्वतंत्रता का पर्याय है। हिन्दी साहित्य में अस्तित्ववाद की सबसे प्रामाणिक रचना अज्ञेय के उपन्यास "अपने अपने अजनबी" को माना जाता है। इस उपन्यास की एक महिला पात्र कहती है- "हम पहचानते हैं अनिवार्यता, हम पहचानते हैं अंतिम और चरम और संपूर्ण और अमोघ नकार जिस नकार के आगे और कोई सवाल नहीं है और न आगे जवाब ही। इसीलिए मौत ही तो ईश्वर का एकमात्र पहिचाना जा सकनेवाला रूप है। पूरे नकार का ज्ञान ही सच्चा ईश्वरज्ञान है।"

मतभेद जो भी हो, हिन्दी में अस्तित्ववाद की चिंताधारा का प्रतिनिधित्व किया है साहित्यकार अज्ञेय ने। अज्ञेय ने पश्चिमी मृत्यु के आतंक को भारतीय जीवनप्रियता और आस्था के सहारे अतिक्रमित करना चाहा है। "आंगना के पार द्वारा" संकलन की कविताएँ, अपने-अपने अजनबी शीर्षक उपन्यास तथा "एक बूंद सहसा उछली" शीर्षक यात्रावृत्त, 1860-61 में प्रकाशित इन तीनों कृतियों में माध्यमगत भिन्नता के बावजूद जीवनप्रियता की मूल वस्तु अभिव्यक्त हुई है। अपने-अपने अजनबी में सेलमा की मृत्यु होने पर योके सोचती है "ईश्वर भी शायद स्वेच्छाचारी नहीं है, उसे भी सृष्टि करनी ही है क्योंकि उन्माद से बचने के लिए सृजन अनिवार्य है, वह सृष्टि नहीं करेगा,, तो पागल हो जाएगा।

2.3.7 साहित्य में आधुनिक बोध

कुल मिलाकर आधुनिक मनुष्य की चेतना में जो बदलाव आया है, उससे साहित्य के आधुनिक बोध की रचना हुई है। धर्म के ध्वंस के साथ ही श्रद्धा और भक्ति, आस्था विश्वास का संसार नष्ट हो गया है। वैज्ञानिक परिदृष्टि, तार्किकता और बुद्धिवाद ने पुराने मूल्यों को अपदस्थ कर दिया है।

सृष्टि की रचना-प्रक्रिया के प्रति अब विकासवादी दृष्टि को लगभग स्वीकार कर लिया गया है। इस कारण मनुष्य के संस्कारों में तेजी से बदलाव आया है। इसलिए अब हिन्दी भाषी क्षेत्र में भी धार्मिक और साहित्यिक संस्कृति तथा वैज्ञानिक संस्कृति के बीच टकराहट शुरू हो गई है। नए संस्कार अब बनने लगे हैं और उन्होंने पुराने संस्कारों का स्थान लेना शुरू कर दिया है। इसलिए आज के साहित्य की राह भावना की गीली पगडंडी से होकर नहीं, समर्थ बुद्धि की कड़ी चट्टान से होकर जा रही है। बौद्धिकता और वैज्ञानिक वस्तुवाद, ये ही दो तत्व हैं, जिन्हें पश्चिम से स्वीकार कर नया साहित्य अपनी अस्मिता की रचना कर रहा है।

कविता मस्तिष्क से अलग नहीं जा सकती। इसलिए आज का साहित्य भी बुद्धिवादी होता ही है। इस प्रकार हमारा साहित्य अब चिंतन की नई भूमियों की ओर बढ़ रहा है।

2.4 सारांश

आधुनिक साहित्य की पृष्ठभूमि में आधुनिक भारतीय मनुष्य की चिंता अभिव्यक्त हुई है। ये चिंताये मुख्यतया मध्यकाल की रूढ़ियों, कुप्रथाओं और रिवाजों से संघर्ष करने के क्रम में रूप-रंग ग्रहण कर सकी है। युरोप से भारत के संपर्क का पहला परिणाम सुधारवाद के रूप में सामने आया। ये बुद्धिजीवी समय की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए हिन्दू धर्म और समाज में सुधार के लिए प्रयत्न कर रहे थे। ये सुधारवादी वस्तुतः हिंदू धर्म, इस्लाम और ईसाई धर्म में समन्वय कर मानवतावाद पर अधिक जोर दे रहे थे और मनुष्य-मनुष्य के बीच भेदभाव समाप्त करने के इच्छुक थे। इन सुधारवादियों के सबसे बड़े नेता हुए राजा राममोहन राय और पंडित ईश्वरचंद्र विद्यासागर। इसी की पीठ पर आया पुनरुत्थानवाद। पुनरुत्थानवादियों ने ईसाईयत के चौतरफा आक्रमण से भारतीय संस्कृति की सुरक्षा के स्थापित किया। इसके सबसे बड़े नेता हुए "आर्यसमाज"के संस्थापक दयानन्द सरस्वती। लेकिन, जो चिंतनधारा भारतीय मानस पर सबसे गहरा असर डाल सकी, वह है नवजागरण की धारा। नवजागरण वस्तुतः जातीय सत्व का बोध हमारे भीतर जागृत करने आया था। नवजागरण के नातेओं में रामकृष्ण परमहंस, विवेकानन्द, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, लोकमान्य तिलक, महर्षि अरविन्द, महात्मा गाँधी और डॉ. राधाकृष्णन अन्यतम हैं।

अंगरेजी राज की स्थापना से भारत का युरोप से जो संपर्क हुआ, उस कारण युरोप से विज्ञान और टेक्नोलॉजी का आयात हुआ। इस कारण उत्पादन के साधनों में परिवर्तन हुए, यातायात और संचार-साधनों में क्रंति हुई और इसका प्रभाव मानवीय संवेदनशीलता पर पड़ा। इस कारण धर्म और ईश्वर के प्रति भारतीय मनुष्य की दृष्टि में बदलाव आया। भारतीय समाज धीरे-धीरे औद्योगिक समाज में बदलने लगा। साहित्य में आधुनिक बोध वस्तुतः इसी का परिणाम है। आधुनिक बोध के मूल में है वैज्ञानिक परिदृष्टि, तर्कमूलकता, बुद्धिवाद, संशय और संदेह। जब आस्था घटी और मनुष्य संशयग्रस्त हुआ तब उसे अपने अस्तित्व की समस्या का भी बोध हुआ। अस्तित्ववाद मृत्यु की प्रतीक्षा में खड़े मनुष्य का जीवन-दर्शन है। युरोपीय दर्शन की यह धारा उत्तरशती के, हिन्दी साहित्य पर भी अपनी छाप छोड़ गई है।

2.5 पारिभाषिक शब्दावली

अस्तित्ववाद - दर्शन की एक धारा, जिसमें मृत्यु-बोध के कारण मनुष्य को अपने अस्तित्व का संकट दिखलायी पड़ते है।

उपनिवेशवाद - एक देश पर दूसरे राष्ट्र द्वारा लादी गई शासन-व्यवस्था और अर्थ-व्यवस्था को उपनिवेशवाद कहते है। भारत में इस शब्द का प्रयोग अंग्रेजी राज के संदर्भ में होता है।

छायावाद - 1820 के आसपास आरंभ होनेवाला हिन्दी कविता का एक आंदोलन जिसमें भावजगत का छायाभास प्रधान हुआ करता था।

BRAOU

नियोग	= पति द्वारा संतान न होने पर स्त्री का पति से अनुमति प्राप्त कर संतानेच्छा से अन्य पुरुष से संपर्क स्थापित करने को नियोग कहते हैं।
प्रतिक्रियावाद	= ऐसा कोई क्रियाकलाप जो सामाजिक जीवन की गति को पीछे की ओर ढकेल दे, उसे प्रतिक्रियावाद कहते हैं।
प्रविधि	= यह टेक्नोलॉजी का हिन्दी अनुवाद है।
बुर्जुआ	= मध्यम वर्ग, सामंत वर्ग और सर्वहारा वर्ग के बीच के वर्ग को बुर्जुआ कहते हैं। यह जर्मन भाषा का शब्द है।
सुधारवाद	= सामाजिक जीवन की रूढ़ियों और पुराने रीति-रिवाजों में बदलाव और सुधार को सुधारवाद कहते हैं।

2.6 अभ्यास

2.6.1 'अ' श्रेणी के प्रश्न

1. सुधारवाद की व्याख्या करके हिन्दी साहित्य पर उसके प्रभाव का निरूपण कीजिए।
2. पुनरुत्थानवाद की चर्चा करते हुए हिन्दी साहित्य पर उसके प्रभाव को रेखांकित कीजिए।
3. भारतीय नवजागरण की मुख्य विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।
4. साहित्य में आधुनिक बोध क्या है? उस की विशेषताओं का विश्लेषण कीजिए।

2.6.2 'ब' श्रेणी के प्रश्न

1. भारतीय जीवन और हिन्दी साहित्य में क्रांतिकारी विचारधारा पर वितार कीजिए।
2. अस्तित्ववाद की व्याख्या करते हुए नये साहित्य पर उसके प्रभाव को स्पष्ट कीजिए।
3. बुद्धिवाद और वैज्ञानिक दृष्टि से क्या तात्पर्य है?
4. साहित्य के विकास में चिन्तन धाराओं की भूमिका पर विचार कीजिए।

BRAOU

2.7 नमूने के उत्तर

2.7.1 'अ' श्रेणी के प्रश्नोत्तर

प्रश्नः साहित्य में आधुनिक बोध क्या है? इसकी मुख्य विशेषताओं का विश्लेषण कीजिए।

उत्तरः साहित्य की दिशा मुख्यतः समाज की अंतरधाराओं की टकराहट से निर्धारित होती है। कल्पना, भावना और शिल्प, इन सब का संबंध सामाजिक संदर्भ से होता है। समाज की परिस्थितियों में परिवर्तन के साथ-साथ साहित्य का रूप-रंग बदलता है। मध्यकाल का भारतीय समाज रूढ़ियों और कुप्रथाओं में जकड़ा हुआ था। जब अंग्रेज भारत आए तो उन्होंने यहाँ सामंती व्यवस्था को समाप्त कर पूँजीवादी व्यवस्था की स्थापना की, जो अधिक प्रगतिशील व्यवस्था थी। विज्ञान के नए अविष्कारों ने सामाजिक जीवन में क्रांति ला दी। इसने मनुष्य से आधुनिक मनुष्य को अलग करता है। आज धर्म के विश्वास बह गए हैं और उनका स्थान बुद्धि ने ले लिया है। साहित्य पर इसका गहरा प्रभाव पड़ा। आधुनिक मनुष्य की चेतना में हुए बदलाव से साहित्य के आधुनिक बोध की रचना हुई है। यह आधुनिक बोध अनिवार्यतः बौद्धिक है। वर्तमान के प्रति तीव्रतम सजगता इसका केन्द्रीय तत्व है। यह सृष्टिरचना की विकासवादी दृष्टि को स्वीकार करता है। अतः पुरानी धार्मिक संस्कृति और वैज्ञानिक संस्कृति के बीच टकराहट होना स्वाभाविक है। आधुनिक साहित्य में भावना की नहीं, बुद्धि की प्रधानता मिलती है। इस साहित्य की अस्मिता की रचना बौद्धिकता और वैज्ञानिक वस्तुवाद के योग से हुई है। आज का साहित्य बुद्धि से अलग रहकर जी नहीं सकता है। इसलिए उसे बुद्धिवादी होना ही है।

2.8 पठनीय पुस्तकें

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास	:	आचार्य रामचंद्र शुक्ल
2. हिन्दी साहित्यः उद्भव और विकास	:	डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी
3. हिन्दी साहित्य की भूमिका	:	डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी
4. भारतीय चिंतन परंपरा	:	के. दामोदरन
5. आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास	:	डॉ. बच्चन सिंह
6. संस्कृति के चार अध्याय	:	रामधारी सिंह दिनकर
7. महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नवजागरण	:	डॉ. रामविलास शर्मा
8. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और नवजागरण की समस्याएँ	:	डॉ. रामविलास शर्मा
9. हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास	:	डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी

BRAOU

इकाई-3: आधुनिक कालः साहित्यिक चेतना और सौंदर्य बोध

3.0 विषय प्रवेश
3.1 उद्देश्य
3.2 पाठ-परिचय
3.3 मूलपाठ
  3.3.1 मध्यकालीन संवेदना बनाम आधुनिक साहित्यिक चेतना
  3.3.2 साहित्यिक चेतना के विविध आयाम
  3.3.3 नये साहित्य रूप
  3.3.4 मध्यकालीन सौंदर्य बोध बनाम आधुनिक सौंदर्य बोध
  3.3.5 सौंदर्यबोध का विकास
  3.3.6 स्वच्छंदतावादी सौंदर्य बोध
  3.3.7 मार्क्सवादी सौंदर्य बोध
  3.3.8 बौधिक चिंतन से उत्पन्न सौंदर्य बोध
3.4 पाठ का सारांश
3.5 शब्दार्थ
3.6 अभ्यासार्थ प्रश्न
  3.6.1 'अ' श्रेणी के प्रश्न
  3.6.2 'ब' श्रेणी के प्रश्न
3.7 नमूने के प्रश्नोत्तर
  3.7.1 'अ' श्रेणी के प्रश्नोत्तर
  3.7.2 'ब' श्रेणी के प्रश्नोत्तर
3.8 पठनीय पुस्तकें

BRAOU

3.1 उद्देश्य

इस पाठ में आधुनिक काल में नवीन साहित्यिक चेतना और नया सौंदर्य बोध पर प्रकाश डाला गया है। इस के अध्ययन से आपः

- मध्यकालीन संवेदना और आधुनिक साहित्यिक चेतना का अन्तरस्पष्ट कर सकेंगे।
- नये साहित्यिक रूपों के ऐतिहासिक संदर्भ पर विचार कर सकेंगे।
- आधुनिक साहित्य और नये सौंदर्य बोध पर प्रकाश डाल सकेंगे।
- आधुनिक साहित्यिक चेतना के विविध आयामों का विवेचन कर सकेंगे।
- मार्क्सवादी सौंदर्य दृष्टि पर प्रकाश डाल सकेंगे।

3.2 पाठ-परिचय

मध्यकालीन साहित्य और आधुनिक साहित्य की तुलना करते है तो दोनों में प्रवृत्ति मूलक और गुणात्मक पर्याप्त अन्तर दिखाई देता है। आधुनिक काल में ऐतिहासिक और मामाजिक परिवेश में आमूल्य परिवर्तन के कारण साहित्यिक चेतना एकदम बदल गई है। नई चेतना की अभिव्यक्ति के लिए नये रूपों का विकास हुआ है। जीवन-दृष्टि में बदलाव के परिणाम स्वरूप जीवन और साहित्य में सौंदर्य बोध का नया विकास दिखाई देता है। प्रस्तुत पाठ आधुनिक साहित्य के इतिहास की भूमिका है जिसके द्वारा हिन्दी के विकास की नई दिशाओं का बोध प्राप्त होता है।

3.3 मूलपाठ

3.3.1 मध्यकालीन संवेदना बनाम आधुनिक साहित्यिक चेतना

मध्यकाल शब्द वस्तुतः अंग्रेजी के "मिडिल एजेज" के अनुकरण पर बना लिया गया है। भारत में यह समय सातवीं सदी के बाद का और उन्नीसवीं सदी के पहले का काल है। डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार, "इस शब्द का प्रयोग एक ऐसे काल के अर्थ में होने लगा है जिसमें सामूहिक रूप से मनुष्य एक दबी हुई स्तब्ध मनोवृत्ति का शिकार हो जाता है"। ऐसा माना जाता है कि मध्ययुग का मनुष्य धीरे-धीरे विशाल और स्वतः असीम ज्ञान के प्रति जिज्ञासा का भाव छोडता जाता है तथा धार्मिक आचारों और स्वतः प्रमाण माने जानेवाले आप्त वाक्यों का अनुयायी होता जाता है। साधारणतः आप्त समझे जानेवाले ग्रंथों की बाल की खाल निकालने वाली व्याख्याओं पर अपनी समस्त बुद्धि खर्च कर देता है। प्रसंगात् डॉ. हजारी प्र. द्विवेदी ने लिखा है कि "युरोपीय इतिहास के इसी युग में यह शास्त्रार्थ प्रबल रूप धारण करता है कि सूई की नोक पर कितने फरिश्ते खड़े हो सकते हैं। इस प्रकार की मनोवृत्तिपरक अर्थ स्वीकार करनेवाले लोग ही अंग्रेजी में मेडिएवल, मेडिएवलिज्म आदि शब्दों का व्यवहार करते हैं। कभी-कभी तो ऐसे शब्दों का व्यवहार अवहेलनापरक अर्थ में ही किया जाता है।"

अब प्रश्न उठता है कि यह स्तब्ध या कुंठित मनोवृत्ति क्या है? असल में साहित्यकार जब प्रतीक और रूढ़ि का विवेक खो देता है, तो वह कुंठाग्रस्त हो जाता है। प्रत्येक शब्द, प्रत्येक मूर्ति, प्रत्येक रेखा और प्रत्येक चिह्न जब तक अपने पीछे के तत्व चिंतन के साथ आते हैं तो प्रतीक होते हैं, परंतु जब उनके पीछे काम करनेवाले तत्वचिंतन भुला दिये जाते हैं तो वे रूढ़ हो जाते हैं। विष्णु का गगनाभ नील वर्ण उनकी अनन्तता का संकेत करता है। उनके चारों हाथ और उनके शास्त्र भी अनंत काल और गति के निदर्शक हैं। पर विष्णु की मूर्ति को उनका फोटोग्राफ मान लेना रूढ़ है और स्तब्ध मनोवृत्ति का परिचायक। किसी भी देवता की मूर्ति फोटो नहीं है। यथार्थ चित्र संकेत होता है, और तत्वाचिंतन को मुखर करनेवाला विग्रह प्रतीक होता है। असल में मध्ययुग का साहित्यकार प्रतीक को रूढ़ रूप में चिह्न या अनुकृति मानने लगता है। इस प्रकार, वह कुंठित और स्तब्ध अर्थात् ह्रासोन्मुखी मनोवृत्ति का शिकार हो जाता है।

इसके ठीक विपरीत आधुनिक युग विज्ञान की देन है। मशीनों के आने के बाद ही इस युग में नई समस्याएँ और उनके समझाने के लिए नए प्रयत्न सामने आने लगे। राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक स्तर पर मनुष्य परिवर्तित होने को बाध्य हुआ और तेजी से उस युग का जन्म हुआ, जिसे हम आधुनिक कहते हैं। पश्चिम के देशों से हमारा संपर्क होने के बाद हम इस युग में प्रविष्ट हुए। इस नए युग में व्यक्ति क्रमशः स्वतंत्र होता गया है तथा और भी स्वतंत्र होता जा रहा है। इससे पहले के युग में मनुष्य और मनुष्य का संबंध सीधा और प्रत्यक्ष होता था, लेकिन नए युग का संबंध बाजार के माध्यम से होने लगा। प्रत्येक व्यक्ति सामाजिक-राजनीतिक दृष्टि से स्वतंत्र तो हो रहा है, परन्तु उसकी योग्यता और स्वाधीनता बाजार के मूल्यों द्वारा नियंत्रित होती है।

हम कह आए हैं कि मध्यकालीन संवेदना स्तब्ध या कुंठित मनोवृत्ति की संवेदना है। इसके ठीक विपरीत आधुनिक युग में हम चेतना की बात करते हैं। चेतना का संबंध जागरण से है। मध्यकालीन संवेदना यदि तंद्रा और निद्रा है, तो आधुनिक चेतना जागरण है। इसका संबंध प्रगतिशीलता से है। आधुनिक युग में यह विश्वास किया जाने लगा है कि साहित्यकार जब लिखता है तो उसके द्वारा कुछ बदलना चाहता हैं। वह अपने इर्द-गिर्द की परिस्थितियों में कुछ असुंदर या अशोभन देखता है और उसे सुंदर, शोभन में परिवर्तित करने के लिए व्याकुल हो उठता है। वह केवल बंधी-बंधाई परिपाटियों से चालित होकर यह उद्देश्य नहीं पूरा कर सकता। उसका उद्देश्य जैसा है, उसकी व्याख्या करना नहीं होता और न यह होता है कि जो कुछ पुराने जमाने से कहा जाता आया है, उसे दुहराये, यह सचेत परिवर्तनेच्छा आधुनिक युग की विशेषता बताई जाती है।

BRAOU

3.3.2 आधुनिक साहित्यिक चेतना के विविध आयाम

आधुनिक साहित्यिक चेतना की पहली विशेषता जीवन की बहुमुखी अभिव्यक्ति है। मध्ययुग के कवि का चित्र संकीर्ण था और यह इतनी मांगों का शिकार नहीं बना था। इसीलिए अपने काव्य के लिए वह थोड़े ही विषयों को चुनता था। उसे वर्ण्य वस्तु को सरस बनाने की बड़ी चिंता थी और उसमें भी वह श्रृंगार का ही अधिक महत्व देता था। इस रस के बाहर यदि वह जाता था, तो प्रायः ऐसी बातों में ही उलझता था जिसमें वक्तव्य वस्तु कुछ ऐसी वक्र भंगिमा में प्रकट हो कि सहृदयों की सभा वाह-वाह कर उठे। लेकिन, आज के कवि के वर्ण्य विषय का बहुत विस्तार हो गया है। फ्रांस में विक्टर ह्यूगों ने उन वस्तुओं पर लिखा जो उपेक्षणीय समझी जाती थीं। वर्ड्सवर्थ ने कई अछूती और अपारंपरिक वस्तुओं को कविता का विषय बनाया। बादलेयर, रिम्बों, मलार्मे और वर्लेन ने अभिजात-रुचि का प्रतिबंध तोड़कर अपरंपरागत वस्तुओं में रमणीयता का दर्शन किया। रूस में दास्ताएवस्की के उपन्यासों में भी वस्तुदर्शन के नए आयामों का प्रसार हुआ। इस सदी में सारे संसार का साहित्य नित नयी वस्तुओं को आत्मसात् करता गया। कहा जाता है कि कविता का पिछले सौ साल का युग शैली के निखार का युग हैं। किंतु, उससे अधिक क्रांति विषयवस्तु में हुई। इस पृथ्वी पर ऐसी कोई वस्तु नहीं है, जिसे कवि ने अपनी प्रतिभा से रमणीय नहीं बना दिया है।

कारण कुछ वैज्ञानिक भी है। छापे की मशीन ने इन विषयों के लिए अनेक अन्य शास्त्रों को सुलभ कर दिया है। इस मशीन ने जो पाठक को भावावेश पर से धकेलकर बुद्धि-प्रवाह में फेंक दिया है, वह मामूली बात नहीं है। अब कवि के हाथ से अनेक विभाग छिन गए हैं। कुछ कहानियों ने ले लिया है, कुछ उपन्यासों ने हथिया लिया है, कुछ निबंधों ने छीन लिया है और कुछ अन्य साहित्यांगों ने। समय ने कान्तासम्मत उपदेश देने के महान मंच पर से कवि को उतार दिया है। पाठक उससे कुछ अधिक चाहता है। शायद वह जीवन की व्याख्या चाहता है, शायद वह आत्माभिव्यक्ति चाहता है। अब युग-चेतना को स्वर देना कवि का कर्तव्य माना जाने लगा है। इस प्रकार, आधुनिक कवि के लिए सूई से सितारे तक वर्ण्य विषय का विस्तार हो गया है।

आधुनिक साहित्यिक चेतना का दूसरा आयाम यथार्थवाद है। प्रसंगात् यह जानना आवश्यक है कि वैज्ञानिक युग का साहित्य उस युग के पूर्व के साहित्य से किन रूपों में भिन्न है? पुरानी कविता में शयन कक्ष में मणियों के दीप जलते थे और नायिकाओं को जब संकोच होता था, तब वे मुष्ठी भर पुष्परेणु फेंककर दीपक की ज्योति को छिपा देती थीं। अब नायिकाओं को संकोच कम होता है और संकोच हो भी तो बिजली का बटन दबा देना लज्जा से बचने का सुगम उपाय है। जैसे विज्ञान ने खोज खोजकर उन सभी रहस्यों को रहस्यहीन कर दिया, इन्हें लेकर पहले लोग आश्चर्य करते थे, वैसेही साहित्य के बहुत से सहस्य-कुंज विज्ञान के प्रभाव से उजाड़ हो गए। अब उनका आश्रय लेकर कविताएँ नहीं लिखी जा सकतीं।

पहले जब राम या कृष्ण के चरित्र लिखे जाते थे, तबउन्हें धर्म संस्थापक और दुष्कृत्य विनाशक ईश्वरावतार के रूप में चित्रित किया जाता था। यह विज्ञान का प्रभाव है कि अब वे समाज सुधारक; लोक आराधक अथवा संशयग्रस्त मनुष्य के रूप में दिखाये जाते हैं। साधुओं और सन्यासियों के चरित्र भी पहले उच्च कोटि के दिखाये जाते थे। केवल प्रबोध चंद्रोदय में चरित्र भी उच्च कोटि के दिखाये जाते थे। केवल प्रबोध चंद्रोदय में उन्हें व्यभिचारी के रूप में चित्रित किया गया था, लेकिन यह अपवाद था। लेकिन, "छाया" और "चित्रलेखा" में काम के समक्ष सन्यास की पराजय का जो दृश्य अंकित हुआ है, उसे नए जमाने ने खूब पसंद किया है। इसी प्रकार अगर कर्ण के रथ के चक्के धरती में धंसे गए थे तो यह बात अब खोलकर कहनी होगी कि वहाँ दलदल था। विज्ञान और टेक्नोलॉजी के प्रचार से साहित्य के परिवेश में परिवर्तन आ गया। उसका बड़ा भारी प्रभाव साहित्य पर पड़ा है। यह बिल्कुल स्पष्ट है। संध्या के भीतर एथेरॉइज्ड रोगिणी का रूपक पहले नहीं देखा जा सकता था, कैसे ही "एल्युमिनियम के हंस" की कल्पना उस समय नहीं की जा सकती थी, जब हवाई जहाज नहीं थे। किंतु, विज्ञान का प्रभाव रूपकों और बिंबों तक ही सीमित नहीं रहा है। साहित्य के भीतर वह अत्यंत गहराई में उत्तर गया है। उसका प्रभाव साहित्य की शैली पर भी पड़ा है और उससे साहित्य का भाव भी अक्रांत हुआ है।

BRAOU

इस आधुनिक चेतना की रचना करने में डार्विन, मार्क्स और फ्रायड इन तीन विचारकों का बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा है। डार्विन ने यह स्थापना रखी कि आदमी ईश्वर का पुत्र नहीं है। वह बंदर से बढ़कर आदमी हुआ है। फिर मार्क्स आए। उन्होंने यह स्थापना रखी कि धर्म, नैतिकता, कला और आध्यात्म के क्षेत्र में मनुष्य ने जो भी मूल्य निरूपित किए हैं, वे लोकोत्तर मूल्य नहीं हैं। इन मूल्यों का विकास समाज की अर्थव्यवस्था के अनुसार हुआ है। अतएव, धर्म-अधर्म नैतिकता-अनैतिकता तथा पाप और पुण्य की भावना को लोकोत्तर चेतना से संपृक्त मानना कोरा अंधविश्वास है। आदमी अपना कोई भी निर्णय लेने में स्वतंत्र नहीं है। सभी निर्णय वह उस अर्थव्यवस्था के अनुसार लेता है, जिसमें उसका जन्म और विकास हुआ है। और सबके अंत में फ्रायड का मनोविज्ञान आया, जिसने यह कहा कि आदमी का जप-तप योग और वैराग्य सभी ऊपरी बातें हैं। वह अपने किसी भी कार्य में स्वाधीन नहीं है। उसके भीतर अपनी और मनुष्य जाति की युगों की अगणित अदम्य वासनायें दबी पड़ी हैं और आदमी के कर्म इन्हीं अज्ञात वासनाओं की प्रेरणा का अनुगमन करते हैं। इस प्रकार, इन तीन विचारकों ने साहित्य में यथार्थवाद की पीठिका प्रस्तुत कर दी।

आधुनिक अर्थ में यथार्थवाद का हिन्दी साहित्य में प्रथम विकास प्रगतिवाद के माध्यम से हुआ। द्विवेदीयुगीन आदर्शप्रियता तथा छायावादी काल्पनिक जगत के विरुद्ध जो प्रतिक्रिया हुई उसने प्रगतिवादी साहित्य-सर्जन में यथार्थवाद को एक अपरिहार्य अंग बना दिया। कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक आदि सभी रूपों में आधुनिक जीवन के गहरे संघर्षों, अंतर्द्वन्द्वों तथा कुरुपताओं का अंकन हुआ। इस युग के दो मनीषी मार्क्स तथा फ्रायड ने अपने-अपने ढंग से यथार्थवाद के विकास में सहयोग दिया। मार्क्स ने सामाजिक जीवन के कटु यथार्थ की ओर संकेत किया और फ्रायड ने वैयक्तिक जीवन की गहन कुंठाओं की ओर ध्यान दिलाया। प्रगतिवाद के उपरांत प्रयोगवाद को भी यथार्थवाद का दाय मिला। एक प्रकार से प्रयोगवाद में यथार्थ की प्रवृत्ति कुछ और गहरी हुई। जीवन की तुच्छ-से-तुच्छ परिस्थिति को भी साहित्य में चित्रित करने योग्य समझा गया। द्वितीय महायुद्ध ने यथार्थवाद को साहित्य में और अधिक ग्राह्य बनाया और इस प्रकार प्रयोगवाद ने इस मौलिक प्रवृत्ति को अपनी आधारशीला के रूप में स्वीकार किया।

आधुनिक साहित्यिक चेतना का तीसरा महत्वपूर्ण आयाम सामाजिकता है। यह सामाजिकता यथार्थवादी साहित्य की स्वाभाविक परिणति है। आदर्शवादी साहित्य अध्यात्मोन्मुख होता है और यथार्थवादी साहित्य समाजोन्मुख होता है। चेतना स्वयं जागृति परक शब्द है और जागृति समाज की होती है। यह ठीक है कि आधुनिक हिन्दी साहित्य में देवकीनंदन खत्री के तिलिस्मी और जासूसी उपन्यास लिखे गए। लेकिन, द्विवेदी युग का साहित्य समाजोन्मुखता का साहित्य है। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, कथाकार प्रेमचंद, कवि मैथिलीशरण गुप्त, निबंधकार सरदार पूर्णसिंह ये सब-के-सब प्रखर सामाजिक चेतना के साहित्यकार हैं। काव्य के क्षेत्र में छायावादका आंदोलन कल्पनाप्रियता, स्वप्नदर्शिता और भावुकता का आंदोलन है। लेकिन उसकी पीठ पर प्रगतिवाद का जो आंदोलन आया वह प्रखर सामाजिक चेतना का आंदोलन है। प्रगति की धारणा में सामाजिक स्पन्दन छिपा हुआ है। प्रगतिवाद ने साहित्य को सामाजिक आंदोलनों से जोड़ा और व्यक्ति को "नदी के द्वीप" की तरह अलग-अलग न मानकर उसे समाज का अपरिहार्य अंश माना। बाद में नई कविता में भी सामाजिक चेतना बहुत ही प्रबल रूपसे व्यक्त हुई। नई कविता में आकर विश्वव्यापी मानवतावादी आंदोलन अभिव्यक्ति पाता है और सामाजिक संघर्ष को वाणी मिलती है। सातवें और आठवें दशक की हिन्दी कविता बहुत ही लड़ाकू और जुझारू रूप अख्तियार कर लेती है। मुक्तिबोध और धूमिल जैसे कवियों ने हमारे साहित्य का समाज से सीधा रिश्ता स्थापित किया। सामाजिक न्याय के लिए जितने वामपंथी आंदोलन चले, सबका प्रभाव हिन्दी साहित्य पर बहुत पड़ा है। इस प्रकार, समाजोन्मुखता और संघर्षप्रियता आधुनिक साहित्यिक चेतना का एक महत्वपूर्ण आयाम है।

आधुनिक साहित्यिक चेतना का चौथा आयाम है लोकतत्व। मध्यकाल में जिस साहित्य की रचना हुई, खासकर, उत्तर मध्यकाल में, वह अभिजात मनोवृत्ति का साहित्य है। उत्तरकालीन हिन्दी कविता को हम लोकसाहित्य नहीं कह सकते क्योंकि उसमें प्रत्यक्ष लोकजीवन से स्फूर्ति और प्रेरणा पाने की क्रिया गौण है और लोक की चित्तभूमि पर उसका संपूर्ण अधिकार भी नहीं था। साहित्य में लोकतत्व का आविर्भाव तब होता है जब कवि की दृष्टि सीधे समाज के निम्न वर्ग की ओर उन्मुख होती है।

BRAOU

यह लोकतत्व साहित्य को बहुत ही प्राणवंत बनाता है और उसमें जिंदगी की नई उष्मा ढाल देता है। लोकगीत, लोकतत्व की सीधी और उच्छल अभिव्यक्ति है। प्रसंगात् उत्तरकालीन संस्कृत साहित्य से लोकगीतों की तुलना करते हुए डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है "इस और इसके उपजीव्य उत्तरकालीन संस्कृत साहित्य के साथ जब हम उन रचनाओं की तुलना करते हैं, जो लोक-जीवन के साथ घनिष्ठ भाव से जड़ित थीं, तो सहज ही दोनों का भेद स्पष्ट होता है। मेरा मतलब गाँवों में प्रचलित गीतों और कथानकों से है। वहाँ हम प्रेम और वियोग में तड़पते हुए सच्चे हृदयों का वर्णन पाते हैं। भाई से विच्छिन्न बहन की करुण-कथा; सौत के, ननद के और सास के अकारण निक्षिप्त वाक्य-बाणों से विद्ध बहू की मर्म-कहानी, साहूकार, जमींदार और महाजन के सताये गरीबों की करुण पुकार; आन पर कुर्बान हो जाने वाले विस्तृत वीरों की वीर्य-गाथा; अपहार्थमाणा सती का वीरत्वपूर्ण आत्मघात; नई जवानी के प्रेम के घात-प्रतिघात; प्रियतम के मिलन-विरह और मातृ-प्रेम के अकृत्रिम भाव इन गीतों में भरे पड़े हैं। जन्म से लेकर मरण तक के काल में और सोहाग-शासन से लेकर रणक्षेत्र तक फैले हुए विशाल स्थान में सर्वत्र इन गानों का गमन है। यही हिंदीभाषा की वास्तविक विभूति है। इसकी एक-एक बहू के चित्रण पर रीतिकाल की सौ-सौ मुग्धाएँ, खंडिताएँ और धीराएँ निछावर की जा सकती हैं, क्योंकि ये निरलंकार होने पर भी प्राणमयी हैं और वे अलंकारों से लदी हुई होकर भी निष्प्राण हैं। ये अपने जीवन के लिए किसी शास्त्र विशेष की मुखापेक्षी नहीं हैं। ये अपने आप में ही परिपूर्ण हैं। मध्ययुग की हिन्दी की सुसंस्कृत समझी जानेवाली कविता में जो बात सबसे अधिक खटकनेवाली है, वह है उसकी परमुखापेक्षिता। क्या अलंकार, क्या नायिकाभेद, सर्वत्र इसमें उत्तरकालीन संस्कृत साहित्य की नकल की गई है और साथ ही साथ यह समझकर कि भाषा में किया हुआ यह प्रयत्न संस्कृत के कवियों की तुलना में नितान्त तुच्छ है।"

इस आधुनिक साहित्यिक चेतना का पाँचवाँ आयाम है साधारण की चेतना। अब साहित्य में धीरोदात्त और धीरललित नायकों के दिन गये। अब साहित्य के नायक होरी और बलचनमा हैं। प्रेमचंद्र के "रंगभूमि" का सूरदास जाति से चमार तो है ही साथ ही जन्मांध भी है। लेकिन, डेढ़ पसलीका यह आदमी पूँजीपति जनसेवनक कोललकारता है। वीरत्व के दिन अब गए। प्रसंगात् गजानन माधव मुक्तिबोध ने लिखा है- "मनुष्य लघु है। लघुत्व से पूर्ण मनुष्य अपने लघुत्व से घृणा करता है, इसलिए कुछ काल के लिए वह वीर बन जाता है। वीरता या महानता भ्रमात्मक है। लघुत्व मनुष्य की मूल प्रकृति है।"

BRAOU

आधुनिक साहित्य में पहली बार श्रमजीवी मेहनतकश वर्ग नायकत्व प्राप्त करता है। उच्च वर्ग के लोग समृद्धि में डूबकर जिन अनुभूतियों का साक्षात्कार करते हैं, वे अनुभूतियाँ अपेक्षया विपन्न, सीमित और महत्वहीन होती हैं क्योंकि उन लोगों के श्रम का पवित्रता से कोई संबंध नहीं होता है। श्रमिक वर्ग की अनुभूतियाँ बहुत ही समृद्ध होती हैं। दिनकर की सूक्ति कि पसीने के जल में जब ज्ञान स्नान करता है, नयन शुद्ध होते, दर्शन की रीढ़ सुधर जाती है। श्रमिक जीवन के श्रम के अनेक क्षेत्र हैं, और श्रम के उतने ही खतरे भी। ये खतरे जमीन पर, समुद्र में और आसमान में हैं। ये श्रमिक जीविका की खोज में आप्रवाही होते हैं। मालिक, इंजीनीयर, ओवरसियर के साथ उनके संबंध, प्रकृति और जानवर के साथ संघर्ष, जंगलों, घास के मैदानों, बगीचों, सहयोगी से उनके संबंध में उनके काम, पत्नी और बच्चों के साथउनके मन बहलाव, सहयोगीसे उनके संबंध, आर्थिक मामलों में उनकी दिलचस्पी, उनके चुहल और मनोविनोद, ताजगी के आनंद, पसीने का सुख, गरीबी का क्लेश, ये सब उनके जीवन और अनुभव के असमाप्य पक्ष हैं। इस प्रकार, निम्न वर्ग के चित्रण से आधुनिक साहित्य का भावपक्ष बहुत ही समृद्ध हुआ है।

3.3.3 नये साहित्य-रूप

हिन्दी साहित्य के आधुनिक युग को आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने "गद्य काल" कहा है। यह एक प्रकार से ठीक ही है क्योंकि इस समस्त काल की सबसे प्रमुख विशेषता गद्य के निरंतर बढ़ते हुए प्रभाव की रही है। गद्य का यह आरोहण साहित्य के निरंतर विकसित होते हुए आयामों की सूचना देता है। जब तक साहित्य का सरोकार केवल जीवन के सीमित क्षेत्रों से था, तब तक पद्य की प्रधानता

रही। व्यवहारिक जीवन में गद्य का व्यवहार होता ही था, इसके लिए किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं। आधुनिक काल में गद्य की चर्चा उसके साहित्यिक प्राधान्य-ग्रहण की चर्चा है; जो उसने बदली हुई सामाजिक परिस्थितियों के कारण किया है। बदली हुई परिस्थितियों के कारण गद्य ने उत्तरोत्तर जिन नए उत्तरदायित्वों को ग्रहण किया है, वे उसकी नई शक्ति का परिचय देते हैं।

भारतेन्दु ने ठीक लिखा था कि "हिन्दी नई चाल में ढली सन् 1863 ई."। यह समय की चाल थी। नवीन उत्तरदायित्वों को ग्रहण कर नई चाल में ढलते ही साहित्य का मंच अचानक नई-नई विधाओं से भर गया। निबंध, नाटक, उपन्यास, कहानी, आलोचना आदि साहित्य-रूप तथा इनके विभिन्न प्रकार क्रमशः साहित्य के क्षेत्र में अवतरित होते गए। कविता का स्वभाव भी बदला। अचानक नई-नई विधाओं की उत्पत्ति की तह में हमें साहित्य के विस्तृत और सर्वजन सुलभ होने की प्रवृत्ति दिखाई देती है। यहाँ सर्वजनसुलभता से साहित्य के मुद्रित रूप में अधिक लोगों तक पहुँचने मात्र से तात्पर्य नहीं है। यद्यपि यह बात भी अत्यंत महत्व की है। यहाँ वास्तविक तात्पर्य इस तथ्य से है कि नवीन दिशाओं के आलोक में साहित्य जीवन के विविध अंगों का स्पर्श करने की ओर प्रवृत्त हुआ।

गद्य साहित्य के विकास को मुख्य रूप से दो चरणों में देखा जा सकता है। पहले चरण में वह विविधता से समन्वित होता हुआ अपनी आकार-वृद्धि करता है। नई-नई विधाओं में उसकी विविधता व्यक्त होती है। दूसरे चरण में उसमें विशिष्टता का समावेश होता है। इस चरण में विधाओं के बंधन टूटने लगते हैं।[1] साहित्य के क्षेत्र में "शक्ति का साहित्य" और "ज्ञान का साहित्य" का एक पुराना वर्गीकरण अब तक चल रहा है। और "शक्ति के साहित्य" को ही प्रचलित अर्थों में साहित्य की संज्ञा दी जाती है।

इन नए-नए रूपों का आविर्भाव भारतेन्दु युग से ही शुरू हो जाता है। भरतेन्दु युग के लेखकों ने सभी विधाओं में लिखा- कविता, नाटक, उपन्यास, निबंध और आलोचना। उपन्यास, निबंध, आलोचना और पुस्तक-समीक्षा की तो शुरूआत ही इस काल में हुई। लाला श्रीनिवास दास का उपन्यास 'परीक्षागुरु', बालकृष्ण भट्ट और प्रतापनारायण मिश्र के ललित निबंध, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का लंबा आलोचनात्मक निबंध "नाटक" (1983) अपने-अपने माध्यमों की पहली रचनाएँ हैं। खड़ी बोली हिन्दी का पुनरारंभ होने के कारण इस युग के लेखकों ने लोक साहित्य से भी काफी प्रेरणा ली। कजली, मुकरी, चूरन के लटके, लावनी जैसे लोकप्रचलित माध्यमों को इन लेखकों ने शिष्ट साहित्य में संक्रमित किया। इस रचना-प्रक्रिया का यदि विश्लेषण किया जाय तो स्पष्ट होगा कि हिन्दी साहित्य के आदिकाल की तरह आधुनिक काल का यह प्रथम चरण है जहाँ लोकसाहित्य और शिष्ट साहित्य तथा आधुनिक संदर्भ में पत्रकारिता और साहित्य के बीच संक्रमण अभी चल रहा है। एक ओर उपन्यास, ललित निबंध तथा पुस्तक-समीक्षा जैसे नए माध्यम अंग्रेजी के प्रभाव से ग्रहण किये जा रहे हैं, तो दूसरी ओर कजली, लावणी और मुकरी जैसे लोकमाध्यमों का अकुंठ भाव से प्रयोग हो रहा है।

बाद में चलकर विधाओं का यह दृढबंधन टूटने लगता है। उपन्यास और लंबी कहानी के भेद मिट जाते हैं। कहानी, संस्मरण और रेखाचित्र एक-दूसरे के बीच का पार्थक्य खो बैठते हैं। कहानी और रेखाचित्र में पत्र कारिता के योग से रिपोर्ताज नामक एक नई विधा का जन्म होता है। परिवर्तन और विकास की इन दशाओं में साहित्य-रूपों की परिभाषा देना बहुत कठिन हो जाता है। वैज्ञानिक परिभाषाओं और साहित्यिक परिभाषाओं में यह मौलिक अंतर होता है कि वैज्ञानिक परिभाषाएँ अटल सत्य को निरूपपित करती हैं, वे बहुधा अपरिवर्तनीय होती हैं, किसी गहनतर सत्य शोध द्वारा ही उनमें परिवर्तन संभव हो पाता है, जबकि साहित्यिक परिभाषाएँ व्यापकता को ध्यान में रखते हुए ही की जाती हैं। परिवर्तनशील समाज में मूल्य, प्रतिमान, मर्यादाएँ सभी बदलती रहती हैं। प्रतिपाद्य विषयों के विशिष्टीकरण की माँग के सामने विधाओं की रूढ़ियाँ अक्सर टूटती दिखाई देती हैं और प्रचलित विधाओं के सीमांतों पर नई-नई विधाएँ जन्म लेती दिखाई देने लगती हैं।

इन विधाओं के नामकरण भी कभी-कभी इतने सरल होते हैं कि उनसे किसी निश्चित रचना-समूह का बोध नहीं हो पाता। उदाहरण के लिए कहानी विधा का नाम लिया जा सकता है। जब कहानी

का स्वरूप बदलने लगा और विशिष्टीकरण के आविर्भाव के साथ वह सूक्ष्म होने लगी, यानी कहानी के चौकारे गठन के स्थान पर उसके मूल तत्व के ग्रहण पर जोर दिया जाने लगा, तब जो नई रचनाएँ सामने आई, उन्हें, स्केच, रेखाचित्र, शब्दचित्र, अध्ययन चित्र, भावचित्र आदि नाम दिए जाने लगे। इसी प्रकार, उपन्यास के स्वरूप में परिवर्तन होने पर उसमें तरह-तरह के विशेषण लगाकर मानो उनकी किन्हीं कमियों या ज्यादतियों के लिए क्षमायाचनाएँ की जाने लगीं, यथाः सामाजिक, राजनैतिक, आंचलिक आदि वस्तुतः विधाओं का यह विस्तार साहित्य के बढ़ते हुए उत्तरदायित्वों की सूचना देता है। कभी-कभी यह भी होता है कि किसी विधा का कोई सीमांतक रूप विस्तृत और व्यापक होकर एक स्वतंत्र अस्तित्व ग्रहण कर लेता है जैसे निबंध के क्षेत्र में समालोचना को लेकर हुआ है। समालोचना के रूप में "शक्ति के साहित्य" ने आगे बढ़कर ज्ञान के साहित्य को यथासंभव आत्मसात् करने की कोशिश की है और उसने अपना पूर्व स्वतंत्र रूप छोड़कर एक विकसित, संश्लिष्ट रूप ग्रहण कर लिया है।

3.3.4 मध्यकालीन सौन्दर्य-बोध बनाम आधुनिक सौंदर्य-बोध

मध्यकाल का सौंदर्य-बोध सामंती समाज में विकसित हुआ था। सामंती समाज एक ऐसा समाज था जिसमें श्रम की प्रतिष्ठा नहीं थी और स्त्री-पुरुष संबंध योनि-भोग तक हो गये थे। प्रसंगात् डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है, "मुगल शासन के अंतिम दिनों में जिस उत्तरदायित्वहीन विलासिता का वातावरण उत्पन्न हुआ था, वह नाना टुकडों में विभक्त होकर छोटे-छोटे आकारों में सारे देश में फैल गया। विलासिता जब चित्तगत संकीर्णता के साथ प्रकट होती है, तो केवल विनाश की ओर ही ले जाती है। मुगल दरबार के आदर्श पर प्रतिष्ठित शतधाविकीर्ण विलासिता छोटे-छोटे सरदारों के दरबारों में इसी चित्तगत संकीर्णता के साथ संबद्ध हो गई।" इसलिए इस काल की सौंदर्य-चेतना में एक प्रकार का रूग्ण मनोभाव है।

जीवन-दृष्टि के कोण से यदिहम देखे तब मध्यकाल खंडित मनोदृष्टि का काल लगता है। उसमें समग्र के भावन और दर्शन की विशेषता नहीं है। मध्यकाल का मनुष्य चीजों को खंड-खंड करके देखता है, टुकड़ों में देखता है। उसके पास न तो वह आँख है, न वह दृष्टि है जिससे कि वह वस्तु के सौंदर्य का समग्र साक्षात्कार कर सके। जिस प्रकार मध्यकाल का मनुष्य किसी लंबी यात्रा में विश्राम के लिए एक पड़ाव से दूसरे पड़ाव, एक समय से दूसरे समय पर ठहरता था, उसी प्रकार सौंदर्य का भावन भी वह पाड़ावों में करता है। खंडों से होकर गुजरना उसकी आदत में शामिल है। नारी-सौंदर्य के चित्रण में नख-शिख-वर्णन इसी मनोवृत्ति की देन है। नख से शिख तक पहुँचने के क्रम में सौंदर्य-बोध ही नहीं, नारी-बोध भी छूट जाता है। आज ऐसा लगता है कि जो दृष्टि नारी-अंगों का भले ही निरीक्षण करती हो, नारी का निरीक्षण नहीं कर पाती होगी। मलिक मोहम्मद जायसी के "पद्मावत" में पद्मावती का नख-शीख-वर्णन मध्यकाल के समग्र साहित्य में नारी-सौंदर्य के वर्णन में कदाचित् सबसे उज्ज्वल अंश है, किन्तु यदि उसकी तुलना "कामायनी" में श्रद्धा के रूप-वर्णन से की जाय, तो उस नख-शिख-वर्णन की सीमाएँ स्वतः स्पष्ट हो जाती हैं। श्रद्धा के रूप-वर्णन में समग्र की दृष्टि है। शब्दों के द्वारा युवती नारी का लावण्य छाया और प्रकाश की भाँति चित्रित हो उठा है और यह रूप त्वचा की राह से त्वचा के बाहर निकल जाता है। श्रद्धा के रूप-वर्णन में हम समग्र का भावन करते हैं और एक ऐसी कोमलता और सूक्ष्मता का अनुभव करते हैं जो मध्यकाल की कविता के लिए अशक्य है।

रस सिद्धान्त और अलंकार सिद्धांत आदि मध्यकालीन जीवन-दृष्टि की देन हैं। प्रोफेसर सिल्वा लेवी ने कहा था कि कला के क्षेत्र में भारतीय प्रतिभा ने संसार को एक नूतन और श्रेष्ठ दान दिया था जिसे प्रतीक रूप से रस शब्द के द्वारा प्रकट कर सकते हैं और जिसे एक वाक्य में इस प्रकार कह सकते हैं कि कवि अभिव्यक्त नहीं करता, व्यंग्य या ध्वनित करता है। इस रस-दृष्टि की प्रशंसा करते हुए हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है - "विविध बंधनों के भीतर रहकर संस्कृत के कवि ने एक अपूर्व संयम का अभ्यास किया। अपने आपको मिटाकर वह सहज ही सर्वसाधारण का प्रतिनिधि हो सका है और वास्तविकता की कठोर विषमता के भीतर एक शाश्वत मंगल को प्राधान्य दे सका है।" लेकिन, आज मध्यकाल की यह रस-दृष्टि असंगत और जड़ लगती है।

काव्य शास्त्र कवि या आचार्य की रचना न होकर सामाजिक संदर्भ से व्युत्पन्न होता है। मध्यकाल की जिस खंड-दृष्टि ने हजार जातियों की रचना की, उसी दृष्टि ने नायिकाओं के हजारों भेद गढ़े। काव्यशास्त्र पर वात्स्यायन का कामशास्त्र हावी रहा। मध्यकाल का उत्तरकाल इस सिद्धांत के नाम पर नायिका-भेद का काल रह गया था। इस का उत्स अंततः जीव नहीं, नायिकाएँ ही रह गई थीं और रीतिकाल तक आते-आते रूप-सुरूप का भी भेद मिट गया था। ऐसे समाज में धीरोदात्त या धीरप्रशांत नहीं, बल्कि धीरललित नायक ही उत्पन्न हो सकते हैं। बाद में यह धीरता भी छूट जाती है, केवल लालित्य रह जाता है। इस युग के जड़ीभूत सौंदर्य के बोध के मूल में मुख्य कारण यह है कि साहित्य या राजनीति के सामने समाज-सुधार का कोई कार्यक्रम नहीं था।

मध्यकाल में ध्वनि के तत्व का उन्मीलन भारतीय काव्यशास्त्र की सबसे मौलिक और महत्वपूर्ण उद्भावना है। लेकिन, ध्वनि किस लिए? ऐसा लगता है कि समाज में जब-जब छिनालपन का विकास होता है, तब-तब काव्य के क्षेत्र में ध्वनि-सिद्धांत का भी विकास होता है। ईसा की सातवीं से दशवीं सदी के बीच जब समाज में छिनालपन फूल-फल रहा था, तब उसी समय "गाथा सप्तशती" और "अमरुशतक" लिखे जा रहे थे। उसी समाज और काव्य के संदर्भ में आनंदवर्धन ने ध्वनिसिद्धांत की रचना की और बाद में चलकर उसे सुदृढ़ शास्त्रीय आधार प्रदान किया अभिनवगुप्त ने। जो सौंदर्य सिद्धांत इस सामाजिक संदर्भ में विकसित होगा, उसकी सीमाएँ स्वतः स्पष्ट हैं। उन्नीसवीं सदी की फ्रेंच कथाकार जॉर्ज सैण्ज ने लिखा है "कला कोई ऐसा कौशल नहीं है जो जीवन के अन्य सभी क्षेत्रों के ज्ञान के बिना अपने आप विकास कर सके। इसके लिए जरूरी है कि कलाकार व्यापक अनुभव का संग्रह करे और सत्य की खोजों में भाग ले। उसे बहुत कुछ पचाने, बहुत ज्यादा प्यार करने और बहुत ज्यादा ही दुःख झेलने और सहने की जरूरत है। इस बीच पूरे मानोवेग से उसे रचनात्मक कार्य में भी संलग्न रहना चाहिए।" तात्पर्य यह कि सौंदर्य जीवन-तत्वों की खोज से ही फूटता है।

3.3.5 सौन्दर्य-बोध का ऐतिहासिक विकास-क्रम

भारतेन्दु और द्विवेदी युग

जब मध्यकाल की पीठ पर आधुनिक काल आया तब औद्योगिक सभ्यता और समाज सुधार के नए आंदोलनों के प्रभाव से भारतीय मनुष्य की सौंदर्य-दृष्टि भी बदली। मध्यकाल का सौंदर्य-बोध अभिजात वर्ग का जड़ीभूत सौंदर्य-बोध था। वह सौंदर्य-बोध असाधारण की खोजऔर उदात्त के सृजन में निहित था। लेकिन, जब आधुनिक काल आया, तो मनुष्य की सौंदर्य-दृष्टि भी बदली। आधुनिक बोध साधारण की प्रतिष्ठा से उत्पन्न बोध है। इस बदलाव का प्रस्थान-बिंदु है भारतेन्दु के नाटक "अंधेरीनगरी" में चुरनवाला गीत। यह गीत अभिजात वर्ग की चेतना से बाहर निकलकर भारतीय मनुष्य को निचले तबके से जोड़ता है। आश्चर्य नहीं कि इसी समय कुछ बाद पं. प्रताप नारायण मिश्र को कानपुर के बनियों के लड़के के गले में लटकती सोने की माला उन्हें ग्राम्य लगी थी और समग्र सामंती अलंकरण का निषेध करते हुए उन्होंने लिखाः

"गरे जंजीरै हैं सोने की मानो बँधुआ कलजुग क्यार।
बाँध अनघा कोउ पहिरे टड़िया मनौ मेहरियन क्यार॥
घड़ी अंगरखनमाँ कोउ खोंसे टिुना घड़ी धरे कोउ ज्वान।
भरि भरि चुटकी सुँघनी सूँघे कोउ चर चर चौबें पान॥"

स्पष्ट ही, प्रताप नारायण मिश्र नए सुधारवादी और पुनरुत्थानवादी आंदोलन के संदर्भ में सादगी की हिमायत करते हुए सामंती सौंदर्य-दृष्टि को नकारते हैं। मिश्रजी कुश्तीं कुश्ती और कसरत के हिमायती थे। प्रताप नारायण मिश्र कानपुर के सोने की जंजीर पहननेवाले, चुल्फ चिकनाने वाले व्यापरियों और उनकी संस्कृति से प्रभावित अन्य वर्ग के लोगों में कुस्ती, कसरत के प्रति अवज्ञा देखकर खीझते थे। वे सुडौल शरीर के प्रशंसक थे।

मैथिली शरण गुप्त नवजागरण के पहले कवि हैं। जब सौंदर्य के लिए अलंकरण को नकार दिया गया, तब कवि लोग सहज ही सौंदर्य के नए उपादानों की खोज की ओर उन्मुख हुए। इस खोज की पहली झलक मैथिलीशरण गुप्त की कविताओं में मिलती है। "पंचवटी" में मैथिली शरण गुप्त सौंदर्य के उपादानों की खोज में प्रकृति की ओर उन्मुख होते हैं और सीता के लवण्य का सादृश्य उषा की छवि में देखते हैं, यथाः

इसी समय पौ फटी पूर्व में पलटा प्रकृतिपटी का रंग।
किरण-कंटकों से श्यामाम्बर फटे दिवा के दमके अंग॥
कुछ-कुछ अरुण सुनहली प्रकृति नटी की भूषा थी।
पंचवटी की कुटी खोलकर स्वयं खड़ी क्या ऊषा थी॥

नवजागरण में श्रम के मूल्य की प्रतिष्ठा हुई। कभी सुंदरियों की शोभा असमाप्य सुकुमारता में समझी जाती थी। "सौंधे पाँव न धरि सकै शोभा ही के भार।" किंतु, नवजागरण में आकर श्रमबिंदु से लथपथ युवती के शरीर-सम्भार का बखान किया गया। यहाँ भी मैथिलि शरण गुप्त से बढ़िया दूसरा दृष्टांत मिलना मुश्किल है। "साकेत" में वनवासी सीता के श्रमसिक्त सौंदर्य का यह वर्णन दृष्टव्य है

अंचल-पर कटि में खोंस, कछोटा मारे
सीता माता भीं आज नई धज धारे।

• • •

औरों के हाथों यहाँ नहीं पलती हूँ,
अपने पैरों पर खड़ी आप चलती हूँ।
श्रमवारि विन्दु फल स्वास्थ्य शुचि फलती हूँ,
अपने अंचल से व्यंजन आप झलती हूँ।
तनु-लता-सफलता-स्वाद आज हो आया,
मेरी कुटिया में राजभवन मन भाया॥

इस प्रकार, सुधारवाद और नवजागरण के कारण मध्यकाल की जड़ीभूत सौंदर्य-दृष्टि का स्थान ताजगी और स्फीर्ति से संपन्न सौंदर्य-दृष्टि ने लिया।

BRAOU

3.3.6 आध्यात्मिक, सांस्कृतिक दृष्टि से विकसित स्वच्छंदतावादी सौंदर्य-बोध

आध्यात्मिक अथवा लोकोत्तर सौंदर्य के अंतर्गत छायावादी कवियों ने मानवेतर सौंदर्य की सृष्टि की है और प्रायः अप्सरा सौंदर्य को प्रश्रय दिया है। छायावाद वस्तुतः अप्सरा लोक का काव्य है। इन्होंनें अपनी सौंदर्य संबंधी जो अवधारणा व्यक्त की है, उसमें श्री सौकुमार्य और सम्मोहन की अति व्याप्ति है। फलतः इनका नारी-सौंदर्य अप्सरा-सौंदर्य में परिणत हो गया है। छायावादी काव्य वस्तुतः स्वर्ग की परियों का संसार है; यथाः

दूर उन खेतों के उस पर जहाँ तक गई नील झंकार।
छिपा छायावन में सुकुमार स्वर्ग की परियों का संसार॥

अप्सरा लोक के कवि हैं सुमित्रा नंदन पंत। वे अप्सरा की चंचल गति और उसके मायामय रूप पर मुग्ध हैं। उन्होंने विद्युत-बालाओं, लहरवारि की परी और जल में तैरती शुक्र की झलमल छवि को चांचल्य के कारण ही अप्सरा-सौंदर्य से उपमित किया है। पंतजी का अप्सरापरक सौंदर्यबोध सर्वथा अतींद्रिय है।

रामधारी सिंह दिनकर ने लिखा है "छायावादी कवियों ने सौंदर्य-बोध को धर्म के धरातल पर अधिष्ठित् कर दिया और उन्होंने नाना छंदों में, अपूर्व भंगिमा के साथ यह घोषणा की कि नारी भोग्या नहीं, प्रेरणा का पावन उत्स हैं; उसे दूर से देखकर प्रेरित एवं प्रफुल्ल होने में जो आनंद है, वह और कहीं भी नहीं मिल सकता।" नारी का यह धर्मपरक सांस्कृतिक रूप जिससे पावनता का संचार होता है, सबसे अधिक सुमित्रानंददन पंत की कविताओं में उभरा है। "उच्छवास" की "बालिका के प्रति" शीर्षक कविता में उन्होंने लिखा -

तुम्हारे छूने में था प्राण,
संग में पावन गंगा-स्नान।
तुम्हारी वाणी में कल्याणि
त्रिवेणी की लहरों का गान॥

नारी के संग में पावन गंगा-स्नान का स्वच्छन्दतावादी या छायावादी सौंदर्य बोध अवश्य ही कल्पनाशील है। छायावादी कवियों ने मानसिक कल्पना जगत् में सौंदर्य का अन्वेषण किया है और उसे आध्यात्मिक रूप देते हुए जीवन का सत्य माना है। लेकिन उस सौंदर्य बोध के तीन और आयाम भी ज्ञातव्य है। (1) प्रकृति साहचर्य ने उस सौंदर्य बोध को नैसर्गिक बनाया है। (2) रूप परंपरा को छोड़कर जीवन के सहज और स्वच्छन्द अनुभूति के आग्रह उसे तरल बनाया है। (3) अन्तर्मुखी दार्शनिक-आध्यात्मिक चिंतन ने सौंदर्य बोध को सूक्ष्म उदात्तता प्रदान की है। जिसकी आध्यात्मिक अनुभूति होती हो, उसकी पावनता की कल्पाना सहज ही की जा सकती है। छायावाद की नारी "वासना नहीं अर्चना का विषय है, जिससे पुरुष भोग और तृप्ति नहीं, प्रेरणा और स्फुरणा की प्राप्ति करता है, जिसे छुने की इच्छा तो जगती है, किन्तु उस इच्छा का पर्यवसान स्पर्श नहीं स्फूर्ति में होता है। (दिनकर)

"स्पर्श के आकर्षण से पूर्ण प्रकट करती ज्यों जड़ में स्फूर्ति।" यह, नारी को देखने की छायावादी दृष्टि है।

3.3.7 मार्क्सवादी सामाजिक यथार्थता का सौन्दर्य-बोध

छायावाद के बाद प्रगतिवाद का साहित्यिक आंदोलन आता है और सामाजिक यथार्थ के संदर्भ में पूरा सौन्दर्य-बोध ही बदल जाता है। कथाकार प्रेमचन्द ने यथार्थ के आग्रह से सौन्दर्य की कसौटी बदलने का प्रस्ताव इन शब्दों में किया- "उसके (साहित्यकार) लिए सौन्दर्य सुंदर स्त्री में हैं- उस बच्चों वाली गरीब रूपरहित स्त्री में नहीं, जो बच्चों को खेत की मेंड़ पर सुलाए पसीना बहा रही है। उसने निश्चय कर लिया है कि रंगे होठों, कपोलों और भौहों में निस्संदेह सुंदरता का वास है- उसके उलझे हुए बालों, पपड़ियों पड़े हुए होठों और कुम्हलाये हुए गालों में सौंदर्य का प्रवेश कहाँ? पर यह संकीर्ण दृष्टि का दोष है। अगर उसकी सौंदर्य देखने वाली दृष्टि में विस्तृति आ जाय तो वह देखेगा कि रंगे होठों और कपोलों की आड़ में अगर रूप-गर्व और निष्ठुरता छिपी है, तो इन मुरझाये हुए होठों और कुम्हलाए हुए गालों और आँसुओं में त्याग-श्रद्धा और कष्ट-सहिष्णुता है। हाँ, उसमें नफासत नहीं, दिखावा नहीं, सुकुमारता नहीं।" स्पष्ट ही, प्रेमचंद्र के पास नव्य जनवादी सौंदर्य-दर्शन की सृजनात्मक रूपरेखा है। उनके कथा साहित्य में इस सौंदर्य का सृजनात्मक निदर्शन पग-पग पर मिलता है। "गोदान" में प्रस्तुत रूप-वर्णन को ही लिया जाय। होरी की बड़ी सोना का रूप-वर्णन करते हुए प्रेमचंद्र लिखते हैं।" लम्बा, रूखा, किन्तु प्रसन्न मुख, ठोड़ी, नीचे की खिंची हुई, आँखों में क प्रकार की तृप्ति, न केशों में तेल, न आँखों में काजल, न देह पर कोई आभूषण, जैसे गृहस्थी के भार ने यौवन को दबाकर बौना कर दिया हो।" यह छायावादी रूमानी रूप-वर्णन से अलग चीज है। यह किसी अभिजात नारी का रूप नहीं वरन् गरीबी में पील किशोरी की रूक्ष तस्वीर है और रायसाहब की पूरी पार्टी जब "गोदान" के सातवें परिच्छेद में पहाड़ियों में शिकार खेलने जाती है तब जिस पार्वत्य बाला से प्रोफेसर मेहता की मुलाकात होती है, उसके नाक-नक्ष का वर्णन प्रेमचंद्र ने यों किया हैः "युवती का रंग था तो काला और वह भी गहरा, कपड़े बहुत ही मैले और फूहड़, आभूषण के नाम पर केवल हाथों में दो-दो मोटी चूड़ियाँ, सिर के बाल उलझे अलग-अलग। मुखमंडल का कोई भाग ऐसा नहीं

जिसे सुंदर या सुधर कहा जा सकें।" यह प्रेमचंद्र का जनवादी सौंदर्य है जो अभिजात सौंदर्य से एकदम भिन्न चीज है। अभिजात सौंदर्य का प्रतिमान मालती से इस पार्वत्य बाला की तुलना करते हुए प्रेमचंद्र ने लिखा हैः "एक वन-पुरुष की भाँति धूप में खिली हुई, दूसरी गमले के फूल की भाँति धूप में मुरझायी और निर्जीव।" स्पष्ट ही प्रेमचंद्र अभिजात नारी-सौंदर्य को गमले के फूल की भाँति धूप में मुरझायी और निर्जीव मानते हैं। इस यथार्थपरक सौंदर्य-दृष्टि का प्रभाव इतना व्यापक पड़ा कि छायावाद के कवि भी इससे बचे नहीं रह सके। और तो और, सौंदर्य के इस नए मूल्य से प्रभावित होकर छायावाद के प्रवर्तक कवि सुमित्रा नंदन पंत ने भी छायावादी सौंदर्य-दृष्टि का तिरस्कार करते हुए इस नूतन सौंदर्य-बोध का अवतरण किया। वे नारी के ऐसे रूप की कल्पना करते हैं जिसमें वह स्त्रैण न हो और जो पुरुष की तरह ही कर्म-संकुल जीवन में अपनी सार्थकता खोज रही हो।

नारी की संज्ञा भुला, नरों के संग बैठ,
चिर जन्म सुहृद रही जन हृदयों में सहज पैठ,
जो बँटा रही तुम जगजीवन का कामकाज,
तुम प्रिय हो मुझेः न छूती तुमको कामलाज।

नर और नारी का वास्तविक सौंदर्य कर्म-संकुल जीवन में उतरने से निखरता है। श्रम और जीवन पर्याय ही हैं। जहाँ श्रम नहीं वहाँ जीवन का वास्तविक स्पंदन भी नहीं। श्रम के द्वारा मनुष्य की सहजात वृत्तियाँ मानवीय वृत्तियों में रूपांतरित होती हैं। श्रम का सौंदर्य मानव-निर्मित सौंदर्य है। श्रम से सिक्त हुए बिना नारी में मानवीयता नहीं आ पाती है। "निराला" ने "तोड़ती पत्थर" नामक कविता में श्रम के स्पर्श से आए नारी-सौंदर्य के निखार का नंदतिक प्रगीत लिखा है –

कोई न छायावार
पेड़ वह जिसके तले बैठी हुई, स्वीकार
श्याम तन, भर बँधा यौवन
नत नयन, प्रिय कर्मरत मन
गुरु हथौड़ा हाथ, करती बार-बार प्रहार,
सामने तरु मालिका, अट्टालिका प्राकार।

यह कठोर कर्म में रत युवती की तस्वीर है। यह वह अभिजात सौंदर्य नहीं है गोरे सुकुमार अंगों से छलक पड़ता है। यह "श्याम तन" का सौंदर्य है जो "कर्मरत मन" के कारण "बँधा यौवन" पा गया है। इस सौंदर्य की कुंजी है "प्रिय कर्मरत मन" किंतु, इस सौंदर्य की अपनी करुणा है। स्वयं निराला ने लिखा हैः वह जहाँ बैठी है, वह पेड़ छायादार नहीं, अट्टलिका तरुमालिका है। अट्टालिका भी तरुमालिका से घिरी है, फिर आदमी कितनी छाँह में है? आदमी तो छाँह में नहीं है, युवती भी, पर कर्म की ऊर्जा से उसका "यौवन बँध" कर पावन रूप बन गया है। यह वह सौंदर्य नहीं जो केवल सुख देता है, वरन् यह व्यथा से परिव्याप्त कर्मसिक्त रूप है। इसी परिप्रेक्ष्य में "नत नयन" की मानवीयता उभरी है। लेकिन, इस मानवीय रूप का परिवेश सर्वथा अमानवीय है। सामने की अट्टालिका आर्थिक और सामाजिक विषमता की प्रतीक है। इस कारण इस श्रम से एक विलगाव उत्पन्न होता है।

देखते देखा मुझे तो एक बार,
उस भवन की ओर देखा, छिन्न तार।
देखकर कोई नहीं,
देखा मुझे उस दृष्टि से,
जो मार खा रोई नहीं।

इस सारी अमानवीयता के बीच श्रम ही जीवन है और सौंदर्य भी। यह कविता हमारे साहित्य में एक नूतन सौंदर्यदृष्टि का गवाक्ष खोलती है।

BRAOU

3.3.8 बौद्धिक चिंतन से उत्पन्न सौंदर्य-बोध

जब हिन्दी में प्रयोगवाद और नई कविता का आंदोलन आया तब रुमानी जीवनदृष्टि की प्रतिष्ठा घटी और भावुकता को कविता से विदा कर दिया गया। उच्छ्वास और भावकुलता अच्छी दृष्टि से नहीं देखे जाने लगे। परिणामतः सौंदर्य-बोध में भी परिवर्तन आया। अब कविता की राह, जैसा कि कवि दिनकर ने "चक्रवाल" की भूमिका में लिखा जुही और चमेली के कुंजों से होकर नहीं, समर्थ बुद्धि की कड़ी चट्टान से होकर जानेवाली है। अंग्रेजी में इलियट की कविता से ऐसी बौद्धिक कविता का वातावरण बन गया था। हिन्दी में भी जब नई कविता आरंभ हुई तब जुही और चमेली, चाँद और चाँदनी कविता से विदा हो गए। सौंदर्यबोध में आए इस बदलाव को ही लक्ष्य कर कवि अजित कुमार ने लिखा -

चाँदनी चंदन सदृश हम क्यों लिखें?
मुख हमें कमलों सरीखे क्यों दिखें?
हम लिखेंगे चाँदनी उस रुपये सी है,
कि जिसमें चमक है पर खनक गायब है।

यही वह नया सौंदर्य-बोध है जिसमें कैक्टस की प्रतिष्ठा हुई। कैक्टस का आगमन बदले हुए सौंदर्य-बोध और मानसिकता का सबसे बढ़िया प्रमाण है। इस बुद्धिवादी युग में नारियाँ भी बदलने लगीं। दिनकर की "उर्वशी" (1860) एक ऐसी चमेली है जो चिंतन कर सकती है। यथा:

अतल, अनादि, अनन्त, पूर्म, बृहित, अपार अम्बर में
सामा खींचे कहाँ? निमिष, पल, दिवस, मास, संवत्सर
महाकाश में टँगे काल के लत्तक-से लगते हैं।

सब है शून्य, कहीं कोई निश्चित आकार नहीं है
क्षण-क्षण सब कुछ बदल रहा है परिवर्तन के क्रम में।

धूमयोनि ही नहीं, ठोस यह पर्वत भी छाया है,
यह भी कभी शून्य अम्बर था, और अचेत अभी भी,
सये-नये आकारों में क्षण-क्षण यह समा रहा है;
स्यात्, कभी मिल ही जीये, क्या पता, अनन्त गगन में।

यह एक दृष्टांत भी है। मुक्तिबोध जैसे कवियों में ऐसे बुद्धिवादी सौंदर्य-बोध के शत-शत दृष्टांत मिलते हैं। इस बुद्धिवादी तत्व के साथ-ही-साथ लोकतत्व से युक्त सौंदर्य-बोध का भी समावेश हुआ। अज्ञेय जैसे कवि जब युवती नारी के लिए बाजरे की कलगी का सादृश्य विधान लाते हैं, तब इसे लोकतत्व का प्रभाव ही समझना चाहिए।

3.4 सारांश

इस प्रकार, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से लेकर अब तक हिन्दी कविता के विकास से हिन्दीभाषी समुदाय के विकसनशील सौंदर्य-बोध का पता चलता है। आधुनिक बोध ने भारतीय मनुष्य के मन में परिवर्तन किया और इस परिवर्तन का प्रभाव हिन्दी कविता के सौंदर्य-बोध पर भी पड़ा। सुधारवाद, पुनरुत्थानवाद और नवजागरण सबने मिलकर हिन्दीभाषी जनसमुदाय के मन में जो मंथन उत्पन्न किया, उससे हिन्दी कविता के सौन्दर्यबोध में भी परिवर्तन आया। नए मध्य वर्ग ने द्विवेदी युग तक सामंती सौन्दर्य-बोध का पूर्ण तिरस्कार कर दिया और उसके स्थान पर श्रमजल से सिक्त, ताजगी से भरे, नूतन सौंदर्य-बोध की रचना की। छायावाद में आकर नए मध्य वर्ग का सौंदर्यबोध सूक्ष्म, भावुकतापूर्ण झंकृतियों से भर गया। प्रगतिवाद में आकर हमारा साहित्य यथार्थ का साक्षात्कार करता है और उससे यथार्थवादी सौंदर्य-बोध की रचना हुई। प्रयोगवाद और नई कविता में नए बौद्धिक सौंदर्य-बोध और लोकतत्व से युक्त सौंदर्य-बोध का विकास हुआ।

BRAOU

3.5 पारिभाषिक शब्दावली

प्रतीक = किसी वस्तु का किसी विशेष अर्थ में रूढ़ हो जाना प्रतीक कहलाता है।
यथार्थवाद = जीवन, जगत् एवं वस्तुओं का साहित्य में यथातथ्य वर्णन यथार्थवाद कहलाता है।
रुढ़ि = समय-प्रवाह में किसी चीज का न बदलते हुए अप्रसंगिक बन जाना रुढ़ि है।
विधा = उपन्यास, कहानी, नाटक आदि साहित्य के विभिन्न रूपों को विधा कहते हैं।

3.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

3.6.1 'अ' श्रेणी के प्रश्न

1. आधुनिक साहित्यिक चेतना के विविध आयामों का विवेचन कीजिए।
2. नये साहित्य-रुपों के विकास पर विचार कीजिए।
3. आधुनिक साहित्य में नये सौंदर्य-बोध के ऐतिहासिक विकास की रूपरेखा प्रस्तुत कीजिए।
4. मार्क्सवाद सौंदर्य दृष्टि की आधार भूमि स्पष्ट कीजिए।

3.6.2 'ब' श्रेणी के प्रश्न

1. मध्यकालीन संवेदना और आधुनिक साहित्यिक चेतना का अन्तर स्पष्ट कीजिए।
2. नये साहित्यिक रूपों के विकास के ऐतिहासिक संदर्भ पर विचार कीजिए।
3. मध्यकालीन और आधुनिक सौंदर्य बोध में अन्तर कीजिए।
4. बोद्धिक चिंतन से उत्पन्न आधुनिक सौंदर्य बोध की व्याख्या कीजिए।
5. आधुनिक साहित्य चेतना को किन-किन विचारधाराओं ने प्रभावित किया है?
6. छायावादी सौंदर्य-बोध की प्रधान विशेषताएँ क्या हैं?

3.7 नमूने के उत्तर

BRAOU

3.7.1 'अ' श्रेणी के प्रश्नोत्तर

प्रश्नः आधुनिक साहित्यिक चेतना के विभिन्न आयामों का विवेचन कीजिए।
उत्तरः चेतना का संबंध जागरण से होता है। आधुनिक चेतना प्रगतिशीलता से अनिवार्यतः जुड़ी हुई है। आधुनिक साहित्यक चेतना का पहला आयाम है जीवन की बहुमुखी अभिव्यक्ति। मध्यकाल के कवि का वर्ण्य विषय बहुत सीमित होता था। वह श्रृंगार आदि को अधिक महत्व देता था। लेकिन, आज के कवि के वर्ण्य विषय का काफी विस्तार हो गया है। छोटी-से-छोटी और बड़ी-से-बड़ी, सारी वस्तुएँ काव्य का विषय हैं। जीवन के विविध व्यापारों को काव्य में अभिव्यक्ति प्रदान करना मुख्य बात है। आधुनिक साहित्यिक चेतना का दूसरा आयाम यथार्थवाद है। इसकी रचना करने में डार्विन, मार्क्स, फ्रायड आदि विचारकों की महत्वपूर्ण भूमिका है। उनके विभिन्न सिद्धांतों ने साहित्य में यथार्थवाद की पीठिका प्रस्तुत कर दी। यथार्थवाद का प्रथम विकास प्रगतिवाद के माध्यम से हुआ। जीवन की तुच्छ-से-तुच्छ परिस्थिति को भी साहित्य में चित्रित किया जाने लगा। प्रयोगवाद ने यथार्थवादी प्रवृत्ति को और गहरा बनाया। सामाजिकता आधुनिक साहित्यिक चेतना का तीसरा आयाम है। यह यथार्थवाद की स्वाभाविक परिणति है। प्रगतिवाद प्रखर सामाजिक चेतना का आंदोलन है। नई कविता में मानवतावाद की अभिव्यक्ति हुई। सातवें, आठवें दशक की हिन्दी कविता जुझारू रही है। आधुनिक साहित्यिक चेतना का एक अन्य आयाम है लोकतत्व। उत्तर मध्यकाल का साहित्य अभिजात मनोवृत्ति का साहित्य है। उसके विपरित आज के साहित्य में लोकतत्व का पर्याप्त समावेश है, जो उसे प्राणवंत बनाता है। आधुनिक साहित्यिक चेतना का पाँचवा आयाम है साधारण की चेतना। आधुनिक साहित्य में श्रमजीवी वर्ग नायकत्व प्राप्त करता है। इस वर्ग के जीवन के विभिन्न पहलुओं के चित्रण से हिन्दी साहित्य समृद्ध हुआ है।

3.8 पठनीय पुस्तकें

1. मध्यकालीन बोध का स्वरूप – डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी
2. आधुनिक बोध – रामधारी सिंह दिनकर
3. छायावादी कवियों का सौंदर्य-विधान – सूर्यप्रसाद दीक्षित
4. अशुद्ध काव्य की संस्कृति में – डॉ. विजेन्द्र नारायण सिंह

BRAOU

इकाई-4: साहित्य को प्रभावित करने वाले विभिन्नवाद

4.0 विषय प्रवेश
4.1 पाठ का उद्देश्य
4.2 पाठ्-परिचय
4.3 मूल पाठ
 4.3.1 विचारधारा, वाद और साहित्य
 4.3.2 आदर्शवाद
 4.3.4 मानववाद
 4.3.5 राष्ट्रवाद
 4.3.6 व्यक्तिवाद
 4.3.7 स्वच्छन्दतावाद
 4.3.8 प्राकृतवाद
 4.3.9 यथार्थवाद
 4.3.10 मूल्यांकन
4.4 पाठ का सारांश
4.5 पारिभाषिक शब्द-अर्थ
4.6 अभ्यासार्थ प्रश्न
 4.6.1 'अ' श्रेणी के प्रश्न
 4.6.2 'ब' श्रेणी के प्रश्न
4.7 नमूने के प्रश्नोत्तर
 4.7.1 'अ' श्रेणी के प्रश्नोत्तर
 4.7.2 'ब' श्रेणी के प्रश्नोत्तर
4.8 पठनीय पुस्तकें

BRAOU

4.0 विषय प्रवेश

साहित्य और विचारधारा का बड़ा गहरा संबन्ध है। चिन्तन की कोई विशिष्ट प्रणाली जब किसी विशेष दिशा में विशेष दृष्टि और सिद्धान्त से जुड़कर प्रवाहित होती है तो उसे 'वाद' कहा जाता है। आधुनिक हिन्दी साहित्य पर विभिन्न विचारधाराओं का प्रभाव विभिन्न वादों के रूप में पड़ा।

4.1 पाठ का उद्देश्य

इन विचारधाराओं का संक्षिप्त परिचय देते हुए हिन्दी साहित्य के विभिन्न पहलुओं पर पडे इनके प्रभाव का विवेचन ही प्रस्तुत पाठ का उद्देश्य है। इससे निम्नलिखित तथ्यों पर प्रकाश पड़ेगा -

(1) विचारधारा साहित्य के विशेष पक्ष को किस प्रकार प्रभावित व रुपायित करती है, तथा,
(2) आधुनिक युग में भौगोलिक-सांस्कृतिक समीपता के कारण हिन्दी साहित्य पश्चिमी विचारधाराओं के प्रवेश के लिए खुला रहा,
(3) परिणाम-स्वरूप भारतीय संस्कृति की निजी परम्पराओं और पाश्चात्य प्रभावों से समन्वित होकर ही हिन्दी साहित्य का विकास हुआ।

4.2 पाठ-परिचय

हिन्दी साहित्य के लिए आधुनिक काल अभूतपूर्व खुलेपन, विस्तार और ग्रहणशीलता का काल रहा। एक ओर भौगोलिक-राजनीतिक और सांस्कृतिक स्तर पर उसके द्वार पश्चिम के लिए खुल गए, जिनसे होकर नए-नए विचार और भाव आने-जाने लगे, और दूसरी ओर अपनी ही प्राचीन परम्पराओं व दार्शनिक सिद्धान्तों की ओर दृष्टि गई। फलस्वरूप हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल में नए और पुराने, स्वदेशी और विदेशी विचारधाराओं का मिलाजुला स्वरूप प्रकट हुआ। इसे विभिन्न वादों के नाम से जानजाता है, जैसे आदर्शवाद, मानवाद, राष्ट्रवाद, प्रकृतवाद, यथार्थवाद और अति यथार्थवाद कलावाद, अभिव्यंजनावाद और प्रतीकवाद, मार्क्सवाद, मनोविश्लेषवाद और अस्तित्ववाद तथा व्यक्तिवाद और स्वच्छन्दतावाद। इन सभी विचारधाराओं तथा हिन्दी साहित्य पर उनके प्रभावों का हम क्रमानुसार विवेचन करेंगे।

4.3 मूलपाठ

4.3.1 विचारधारा, वाद और साहित्य

विचारधारा और साहित्य का बड़ा गहरा संबंध है। आधुनिक आलोचना में यह तथ्य अब सभी स्वीकार करते हैं कि साहित्य एक मानवीय क्रियाकलाप है। साहित्य मनुष्य के द्वारा मनुष्य के लिए रचा जाता है, और इसकी विषय-वस्तु भी मनुष्य-जीवन ही है। इस कारण साहित्य का उद्देश्य केवल मनोरंजन नहीं, केवल कल्पना का सुख नहीं, बल्कि जीवन के यथार्थ का चित्रण करना एवम् जीवन को एक दिशा देना होता है। इसके लिए उसे विचारधारा का आधार चाहिए। विचारधारा अलग-अलग दृष्टियों से उपजने और अलग-अलग मान्यताओं से जुड़ने के कारण अलग-अलग 'वादों' के रूप में विभक्त होती है। साहित्य पर इन वादों का प्रभाव पड़ता है। हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल में जिन प्रमुख वादों का प्रभाव पड़ा, उनका विवेचन इस प्रकार है -

4.3.2 आदर्शवाद

आदर्शवाद हिन्दी में नैतिक आदर्शों, मूल्यों और मान दण्डों के मिलेजुले रूप के लिए प्रयुक्त होता है। साहित्य में आदर्शवाद का अर्थ और अधिक सीमित और सुस्पष्ट है। साहित्य में आदर्शवाद का अर्थ है- मानव-जीवन के आन्तरिक पक्ष पर बल देना। मनुष्य-जीवन के दो पक्ष हैं- बाह्य और आन्तरिक। बाह्य-जीवन में भौतिक सुख साधनों, उपकरणों और वैभव आदि की प्रमुखता होती है, जबकि आंतरिक जीवन में नैतिक मूल्य, प्रसन्नता, त्याग, संतोष आदि आते हैं। इसलिए जो व्यक्ति केवल भौतिक सुखसाधन जुटाने में लगा रहता है, उसे भौतिकवादी कहते हैं, लेकिन परमार्थ के लिए जो स्वार्थ का त्याग करता है, जनता, देश या समाज के लिए जो प्रयत्न करता है उसे आदर्शवादी कहते हैं। इस दृष्टि से भारतीय संस्कृति की मूल चेतनाही आदर्शवादी है। आधुनिक हिन्दी साहित्य के आरम्भ ही से आदर्शवाद का प्रभाव प्रबल दिखाई देता है। तत्कालीन परिस्थितियाँ भी इसके लिए कारण प्रस्तुत कर रहीं थीं। राष्ट्रीय स्वतंत्रता-संग्राम के लिए प्राणों की बलि देनेवालों के उस युग में महावीर प्रसाद द्विवेदी ने यदि साहित्यकारों को व्यक्तिगत प्रेम की जगह देशप्रेम, राष्ट्रीयता समाज-सुधार, भारतीय संस्कृति की उच्चता और जन-कल्याण के लिए लिखने को कहा तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है। गद्य के क्षेत्र में प्रेमचन्द्र ने लिखा कि "साहित्य महफिलों के मनोरंजन की वस्तु नहीं, यह देशभक्ति और राजनीति के आगे मशाल दिखाते हुए चलनेवाली सच्चाई है" तो वे आदर्शवादी दृष्टिकोण का ही प्रवर्तन कर रहे थे, और कविता की भाषा में मैथिली शरण गुप्त ने जब लिखा कि -

"केवल मनोरंजन न कवि का कर्म होना चाहिए
उसमें उचित उपदेश का भी मर्म होना चाहिए॥

BRAOU

तो वे आदर्शवाद ही को प्रकट कर रहे थे। हिन्दी साहित्य में द्विवेदी युग और छायावाद युग में यह आदर्शवाद प्रबल रहा हिन्दी राष्ट्रीय-सांस्कृतिक कविता पर इस वाद की विशेष छाया है। गांधीवाद आदर्शवाद का ही रूप है।

4.3.3 मानववाद

मानववाद मनुष्य को केन्द्रीय महत्व-देनेवाली विचार धारा है। आधुनिक युग में विज्ञान के प्रभाव से यह सिद्ध हो गया कि सृष्टि के सारे व्यापार और मनुष्य के सारे क्रियाकलाप वैज्ञानिक चिन्तन और अनुसंधान से परे नहीं हैं। अर्थात यह सृष्टि मनुष्य के लिए है, और मनुष्य अपने भले-बुरे का उत्तरदायी स्वयं है। उसके अर्थ यह भी है कि मनुष्य-मनुष्य समान है और उनके सुखदुख समान है। भारत में आध्यात्मवादी दृष्टिकोण के बावजूद सभी मनुष्यों के प्रति समता का भाव प्राचीनकाल ही से रहा। "वसुधैव कुटुम्बकम" (सारा संसार एक परिवार है) तथा "नहि मानुषात श्रेष्ठतरं हि किंचित" (मनुष्य से बढ़कर श्रेष्ठ और कुछ नहीं है) मानववाद ही का प्रवर्तन करनेवाले सूक्ति-वाक्य हैं। आधुनिक काल में मानववाद को जागृत करने में यातायात के साधनों, प्रकाशन-मुद्रण की सुनिधा, संचार-साधनों तथा सांस्कृतिक चेतना का योगदान रहा, जिसकें कारण संसार सचमुच एक सुगम भौगोलिक-मानवीय इकाई बन गया। हिन्दी साहित्य के द्विवेदी और छायावाद युगीन साहित्य पर मानववाद का प्रभाव है।

4.3.4 राष्ट्रवाद

आधुनिक युग ही में राष्ट्रवाद का भी विशेष प्रसार हुआ। राष्ट्रवाद का अर्थ है राष्ट्रीयतावाद। आधुनिक वैज्ञानिक साधनों से संसार के देशों ने जब एक दूसरे को जाना-समझा तो अपने-अपने देशों के प्रति उनकी आस्था और अधिक दृढ़ हो गई। विशेषकर भारत जैसे स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करते हुए देश के लिए तो राष्ट्रवाद संजीवनी-बूटी जैसा शक्तिदायक था। वैसे तो भारत में राष्ट्रीयता की परिकल्पना संस्कृत साहित्य ही से मिलती है, और हिन्दी राष्ट्रीय कविता का आरम्भ रीतिकाल में भूषण की कविता से हो जाती है, तो भी, भारतेन्दु-द्विवेदी युग में यह साहित्य की मुख्य धारा बन गई। कवियों ने बड़े संकल्प के साथ लिखा --

जिसको न अपने देश का, निज राष्ट्र का अभिमान है।
वह नर नहीं, पशु है निरा, और मृतक समान है।

यहाँ तक कि ईश्वर-भक्ति की जगह देश भक्ति ने ले ली। उदाहरण के लिए ये पक्तियाँ देखिए -

"जगदीश यह विनय है, जब प्राण तन से निकलें।
प्रिय देश रहते-रहते, ये प्राण तन से निकलें।"

भारतवर्ष की 'भारतमाता' के रूप में पूजा, इसके लिए प्राण भी अर्पित करने का संकल्प इस युग की विशेष प्रकृति है। छायावाद-युग में राष्ट्रवाद का सूक्ष्म रूप सामने आया, जिसमें देश के भूगोल-इतिहास का स्थूल प्रस्तुतीकरण करने की जगह उसके सूक्ष्म आध्यात्मिक मूल्यों को स्वर दिया गया। उदाहरण के लिए-

"अरुण यह मधुमय देश हमारा
जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता कूल किनारा।"
(जय शंकर प्रसाद)

यह ध्यान रखा जाना चाहिए कि हिन्दी लेखकों ने राष्ट्रवाद का विस्तृत रूप अपनाया और देश की भूमि, जनता और संस्कृति- तीनों को इसमें स्थान दिया। माखनलाल चतुर्वेदी, रामधारी सिंह दिनकर आदि की मूल चेतना राष्ट्रीय है।

BRAOU

स्वपरीक्षणार्थ प्रश्न :-

(1) 'वाद' से क्या तात्पर्य है? साहित्य में यह कैसे प्रकट होता है?
(2) आदर्शवाद का परिचय दीजिए।
(3) हिन्दी साहित्य पर मानववाद का प्रभाव कहाँ दिखाई देता है?
(4) हिन्दी साहित्य में राष्ट्रवादी प्रकृति का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

4.3.5 व्यक्तिवाद

उपर्युक्त तीनों वादों से विपीरत दिशा में चलने वाली विचारधारा है व्यक्तिवाद। आधुनिक काल में पूंजीवादी व्यवस्था ने मनुष्य को स्वार्थी, लोभी और अपने ही सुख का उच्छुक बना दिया। वैज्ञानिकता के कारण बुद्धि का महत्व बड़ा, और इस बुद्धि ने अहंकार के रूप में इस स्वार्थ-वृत्ति को और पक्का कर दिया। व्यक्तिवाद इसी का परिणाम है। यह ठीक है कि एक विचारधारा के रूप में व्यक्तिवाद समाज के बड़ते हुए दबाव, तथा, मनुष्य पर जाति, कुल, नैतिक मूल्यों और रूढ़ियों के नाम पर होने वाले अत्याचार के विरोध में जन्मा, और इसने व्यक्ति की स्वतंत्रता का उद्घोष किया, और यह भी ठीक है कि इस विचारधारा के कारण साहित्य और कला के क्षेत्र में बहुत श्रेष्ठ रचनायें की गईं, और मनुष्य ने साहस के साथ धर्म और समाज की उन सभी रूढ़ियों को काटा जो उसे स्वतंत्र रूप से सोचने भी नहीं देती थीं, लेकिन, अपनी अति को पहुँचकर व्यक्तिवाद अहंवाद बन जाता है। यह समाज-विरोधी दृष्टिकोण-बनजाता है। हिन्दी साहित्य में व्यक्तिवाद का प्रभाव छायावादी काव्यधारा में दिखाई देता है। आगे चलकर बच्चन, भगवती चरण वर्मा आदि कवियों में यह प्रकृति इतनी अधिक बढ़ गई कि इसके विरोध में प्रगतिवादी कविता का जन्म हुआ। स्वयं छायावादी काव्य व्यक्तिवाद के विकास और उसके विरुद्ध संघर्ष का उदाहरण है। छायावादी काव्य व्यक्तिवादी प्रवृत्तियों को लेकर पैदा हुआ लेकिन, आगे चलकर छायावादी कवि ने व्यक्तिवादी दृष्टि का विरोध किया। उदाहरण के लिए देखिए 'कामायनी' की पंक्तियाँ, जिसमें श्रद्धा मनु से कहती है -

अपने में सबकुछ भरकर, कैसे व्यक्ति विकास करेगा,
यह एकांत स्वार्थ भीषण है, अपना नाश करेगा,
औरों को हँसते देखो मनु, हँसो -और सुख पाओ,
अपने सुख को विस्तृत करलो, सब को सुखी बनाओ।"

लेकिन हिन्दी में व्यक्तिवाद की धारा दबी नहीं। कविता के क्षेत्र में प्रयोगवाद के रूप में यह फिर उभरी। गद्य में जैनेन्द्र, अज्ञेय, इलाचन्द्र जोशी जैसे मनोवैज्ञानिक रचनाकारों पर व्यक्तिवादी दृष्टि का ही प्रभाव है।

BPAOU

4.3.6 स्वच्छन्दतावाद

यह अंग्रेज़ी के 'रोमाण्टिसिजजम' शब्द का हिन्दी अनुवाद है। इस प्रवृत्ति का जन्म व्यक्तिवाद के साथ ही हुआ। व्यक्ति जब समाज के, परम्परा के, नैतिकता के किसी भी बंधन को अस्वीकार कर विशुद्ध मन से, प्रकृति के खुले आंगन में स्वच्छन्द भाव से विहार करना चाहता है तो 'स्वच्छन्दतावाद' का जन्म जीवन और साहित्य में होता है। युरोप में स्वच्छन्दतावादी साहित्य की एक समृद्ध परम्परा रही है। हिन्दी काव्य के क्षेत्र में यह छायावाद के रूप में प्रविष्ट हुआ।

4.3.7 प्रकृतवाद

प्रकृतवाद के अनुसार मनुष्य प्रकृति का उसी प्रकार ठोस, सीमित अंग है जिस प्रकार अन्य पशु-पक्षी आदि हैं। वह अपनी इन्द्रियों से प्रकृति को जैसे अनुभव करता है, बस वही एकमात्र सत्य है। इससे परे आध्यात्मिक, नैतिक जैसी कोई वस्तु आ रूढ़ि या मूल्य सत्य नहीं है। अर्थात् मनुष्य शुद्ध प्रकृति है। समाज के बंधन से उसका जो सरकार होता है, वह नकली है। इस वाद का प्रतिपादन फ्रेंच उपन्यासकार एमिली ज़ोला (1840-1902) ने किया। कला व साहित्य के क्षेत्र में प्राकृतवाद के प्रभाव

से मनुष्य की विभिन्न अनुभूतियों और जीवन के विविध प्रसंगों का खुलकर अश्लील चित्रण किया जाने लगा। जीवन के कुत्सित पक्ष पर ही प्राकृतवादी रचनाकारों का ध्यान जमने लगा। हिन्दी साहित्य में इस विचारधारा का अधिक प्रभाव नहीं पड़ा। पाण्डेय बेचन शर्मा को प्राकृतवादी कथाकार माना जाता है। नागार्जुन के 'रतिनाथ की चर्चा' तथा इलाचन्द्र जोशी व चतुरसेन शास्त्री के कुछ उपन्यासों पर इस वाद का प्रभाव दिखाई देता है।

4.3.8 यथार्थवाद

यथार्थवाद बहुत ही गहन, व्यापक और सशक्त विचारधारा है। यह आदर्शवाद की विपरीत दिसा में गमन करता है। इसके अनुसार मनुष्य के लिए इस जगत में जो कुछ भी है वही एक मात्र सत्य है। इससे परे न कोई ईस्वर है, न परलोक, नहीं भाग्य। पाप और पुण्य का हिसाब इसी जगत में होता है। इसलिए साहित्य एवं कला इसी जगत के जीवन के प्रति उत्तरदायी है। उन्हें जीवन की वास्तविक स्थितियों का चित्रण करना चाहिए। आदर्श तो एक भ्रम है।

आधुनिक हिन्दी में यथार्थवाद का प्रभाव भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और उनके साथी लेखकों में दिखाई पड़ने लगता है, जब वे निडरता से ब्रिटिश राज के शोषण का चित्रण करते हैं। प्रेमचन्द्र का सारा साहित्य आदर्श की ऊँचाई से यथार्थ की धरती पर उतरने का ही प्रमाण है। यथार्थवाद मार्क्सवादी विचारधारा का आश्रय लेकर हिन्दी कविता में छा गया, जिसे प्रगतिवादी काव्य कहा जाता है। उपन्यास-विधा का तो जन्म ही यथार्थवाद के साथ हुआ, और हिन्दी उपन्यासों में प्रेमचन्द्र के समय से इस वाद का आधिपत्य दिखाई देता है। आज साहित्य की प्रमुख प्रवृत्ति है यथार्थवाद। यथार्थवाद का आरम्भिक चरण प्राकृतवाद है तो इसका अतिनग्न रूप अति यथार्थवाद के रूप में प्रकट होता है। हिन्दी की 'अकविता' में अति यथार्थवाद का ही प्रभाव है।

4.3.9 मार्क्सवाद

कार्लमार्क्स और फ्रेडरिक एंगल्स की विचारधारा ने सम्पूर्ण विश्व में क्रान्तिकारी परिवर्तन उपस्थित किया। मार्क्सवादी या साम्यवादी विचारधारा भौतिकवादी दृष्टि को लेकर चलती है। यह संसार में मनुष्य-समाज को दो वर्गों में बाँटकर देखती है- शोषक और शोषित। सभ्यता की विभिन्न स्थितियों में मनुन्य-समाज का एक भाग दूसरे भाग का शोषणकरता रहा- कभी राजा और प्रजा के रूप में, कभी स्वामी और दास के रूप में, कभी पूंजीपति और मज़दूर के रूप में। इससे मुक्ति पाने के लिए श्रमिक वर्ग को संगठित होकर शोषक वर्ग को समाप्त कर देना चाहिए। एक वर्गहीन-शोषणहीन समाज की स्थापना इस विचारधारा का लक्ष्य है। साहित्य और कला को, मार्क्सवादी विचारधारा के अनुसार, शोषितों का साथ देना चाहिए, उनके दुखसुख, उनके संघर्ष का चित्रण करना चाहिए। हिन्दी में मार्क्सवाद का प्रवेश सन् 1917 की रूसीक्रान्ति की सफलता के बाद हुआ। छायावाद के बाद की कविता में यह प्रभाव 'प्रगतिवादी काव्यधारा' के रूप में दिखाई दिया। प्रेमचन्द्र इससे प्रभावित थे। उनके बाद गद्य-साहित्य में यशपाल, रांगेयराघव, राहुल सांकृत्यायन मुक्तिबोध, रेणु आदि की रचनाओं पर मार्क्सवाद की स्पष्ट छाप है। आज हिन्दी रचना ही नहीं, आलोचना के क्षेत्र में भी मार्क्सवाद ही मुख्य प्रवृत्ति के रूप में छाया हुआ है।

इनके अतिरिक्त अस्तित्ववाद, फ्रायडवाद आदि विचारधाराओं का प्रभाव हिन्दी साहित्य पर पड़ा। अस्तित्व वाद एक व्यक्तिवादी विचारधारा है जो समाज के विरोध में व्यक्ति को रखकर देखती है। हिन्दी में अज्ञेय पर इसका प्रभाव है। प्रयोगवादी और नई कविता पर इसका प्रभाव है। मनोवैज्ञानिक सिंगमंड फ्रायड के मनोविश्लेषण के सिद्धान्तों को लेकर जो हिन्दी उपन्यास व कहानियों की रचना हुई उनमें जैनेन्द्र और इलाचन्द्र जोशी प्रमुख हैं। इनके अलावा कलावाद, बिम्बवाद, प्रतीकवाद, अभिव्यंजनवाद आदि का भी प्रभाव हिन्दी साहित्य के शिल्प-पक्ष पर पड़ा।

BRAOU

स्वपरीक्षणार्थ प्रश्न :-

(1) व्यक्तिवाद का परिचय दीजिए।

(2) स्वच्छन्दतावाद और व्यक्तिवाद का क्या सम्बन्ध है?

(3) हिन्दी में प्राकृतवादी रचनाकार कौन हैं?

(4) यथार्थवाद पर प्रकाश डालिए।

(5) मार्क्सवाद की मूल मान्यताएँ संक्षेप में बतलाइए।

4.3.10 मूल्यांकन

उपर्युक्त वादों को यदि दृष्टिकोण और जीवन-दर्शन के आधार पर देखा जाए तो ये सारे वाद दो वर्गों में आजाते हैं- एक व्यक्ति-केन्द्रित और दूसरा समष्टि केन्द्रित। व्यक्ति केन्द्रत जीवन-दर्शन व्यक्ति की स्वतंत्रता को प्रमुख स्थान देते हुए समाज को द्वितीय स्थान पर रखता है। कभी-कभी तो यह जीवन-दर्शन व्यक्ति और समाज को परस्पर शत्रु के रूप में देखने लगता है। उपर्युक्त विचारधाराओं में व्यक्तिवाद, स्वच्छन्दतावाद, प्राकृतवाद, अस्तित्ववाद और फ्रायडवाद या मनोविस्लेषणवाद इसी वर्ग में आते हैं। दूसरे प्रकार का जीवन-दर्शन समाज को प्रमुख मानकर मनुष्य के संगठित सामूहिक जीवन को प्राथमिकता देता है और आवश्यकता पड़ने पर व्यक्ति का समाज के लिए त्याग व परमार्थ आदि नैतिक मूल्यों का समर्थन करता है। इस वर्ग में आने वाली विचारधाराएँ हैं- आदर्शवाद, मानववाद, राष्ट्रवाद और मार्क्सवाद। यथार्थवाद यदि मनुष्य व समाज के सही सम्बन्धों को सही कोण से देखे तो यह भी समाज-केन्द्रित जीवन-दर्शन ही में आता है। मार्क्सवाद से जुड़कर यथार्थवाद"सामाजिक यथार्थवाद" बन जाता है। साहित्य में वस्तु नहीं बल्कि शिल्प और कलात्मकता को लेकर चलने वाले प्रतीकवाद, बिम्बवाद, अभिव्यंजनावाद, कलावाद आदि भी व्यक्ति-केन्द्रित जीवनदर्शन ही की परिधि में आते हैं। हिन्दी साहित्य पर इन सभी का मिलाजुला और अलग-अलग प्रभाव है।

4.4 पाठ का सारांश

BRAOU

हिन्दी साहित्य का आधुनिक काल पाश्चात्य विचारों के प्रति ग्रहणशील रहा जिसके कारण इस काल के साहित्य पर पश्चिमी विचारधाराओं का प्रभाव पड़ा। लेकिन हिन्दी साहित्यकार ने भारतीय परम्पराओं और भारतीय समाज की आवश्यकताओं के अनुरूप ही इन प्रभावों का ग्रहण किया। विभिन्न विचारधाराओं का यह समन्वित रूप विभिन्न वादों के रूप में हिन्दी साहित्य में दिखाई देता है जैसे आदर्शवाद, राष्ट्रवाद, मानववाद, व्यक्तिवाद, स्वच्छंदतावाद, प्राकृतवाद, यथार्थवाद और मार्क्सवाद। आदर्शवाद राष्ट्रवाद और, मानववाद का प्रभाव भरतेन्दु और द्विवेदीयुग में सर्वाधिक रहा। छायावाद ने स्वच्छंदतावाद के रूप में व्यक्तिवाद से प्रेरणा ली, लेकिन पूर्ववर्ती तीनों वादों का भी प्रभाव ग्रहण किया। हिन्दी साहित्य में यथार्थवाद की तीन स्थितियाँ मिलती हैं- प्राकृतवाद, यथार्थवाद और अतियथार्थवाद हिन्दी साहित्य पर एक सशक्त प्रभाव मार्क्सवाद का पड़ा जिसके फलस्वरूप प्रगतिवादी काव्यधारा की रचना हुई मार्क्सवादी विचारधारा के अन्तर्गत सामाजिक यथार्थवाद की प्रतिष्ठा विशेषकर हिन्दी कथा साहित्य में भी हुई। इनके अतिरिक्त फ्रायडवादी मनोविश्लेषण के प्रभावस्वरूप हिन्दी में मनोवैज्ञानिक कथा साहित्य लिखा गया। अस्तित्ववादी दर्शन का प्रभाव प्रयोगवादी काव्यधारा पर विशेष रूप से दिखाई देता है इनके अतिरिक्त कलावाद, बिम्बवाद, प्रतीकवाद आदि का भी प्रभाव हिन्दी साहित्य में दिखाई देता है। जीवन दर्शन के आधार पर ये सारे वाद दो प्रमुख वर्गों में रखे जा सकते हैं- व्यक्ति केन्द्रित और समाज केन्द्रित। व्यक्तितवाद स्वच्छंदतावाद प्राकृतवाद जैसी विचारधाराएँ व्यक्ति को प्रमुख मानकर चलती हैं तो आदर्शवाद राष्ट्रवाद और मार्क्सवाद समाज को प्रमुख मानकर चलनेवाली विचारधाराएँ हैं।

4.5 पारिभाषिक शब्द-अर्थ

आध्यात्मवादी	=	इस जगत से भिन्न अतिलौकिक और ब्रह्म-विषयक तत्वों में रुचि रखने वाला
कुत्सित	=	विकृत, नगर्न, घृणा जगानेवाला
कलावाद	=	ऐसी विचारधारा जिसमें साहित्य के शिल्प पर बल दिया गया। इसी के अन्तर्गत कला को कला के लिए ही मानागया, जीवन के लिए नहीं
बिम्बवाद	=	वह विचारधारा जिसमें काव्य की सफलता अच्छे से अच्छा बिम्ब प्रस्तुत करने में मानी गई।

4.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

4.6.1 'अ' श्रेणी के प्रश्न

निम्न लिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 250 शब्दों में लिखिए:

(1) हिन्दी साहित्य के भारतेन्दु और द्विवेदी युग में राष्ट्रवादी काव्यधारा का परिचय दीजिए।

(2) यथार्थवाद किसे कहते हैं? प्राकृतवाद और अतियथार्थवाद के संदर्भ में यथार्थवाद का स्वरूप स्पष्ट कीजिए।

(3) हिन्दी साहित्य में मार्क्सवादी विचारधारा के प्रभाव का विवेचन कीजिए।

4.6.2 ब श्रेणी के प्रश्न

निम्न लिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 125 शब्दों में लिखिए।

(1) छायावाद और व्यक्तिवाद का अन्तः सम्बन्ध स्पष्ट कीजिए।

(2) मानववाद से क्या तात्पर्य है? हिन्दी काव्य में आदर्शवाद के साथ इसका कैसे समन्वय हुआ?

4.7 नमूने के प्रश्नोत्तर

4.7.1 अ श्रेणी के प्रश्नोत्तर

BRAOU

निम्न लिखित प्रश्न का उत्तर लगभग 250 शब्दों में दीजिए-

प्रश्नः हिन्दी साहित्य के भारतेन्दु और द्विवेदी युग में राष्ट्रवादी काव्यधारा का परिचय दीजिए।

उत्तरः राष्ट्रवाद एक आधुनिक विचारधारा है। आधुनिक औद्योगिक सभ्यता के साथ संसार के देशों के बीच भौगोलिक दूरियाँ घटीं और सांस्कृतिक सम्बन्ध बढ़े। साथ ही अपने-अपने राष्ट्र के प्रति भक्ति और अपनी राष्ट्रीय पहचान बनाने की चेतना भी विकसित हुई। भारत में अंग्रेज़ों की अधीनता के खिलाफ संघर्ष करने के क्रम में राष्ट्रवादी विचारधारा का विकास हुआ। साहित्य में यह राष्ट्रीय चेतना के रूप में प्रकट हुआ। वैसे पुर्वकालीन हिन्दी काव्य में भी राष्ट्रीयता की अभिव्यक्ति हुई पर एक अखण्ड, व्यापक और बहुमुखी चेतना के रूप में आधुनिक साहित्य ही में राष्ट्रवाद की अभिव्यक्ति हुई। भारतेन्दु युगीन काव्य में राष्ट्रीयता-भावना का आरम्भिक चरण है, जिसमें एक ओर ब्रिटिश राज के सुशमान, औद्योगिक और तकनीकी सुविधाओं और व्यवस्था की प्रशंसा है, तो, दूसरी ओर देश के आर्थिक शोषण, दमन और भ्रष्टाचार के लिए उसे उत्तरदायी ठहराया गया है। इन कवियों ने हास्य-व्यंग्यपूर्ण कविता और प्रहसनों के द्वारा ब्रिटिश राज की छल प्रपंचपूर्ण नीति पर प्रहार किया। द्विवेदी युग में प्रमुख धारा राट्रीयता की है। इसमें राष्ट्रीयता को देश की भूमि, जनता और संस्कृति से जोड़ा गया, इसलिए मातृ भूमि की प्रशंसा, जनता के दुख-देन्य पूर्ण जीवन पर करुणा और भारतीय संस्कृति की पुनर्व्याख्या करते हुए साहित्य-रचना की गई। इस युग में राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम जोर पकड़ रहा था, इसलिए

साहित्य में विद्रोह और क्रांति के स्वर प्रबल हैं। ईश्वर-भक्ति की जगह इन कवियों ने देश-भक्ति को दी। गाँधीवादी प्रभाव के कारण अहिंसात्मक सत्याग्रह का भी उल्लेख है। सामाजिक कुरीतियों पर खुलकर प्रहार है। इन कवियों की दृष्टि में यह बात बिल्कुल साफ थी कि जब तक सामाजिक कुरीतियों, आर्थिक दीनता से मुक्ति नहीं मिलती तब तक राजनैतिक स्वतंत्रता व्यर्थ होती है। इसलिए इनकी राष्ट्रीय भावना समग्र सांस्कृतिक भावना है।

4.7.2 'ब' श्रेणी के प्रश्नोत्तर

निम्न लिखित प्रश्न का उत्तर लगभग 125 शब्दों में दीजिएः

प्रश्नः छायावाद और व्यक्तिवाद का अन्तः सम्बन्ध स्पष्ट कीजिए।
उत्तरः छायावाद का जन्म व्यक्तिवाद के प्रभाव से हुआ। व्यक्तिवाद व्यक्ति की स्वतंत्रता को ही महत्त्व देता है, और इसमें बाधा डालने वाले तत्व के रूप में समाज को शत्रु के रूप में देखता है। इस विचारधारा के प्रवर्तक के रूप में युरोप में रुसो ने घोषणा की थी कि मनुष्य पैदासी स्वतंत्र होता है पर हर जगह बंधनों से जकड़ा नज़र आता है। ये बंधन सामाजिक हैं। युरोप में व्यक्तिवाद के प्रभाव से स्वच्छन्दतावाद उत्पन्न हुआ। छायावादी काव्य में प्रकृति-मोह, पलायन-भाव, निराशा, वैयक्तिक प्रेम आदि व्यक्तिवादी प्रवृत्तियाँ हैं। लेकिन भारतीय परम्परा से भी जुड़ने के कारण छायावाद में समष्टिवादी आदर्श भी हैं। इसलिए आगे चलकर छायावाद ने स्वार्थ-केन्द्रित अहंवादी और समाज-विरोधी व्यक्तिवाद का तिरस्कार किया, और परमार्थ, त्याग, लोकमंगल आदि आदर्शों की प्रतिष्ठा की।

4.8 पठनीय पुस्तकें

1. आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास : डॉ. बच्चन सिंह
2. हिन्दी काव्य की प्रकृत्तियाँ : डॉ. नामवर सिंह
3. हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास : डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी

BRAOU

इकाई-5: हिन्दी काव्यधाराएँ: प्रकृतिमूलक ऐतिहासिक विश्लेषण

5.0 विषय प्रवेश
5.1 पाठ का उद्देश्य
5.2 पाठ-परिचय
5.3 मूलपाठ
 5.3.1 भारतेन्दु युग
 5.3.2 द्विवेदी युग
 5.3.3 छायावाद युग
 5.3.4 प्रगतिवाद
 5.3.5 प्रयोगवाद
 5.3.6 साठोत्तर जनवादी कविता
 5.3.7 मूल्यांकन
5.4 पाठ का सारांश
5.5 पारिभाषिक शब्द-अर्थ
5.6 अभ्यासार्थ प्रश्न
 5.6.1 'अ' श्रेणी के प्रश्न
 5.6.2 'ब' श्रेणी के प्रश्न
5.7 अभ्यासार्थ प्रश्नोत्तर
 5.7.1 'अ' श्रेणी के प्रश्नोत्तर
 5.7.2 'ब' श्रेणी के प्रश्नोत्तर
5.8 पठनीय पुस्तकें

BRAOU

5.0 विषय प्रवेश

हिन्दी साहित्य का आधुनिक काल एक विचित्र, विचारणीय और समृद्ध दृश्यावली है। एक ओर काव्य की अविरल बहती धारा जो आधुनिक युग में आकर अनेक धाराओं में विभक्त हो गई, और दूसरी ओर गद्य-लेखन का उद्दाम, और नया-नया उत्साह। इस पाठ में हिन्दी काव्य धाराओं का प्रवृत्तिमूलक विश्लेषण इस 'दृश्यपटल' को समझने में सहायता देगा।

5.1 पाठ का उद्देश्य

इस पाठ में आधुनिक हिन्दी काव्य की विभिन्न धाराओं के आरंभ और विकास, उनकी अलग-अलग पहचान, समन्वित प्रभाव और युगीन संदर्भ का परिचय दिया जाएगा।

5.2 पाठ परिचय

हिन्दी का आधुनिक काल बहुत विस्तृत है। इस लगभग डेढ़ सौ वर्षों के विस्तार में कविता की इतनी नई प्रवृत्तियाँ सामने आईं, काव्य-वस्तु और शिल्प में इतने परिवर्तन हुए कि यह अकेला युग हिन्दी साहित्य के पिछले तीन कविता-केन्द्रित लगभग सात सौ वर्षों में फैले-युगों की समता कर सकता

है। सवाल है कि इतनी नई प्रवृत्तियाँ क्यों, इतनी जल्दी-जल्दी परिवर्तन क्यों? जवाब है कि आधुनिक युग के आरंभ (सन् 1850) से लेकर आजतक देश के राजनीतिक-सामाजिक इतिहास में इतनी तेजी से परिवर्तन घटित हुए हैं कि साहित्य में उनका प्रभाव अपरिहार्य है। प्रस्तुत पाठ में हिन्दी काव्य की प्रमुख धाराओं के प्रवृत्यात्मक विकास की चर्चा की गई है। चूंकि इस समय के राजनीतिक-सामाजिक परिस्थितियों की चर्चा अन्य पाठों में कई जगह हो चुकी है, इसलिए अलग से इसे नहीं बताया जा रहा है। काव्यधाराओं की चर्चा में प्रसंगवश परिस्थितियों का संकेत किया जा रहा है।

5.3 मूल पाठ

आधुनिक हिन्दी साहित्य का आरम्भ सन् 1850 (भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का जन्मवर्ष) या सन् 1857 माना जाता है। तब से लेकर अब तक के काव्य को आलोचकों ने निम्न लिखित उपशीर्षकों में बाँटा है- भारतेन्दु-युग, द्विवेदी युग, छायावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, और साठोत्तर जनवादी काव्य। इस विभाजन में इस बात का ध्यान रखा जाना चाहिए कि यह केवल अध्ययन की सुविधा के लिए है, इसमें किसी प्रवृत्ति के एकाएक समाप्त हो जाने या एकाएक शुरू हो जाने की बात नहीं है। साहित्य के अध्ययन में ऐसा विभाजन केवल मुख्य प्रवृत्ति को दृष्टि में रखकर किया जाता है।

5.3.1 भारतेन्दु युग

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के नाम पर इस युग को भारतेन्दु युग कहा जाता है। भारतेन्दु इस युग के अग्रणी कवि और कवियों की एक पूरी टीम उन्होंने तैयार की थी, क्योंकि उन दिनों कविता लिखने का मतलब होता था देश और समाज की मुक्ति के लिए काम करना। भारतेन्दु युगीन काव्य में संधि युग की सारी प्रवृत्तियाँ हैं। अर्थात एक ओर तो समाप्त होते रीतिकाल की श्रृंगारिक और-भक्ति की प्रवृत्ति और दूसरी ओर नए युग की देशभक्ति, सामाजिक यथार्थ और विद्रोह की भावना। भारतेन्दु युग सन् 1850 से लेकर सन 1900 तक माना जाता है। इस युग में भारतेन्दु और उनके मंडल के कवियों ने जो कविता लिखी, उसमें रीतिकालीन श्रृंगार मिलता है, भक्ति की पुरानी ही परम्परा है, यहाँ तक कि रीति-निरूपण की भी पुरानी प्रवृत्ति है। लेकिन जो नई प्रवृत्तियाँ इस युग को इतना महत्वपूर्ण बनाती हैं, वे है राष्ट्रीयता, सामाजिक चेतना और हास्य-व्यंग्य। इन तीन प्रवृत्तियों के कारम यह युग हिन्दी में आधुनिकता के प्रवेश का जीवन्त प्रभाव बन जाता है। इस युग की राष्ट्रीयता अपनी मातृ भूमि के प्रति जगी नई भक्ति से उपजी है। यह याद रखना चाहिए कि भारत के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम (सन् 1857) की अविस्मरणीय घटना और उसमें किया गया अमानवीय दमन इसी युग के कवियों के अनुभव में आया, अतः निश्चय ही इस नई जगी राष्ट्रीयता में पीड़ा, विद्रोह, भय और करुणा के मिलेजुले स्वर होंगे। इस युग की राष्ट्रीय भावना में एक ओर देश का गुणगान किया गया है तो दूसरी ओर अंग्रेज राज की प्रशंसा भी की गई है। एक ओर जनता की दीन दशा का वर्णन है तो दूसरी ओर महारानी विक्टोरिया की स्तुति है। इसका कारण है कि अंग्रेज प्रशासन का वह आरम्भिक समय था। एक ओर देश में केन्द्रीय प्रशासन, व्यवस्था, रेल, डाक, बिजली आदि नए नए साधन आरहे थे तो दूसरी ओर जनता का शोषण हो रहा था। इस द्वन्द्व में कवि लिखता था -

अंगरेज राज सुख साज सजे सब भारी।
पै धन बिदेस चलि जात, यहै अति ख्वारी।

सामाजिक चेतना इसी द्वन्द्व से अपजी। तत्कालीन भारतीय की दुर्दशा, उसमें फैली बाल-विवाह, अनमेल विवाह, विधवाओं की दुर्गति, जातिप्रथा और छुआछूत का कवियों ने जमकर विरोध किया। तीसरी प्रवृति रही हास्य-व्यंग्य की। व्यंग्य को इतने सशक्त रूप में इसी युग के कवियों ने प्रयोग कर दिखाया। अंगरेज जाति पर व्यंग्य, टैक्स, भूखमरी, महामारी और अकाल जैसी स्थितियों में भी कर वसूल करने की अंग्रेज लोभवृत्ति पर व्यंग्य, पुलिस, अंग्रेज़ी भाषा- इन कवियों ने कुछ नहीं छोड़ा। व्यंग्य किसी स्थिति में छिपी असंगति को उभारकर उसके सुधरने की चेतावनी देता है। भारतेन्दु युगीन कवियों ने व्यंग्य की इसी ताकत का उपयोग किया। शिल्प के स्तर पर इस युग के काव्य में समस्यापुर्ति बहुत लोकप्रिय थी। मुक्तक काव्य अधिक लिखा गया। पहेलियाँ, मुकरियाँ जैसे छंदों का प्रयोग किया गया।

स्वपरीक्षणार्थ प्रश्न :-

(1) 'भरतेन्दु युग' से क्या आशय है?

(2) इस युग के काव्य में राष्ट्रीयता का स्वरूप कैसा था?

(3) इस युग में हास्य-व्यंग्य-काव्य का परिचय दीजिए।

BRAOU

5.3.2 द्विवेदी युग

'द्विवेदी युग' इस युग के अग्रणी आचार्य कवि-आलोचक महावीर प्रसाद द्विवेदी के नाम से याद किया जाता है। समय है सन् 1900 से लेकर 1920 तक। द्विवेदी युग जागरण युग, और सुधार युग भी कहलाता है। इस युग में एक नई चेतना का प्रसार हुआ। यह चेतना थी राष्ट्रीय जागरण की। कविता लिखना देश, जाति और मनुष्य मात्र की मुक्ति का परम कार्य बन गया। साहित्य का उद्देश्य बना समाज सुधारऔर देश-भक्ति। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने भी कवियों की पूरी टीम को साथ लेकर 'सरस्वती' पत्रिका के द्वारा आदर्शवादी काव्यधारा का प्रवर्तन किया। उन्होंने पिछली रीतिवादी प्रवृत्तियों का पूरी तरह बहिष्कार किया, व्यक्तिगत प्रेम की जगह देशप्रेम को, व्यक्ति स्वार्थ की जगह समाज-कल्याण को प्रमुखता दी। इस युग की प्रमुख चेतना थी राष्ट्रीयता की। राष्ट्रीय काव्य के अन्तर्गत देश की भौगोलिक सम्पदा, जनता, और संस्कृति तीनों पक्षों पर ध्यान दिया गया। नाथूराम शर्मा शंकर ने 'अपने प्रचंड स्वर में सामाजिक कुरीतियों का विरोध किया, मैथिलीशरण गुप्त, अयोध्या सिंह, उपाध्याय हरिऔध नें भारतीय संस्कृति के आदर्शों को नए युग के संदर्भ में प्रस्तुत किया, रामनरेश त्रिपाठी, श्रीधर पाठक आदि ने प्रकृति के सुन्दर चित्र दिए। भाषा के क्षेत्र में खड़ी बोली में कविता की जाने लगी और ब्रज भाषा को मध्ययुग की भाषा समझ कर खड़ी बोली ही में नई चेतना को प्रकट किया जाने लगा। मुक्तक के साथ प्रबंध काव्य भी लिखा गया। खड़ी बोली हिन्दी का प्रथम महाकाव्य 'प्रियप्रवास' का रचना-काल यही है।

5.3.3 छायावाद

द्विवेदी युगीन मर्यादावाद और आदर्शवाद की प्रतिक्रिया में व्यक्तिवादी विचारधारा के फलस्वरूप हिन्दी काव्य में छायावाद आया। छायावाद पश्चिम की स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति से प्रभावित हुआ, लेकिन इसमें भारतीय आदर्श भी कम नहीं है। छायावाद व्यक्तिगत प्रेमभाव की अभिव्यक्ति से आरंभ हुआ। सन् 1915-16 से इसका आरंभ माना जाता है। प्रकृति के प्रति नवीन दृष्टि, प्रेम की मार्मिक अभिव्यक्ति, नारी के प्रति नया दृष्टि कोण, वेदना, सौन्दर्य चित्रण, राष्ट्रीय चेतना और रहस्यवाद, शिल्प के स्तर पर मानवी करण इसकी प्रमुख प्रवृत्तियाँ है। इसके प्रवर्तक कवि जयशंकर प्रसाद माने जाते है और अन्य महत्वपूर्ण कवि हैं शूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', सुमित्रानंदन पंत, महादेवी वर्मा, रामकुमार वर्मा आदि। जयशंकर प्रसाद के खण्ड काव्य 'आँसू' में वैयक्तिक प्रेम और विरह की अनुभूतियों का मार्मिक अंकन है। आगे चलकर प्रसाद ने छायावाद के एकमात्र महाकाव्य 'कामायनी' में वेयक्तिकता की जगह सामाजिक आदर्श की प्रतिष्ठा थी। इस प्रकार छाया वाद का विकास व्यक्ति से समाज की ओर है। छायावाद की दूसरी शक्तिशाली प्रवृत्ति है वस्तु को अपनी ही दृष्टि और अपने ही भाव में रंगकर देखने की। इसी लिए उसने मानवीकरण का शिल्प लिया। रात्रि उसे सुन्दरी के रूप में दिखाई देती है ओस की बूँदें किसी के आंसू लगते है तो तारे उस फूलों के गजरे लगते हैं जिन्हें रात्रि रूपी सुन्दरी बेचने के लिए जा रही है। छायावादी कवि की कल्पना शक्ति अदभुत है। भारतीय दर्शन के अद्वैतवादी सिद्धांत से प्रेरित होकर उसने प्रकृति में सर्वत्र परमात्मा की छाया देखी और उससे रागात्मक सम्बन्ध जोड़ा। महादेवी वर्मा का प्रियतम यही परमात्मा है और काव्य की यह प्रकृति रहस्यवाद कहलाती है। नारी के सूक्ष्म, आंतरिक सौन्दर्य का चित्रण छायावाद की एक और विशेषता है। रीतिकालीन कवियों के विपरीत छायावादी कवि ने पवित्र प्रेम और नारी के भाव-सौन्दर्य को महत्व दिया। छायावादी काव्य में राष्ट्रप्रेम भी बहुत सूक्ष्म और उच्च कोटि का मिलता है। छायावादी काव्य में आदर्श का तत्व भी है। शिल्प के स्तर पर छायावादी कवि ने खड़ी बोली हिन्दी को अपूर्व ढंग से सजाया। चित्रात्मक, बिम्बत्मक भाषा, लक्षणा का अद्भुत प्रयोग, नई-नई कल्पनाओं और प्रयोगों से उसने खड़ी बोली-हिन्दी को अदभुत सौन्दर्य, संगीत और अर्थ दिया। हिन्दी काव्य में छायावाद का स्थान अद्वितीय है।

BRAOU

स्वपरीक्षणार्थ प्रश्न :-

(1) द्विवेदी युग की राष्ट्रीय कविता पर प्रकाश डालिए।
(2) खड़ी बोली हिन्दी के लिए द्विवेदी युगीन काव्य क्यों महत्वपूर्ण है?
(3) महावीर प्रसाद द्विवेदी का उद्देश्य क्या था?
(4) छायावादी काव्य की विशेषताएँ गिनाइए।

5.3.4 प्रगतिवाद

छायावादी काव्य के बाद हिन्दी काव्य में जो युगान्तरकारी परिवर्तन हुआ उसे प्रगतिवादी काव्य के रूप में जाना जाता है। प्रगतिवाद के पीछे मार्क्सवादी विचारधारा है। यह विचारधारा समाज को सम्पन्न और विपन्न, तथा शोषक और शोषित- इन दो वर्गों में बाँटकर देखती है, और शोषितों का पक्ष लेती है। हिन्दीकाव्य में इस विचारधारा के प्रभाव से जो काव्य लिखा गया उसमें श्रमिकों-शोषितों को केन्द्र में रखा गया। उनके शोषण का विरोध करते हुए कवियों ने अपने क्रोध और घृणा व्यक्त की। उदाहरण के लिए रामधारी सिंह दिनकर की ये पंक्तियाँ देखिए -

> श्वानों को मिलता दूध-वस्त्र, भूखे बालक अकुलाते हैं।
> माँ की हड्डी से चिपक ठिठुर, जाड़ों की रात बिताते हैं।
> युवती के लज्जा-वसन बेच, जब ब्याज चुकाये जाते हैं।
> मालिक तब तेल-फुलेलोंपर, पानी-सा द्रव्य बहाते हैं।

इन कवियों ने किसानों-मज़दूरों को शोषण का विरोध करने के लिए ललकारा, क्रान्ति का आह्वान किया, और एक शोषण-मुक्त समाज की स्थापना की कल्पना की। सामाजिक यथार्थ की दृष्टि से प्रगतिवादी काव्य बहुत महत्वपूर्ण है। लेकिन कुछ सीमा तक नारे बाज़ी भी इस काव्यधारा में हुई। यद्यपि निराला सन् 1927 के आसपास ही से 'वह तोड़ती पत्थर' और 'भिक्षुक' जैसी कविताओं के द्वारा प्रगतिवाद का सूत्रपात कर चुके थे, पर यह काव्यधारा 1936 के बाद बलवती हुई। इसके प्रमुख कवि हुए रामविलास शर्मा, केदारनाथ अग्रवाल, नागार्जुन आदि।

5.3.5 प्रयोगवाद

प्रयोगवादी काव्यधारा सन् 1943 के आसपास आरंभ हुई, और विचारधारा की दृष्टि से यह व्यक्तिवाद का ही नया उत्थान कही जा सकती है। कवि अज्ञेय ने सन् 1943 में 'तार सप्तक' में सात कवियों की रचनायें छाप कर उसकी भूमिका में विस्तार से यह बताया कि हिन्दी में पूर्ववर्ती छायावादी और प्रगतिवादी काव्य-प्रवृत्तियाँ बासी व अर्थहीन हो चुकी हैं। कविता तो नित नये प्रयोगों का नाम है, इसलिए 'प्रयोगवाद' के रूप में वे और उनके साथी कवि सर्वथा नवीन विषय वस्तु नवीन शिल्प प्रस्तुत कर रहे हैं। प्रयोगवादी काव्यधारा की मुख्य प्रवृत्तियाँ रहीं- घोर अहं केन्द्रित व्यक्तिवाद, अति यथार्थवाद अति बौद्धिकता, क्षणवाद और निराशावादी इन कवियों ने नये उपमान चुने, नये मुक्तछन्द का प्रयोग किया। प्रयोगवाद वास्तव में आज के बुद्धिवादी वैज्ञानिक युग, टूटते-बिखरते सामाजिक सम्बन्धों, उनसे अपनी निराशा का सही प्रतिबिम्ब है। प्रयोगवाद का ही प्रसार आगे चलकर नई कविता में हुआ। इस धारा के प्रमुख कवि हैं- अज्ञेय, गिरिजा कुमार माथुर, धर्मवीरभारती, भारत भूषण अर्गवाल, नरेश कुमार मेहता, शकुन्तला माथुर आदि। सन् 1960 से पूर्व तक यह काव्य प्रवृत्ति हिन्दी में बलवती रही।

BRAOU

5.3.6 साठोत्तरी जनवादी कविता

सन् 1960 के बाद कवियों की ऐसी पीढ़ी सामने आई, जिसने स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद सत्ताधीशों के दिखाये स्वप्नों और दिए गए आश्वासनों पर विश्वास कर लिया था, लेकिन स्वतंत्रता के दो दशकों के बाद भी देश की अर्थ व्यवस्था में भयंकर गिरावट, भ्रष्टाचार, सामान्य जनता के अधिक से अधिक शोषण को देखकर जिसकी आँख खुल गई और उसमें से शंकर के तीसरे नेत्र की सी ज्वालायें फूटने लगीं। ऐसी पीढ़ी के प्रतिनिधि कवि हैं- धूमिल, जिन्होंने अपने काव्यसंग्रह 'संसद से सड़क तक' में आम जनता के इसी आक्रोश को स्वर दिया। इस काल में प्रगतिवादी काव्यधारा, जो अब तक उपेक्षित-सी पड़ी थी, उभर कर सामने आई और केदारनाथ अग्रवाल, नागार्जुन, त्रिलोचन, मुक्तिबोध आदि पिछली पीढ़ी के कवि महत्वपूर्ण हो उठे। वास्तव में साठोत्तरी कविता का क्षेत्र बहुत व्यापक है। उसमें पुरानी पीढ़ी के कवि हैं तो एकदम नई पीढ़ी के उदय प्रकाश, राजेश जोशी, अरुणकमल जैसे कवि भी लिख रहे हैं। इसमें अनेक प्रकार के प्रयोग हो रहे हैं, अनेक प्रकार के छन्द, प्रतीक, बिम्ब

आदि हैं। लेकिन प्रवृत्ति की दृष्टि से इसमें एक ही प्रवृत्ति सब पर भारी पड़ रही है और वह है जनवादी प्रवृत्ति। सामान्य जनता के शोषण का चित्रण इस कविता का प्रमुख स्वर है। आज की राजनीतिक स्थितियाँ इतने सीधे ढंग से इस कविता में उत्तर आई हैं कि इसे 'राजनीतिक कविता' कहना पड़ता है। कुल मिलाकर आज की कविता में संघर्ष, विद्रोह, व्यंग्य, प्रेम, करुणा और आक्रोश के मिले-जुले स्वर हैं।

स्वपरीक्षणार्थ प्रश्न :-

(1) प्रगतिवादी काव्य पर किस वितारधारा का प्रभाव है?

(2) प्रयोगवादी काव्य की क्या विशेषताएँ हैं?

(3) साठोत्तरी काव्य की जनवादी प्रकृति के बारे में बतलाइए।

5.3.7 मूल्यांकन

आधुनिक हिन्दी काव्य धाराओं के इस संक्षिप्त अनुशीलन स स्पष्ट होता है कि (1) भारतेन्दु-युग ही से नयी चेतना अपने को प्रकट करने लगी थी। यह नई चेतना आधुनिक चेतना थी, अर्थात्- अपने आसपास के जीवन को खुली आँखों से देखने और निर्भीक भाव से उसको प्रकट करने की चेतना। (2) आधुनिक काव्य की ये विभिन्न प्रवृतियाँ एक के बाद एक ही नहीं, बल्कि एक साथ समानांतर भी चलीं। जैसे भारतेन्दु युग की राष्ट्रीय काव्य-प्रवृत्ति द्विवेदी युग में आकर उस युग की मुख्य धारा बन गई। छायावादी कवि निराला ने ही प्रगतिवादी काव्य का सूत्रपात किया, और साठोत्तरी जनवादी कविता प्रगतिवादी चेतना का ही उभार है। (3) इस युग के काव्य पर विभिन्न पश्चिमी विचार धाराओं का भी प्रभाव पड़ा। इसे विस्तार से जानने के लिए इसी पाठ्यक्रम के अन्तर्गत "साहित्य को प्रभावित करने वाले विभिन्न वाद" पाठ पढ़िए।

5.4 पाठ का सारांश

BRAOU

आधुनिक हिन्दी काव्य का आरंभ सन 1850 से माना गया है। आज तक के इस काव्य-विकास में कई प्रवृत्तियाँ और धाराएँ दिखाई देती हैं।

(1) भरतेन्दु युगीन काव्य में रीति-निरूपण, श्रृंगार और भक्ति की पुरानी प्रवृत्तिय़ों के साथ राष्ट्रीयता, सामाजिक चेतना और हास्य-व्यंग्य जैसे नई प्रवृत्तियों का समन्वय है।

(2) द्विवेदी युगीन काव्य में इन नई प्रवृत्तियों का ही पूर्ण प्रसार होता है। यह काव्य मुख्यतः राष्ट्रीय जागरण से जुड़ा हुआ है।

(3) छायावाद व्यक्तिवादी विचारधारा से जनमा। इसने प्रकृति व नारी के प्रति नया सौन्दर्यबोध जगाया, व्यक्तिगत आशानिराशा की खुलकर अभिव्यक्ति की, राष्ट्रीय चेतना के सूक्ष्म रूप को स्वर दिया, और अति वैयक्तिकता के विरुद्ध संघर्ष करते हुए अन्त में सामाजिक आदर्श की ही प्रतिष्ठा की। छायावाद शिल्प की दृष्टि से भी खड़ी बोली हिन्दी को सुन्दर, सक्षम और विविधतापूर्ण काव्य भाषा बनाता है।

(4) प्रगतिवाद में मार्क्सवादी विचारधारा के प्रभाव के कारण शोषितों के प्रति सहानुभूति, सामाजिक क्रान्ति का स्वर और शोषक वर्ग के प्रति घृणा व क्रोध के भाव व्यंजित हुए।

(5) प्रयोगवाद व्यक्तिवादी विचारधारा के ही नए उत्थान का परिणाम था। इसमें बौद्धिकता, अतियथार्थवाद, वस्तु और शिल्प के नए प्रयोग किए गए।

(6) साठोत्तरी जनवादी काव्य में यूँ तो अनेक पीढ़ियाँ लिख रही है और अनेक प्रवृत्तियाँ हैं, लेकिन इसकी प्रमुख वृत्ति है 'जनवाद' की, अर्थात आज के सामाजिक-राजनीतिक परिवेश में सामान्य जनता के अनुभवों की व्यंजना है। यह कविता प्रमुखतः राजनीतिक कविता है।

5.5 पारिभाषिक शब्द-अर्थ

अपरिहार्य	=	अनिवार्य, जिसे छोड़ा न जा सके
रीति-निरूपण	=	काव्यशास्त्र में दिए लक्षणों, तत्वों का अनुरकरण और व्याख्या करते हुए लिखना। इस पाठ्यक्रम के 'रीतिकाल' पर लिखे पाठों में इसकी विस्तृत चर्चा की जा चुकी है।
अनमेल विवाह	=	पति और पत्नी की आयु में बहुत अधिक अंतर होना।
अद्वैतवाद	=	भारतीय दर्शन की वह शाखा जिसमें ब्रह्म और जीव को एक माना गया है।
अस्तित्ववाद	=	अंग्रेज़ी में 'एक्ज़िज़टेंशियलिज़म', जर्मन-दर्शन की वह विचारधारा जिसका प्रवर्तन हेडेगर और कीर्केगार्द ने किया, और जिसमें व्यक्ति और समाज को परस्पर विरोधी समझा गया। यह यूरोप में महायुद्धों के प्रभावस्वरूप बड़ी तेज़ी से फैली।

5.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

5.6.1 'अ' श्रेणी के प्रश्न

निम्न लिखित प्रश्नों का उत्तर लगभग 250 शब्दों में दीजिए:

(1) भारतेन्दु युगीन काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियों पर प्रकाश डालिए।
(2) द्विवेदी युगीन काव्य की विशेषताएए बतलाइए।
(3) छायावादी काव्यधारा का महत्व स्पष्ट कीजिए।
(4) प्रगतिवाद मार्क्सवादी विचारधारा को किस तरह कविता में अभिव्यक्त करता है- सोदाहरण बतलाइए।

5.6.2 'ब' श्रेणी के प्रश्न

निम्न लिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 125 शब्दों में दीजिए।

(1) भारतेन्दु युगीन काव्य 'संधियुग' की प्रवृत्तियाँ लिये है- स्पष्ट कीजिए।
(2) प्रयोगवाद की मान्यताओं पर प्रकाश डालिए।
(3) साठोत्तर जनवादी काव्य का उद्देश्य स्पष्ट कीजिए।

BRAOU

5.7 नमूने के प्रश्नोत्तर

5.7.1 अ' श्रेणी के प्रश्न

प्रश्न: प्रगतिवाद मार्क्सवादी विचारधारा को किस तरह कविता में अभिव्यक्त करता है- सोदोहरण बतलाइए।
उत्तर: हिन्दी में मार्क्सवादी विचारधारा का प्रभाव सन् 1919-20 के समय ही से पड़ना शुरू हो गया था। मार्क्सवाद श्रमिक वर्ग का पक्षधर है और उसका शोषण करनेवाले सामंती-पूंजीवादी वर्ग का विरोध करता है। मार्क्सवाद का लक्ष्य है श्रमिक वर्ग को संगठित करके संघर्ष के लिए तैयार करना और इस वर्ग-संघर्ष के बाद एक शोषणहीन, वर्गहीन समतामूलक समाज, की स्थापना। हिन्दी काव्य में निराला की 'वह तोड़ती पत्थर' और 'भिक्षुक' जैसी कविताओं से 'प्रगतिवाद' का आरंभ मानाजाता है। प्रगतिवादी काव्य किसानों-मज़दूरों को केन्द्र बनाकर लिखा गया। उनके शोषित जीवन के प्रति सहानुभूति, शोषकों के प्रति घृणा, क्रान्ति का आह्वान, ग्रामीण जीवन का चित्रण, श्रम की प्रतिष्ठा, समतामूलक समाज का सपना आदि इस काव्य के विषय हैं। साथ ही रूस और मार्क्स का गुणगान तथा नारे बाज़ी प्रगतिवाद को 'मार्क्सवादी प्रोपेगण्डा' का रूप देती हैं। इस काव्यधारा में दो प्रकार के कवि आए। एक- जिन पर युगीन प्रभाज से यथार्थ-चेतना जागी थी, पर वे मार्क्सवादी नहीं थे- जैसे निराला, दिनकर, पंत, नरेन्द्रशर्मा, भगवती चरण वर्मा आदि। दूसरे- जो मार्क्सवादी विचारधारा से प्रतिबद्ध थे और बाद

में भी इस काव्यधारा को बढ़ाते रहे जैसे- रामविलास शर्मा, केदारनाथ अग्रवाल, नागार्जुन त्रिलोचन, मुक्तिबोध आदि. प्रगतिवादी काव्य में शिल्प की जगह वस्तु पर अधिक बल दिया गया। हिन्दी में सामाजिक यथार्थवाद की प्रतिष्ठा करने का श्रेय इसी को प्राप्त है। प्रगतिवाद केवल मार्क्सवादी विचारधारा का अनुवाद नहीं है, बल्कि भारतीय जीवन के यथार्थ को समझकर सच्ची संवेदना के साथ यह संघर्ष का आव्हान करता है। इसलिए आज भी जनवादी काव्यधारा के रूप में यह विद्यमान है। इस प्रकार प्रगतिवाद मार्क्सवादी विचारधारा का आधार लेकर आया पर इसमें भारतीय जीवन यथार्थ का मार्मिक चित्रण हुआ।

5.7.2 'ब' श्रेणी के प्रश्न

निम्न लिखित प्रश्न का उत्तर लगभग 125 शब्दों में दीजिए।

प्रश्नः भारतेन्दु-युगीन काव्य 'संधि-युग' की प्रवृत्तियाँ लिए है- स्पष्ट कीजिए।
उत्तरः 'संधियुग' से आशय है दो काल-खण्डों की प्रवृतियों का मिश्रित रूप। ऐसा तब होता है जब एक काल बीत रहा हो और दूसरा आ रहा हो। भारतेन्दु-युगीन काव्य में एक ओर बीते युग की रीतिकालीन श्रृंगार-निरूपण, भक्ति-भावना, ब्रजभाषा-प्रयोग, छन्द-अलंकार के पुराने प्रयोग और समस्या-पूर्ति आदि हैं, तो, दूसरी ओर समसामयिक सामाजिक यथार्थ, राष्ट्रभक्ति और सामाजिक-धार्मिक नवजागरण की प्रवृत्तियाँ हैं। हास्य-व्यंग्य के द्वारा समसामयिक ज्वलंत प्रश्नों को प्रस्तुत करना भी नई चेतना है। ब्रजभाषा में लिखते हुए भी इन कवियों ने खड़ीबोली हिन्दी को नए युग की भाषा माना और उसमें लिखने का प्रयत्न किया। भारतेन्दु-युग बीते रीतियुग की छाया है तो नए युग का दर्पण भी है। इस युग के कवियों ने बीते युग के संस्कारों से बँधे रहकर भी नये युग का आव्हान किया, और उसके लिए संघर्ष किया।

5.8 पठनीय पुस्तकें

1. आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास = डॉ. बच्चन सिंह
2. हिन्दी काव्य की प्रवृत्तियाँ = डॉ. नामवर सिंह
3. आधुनिक हिन्दी काव्य की मुख्य प्रवृत्तियाँ = डॉ. नगेन्द्र

BRAOU

इकाई-6: हिन्दी निबंध: ऐतिहासिक विकास और वर्गीकरण

6.0 विषय प्रवेश
6.1 पाठ का परिचय
6.2 पाठ परिचय
6.3 मूल पाठ
    6.3.1 निबंध की परिभाषा और महत्व
    6.3.2 हिन्दी निबंध साहित्य
    6.3.3 भारतेन्दु युग
    6.3.4 भारतेन्दु युगीन निबंधों की विशेषताएँ
    6.3.5 भारतेन्दु युग के निबंध साहित्य का मूल्यांकन
    6.3.6 द्विवेदी युग
    6.3.7 द्विवेदी युगीन निबंध साहित्य की विशेषताएँ
    6.3.8 द्विवेदी युग के प्रमुख निबंधकार
    6.3.9 द्विवेदी युग के निबंधों का मूल्यांकन
    6.3.10 शुक्ल युग
    6.3.11 वर्तमान युग
6.4 पाठ का सारांश
6.5 पारिभाषिक शब्द-अर्थ
6.6 अभ्यासार्थ प्रश्न
    6.6.1 'अ' श्रेणी के प्रश्नोत्तर (250 शब्दों में)
    6.6.2 'ब' श्रेणी के प्रश्नोत्तर (125 शब्दों में)
6.7 नमूने के प्रश्नोत्तर
    6.7.1 'अ' श्रेणी के नमूने के उत्तर
    6.7.2 'ब' श्रेणी के नमूने के उत्तर
6.8 पठनीय पुस्तकें

BRAOU

6.1 पाठ का उद्देश्य

हिन्दी साहित्य के इतिहास का आधुनिक काल गद्य काल के रूप में भी जाना जाता है। इस काल में भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने गद्य का प्रारंभ किया इसीलिए उन्हें गद्य का जन्मदाता कहते है। निबंध गद्य की ही एक विधा है। यदि पद्य कवियों की कसौटी है तो निबंध गद्य की कसौटी है। भाषा की पूर्ण शक्ति का विकास निबंधों में ही सबसे अधिक संभव होता है। हिन्दी के सुप्रसिद्ध विद्वान एवं आलोचक आचार्य रामचंद्र शुक्लजी ने अपने इस कथन में गद्य साहित्य के क्षेत्र निबंध को महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया है। इस विधा का परिचय, उसके प्रकार, प्रमुख निबंधकारों का परिचय इस पाठ के द्वारा आपको दिया जा रहा है।

6.2 पाठ परिचय

आधुनिक काल हिन्दी-गद्य की सर्वतोमुखी उन्नति का काल है। निबंध भी गद्य का एक महत्वपूर्ण अंग है। वस्तुतः आधुनिक युग में वैज्ञानिक प्रगति के साथ ही साथ बौद्धिकता का विकास हुआ। साहित्य के क्षेत्र में भावात्मकता का बौद्धिकता में विकास के फलस्वरूप भावात्मक काव्य-क्षेत्र में से विचारात्मक लेखों का निर्माण हुआ। ये विचारात्मक लेख ही निबंध कहलाए। अर्थात् वैज्ञानिक पद्धति एवं बौद्धिक जिज्ञासा के फलस्वरूप निबंध-साहित्य का जन्म हुआ। हिन्दी में निबंध का प्रारंभ तो 11 वीं शताब्दी से ही हो चुका था। ज्ञान के दूरूह विषयों की टीका, सिद्धांत पक्ष का प्रतिपादन, आरोपों का खंडन आदि के रूप में निबंध लिखे जाते थे। किंतु निबंध नामक नई विधा का जन्म अँग्रेजी साहित्य के प्रभाव से माना जाता है। अपने विकास क्रम में निबंधों का प्रथम चरण प्रयास दशा, द्वितीय विकास-दशा, तृतीय प्रसार-दशा तथा चतुर्थ उत्कर्ष दशा है। इन्हें क्रमशः भारतेन्दु युग, शुक्ल युग तथा शुक्लोत्तर युग के रूप में बाँटा गया है। इनका सम्यक् विवेचन प्रस्तुत पाठ में किया गया है।

6.3 मूल पाठ

6.3.1 निबंध की परिभाषा और महत्व

"यदि पद्य कवियों या लेखकों की कसौटी है, तो निबंध गद्य की कसौटी है। भाषा की पूर्ण शक्ति का विकास निबंधों में ही सबसे अधिक संभव होता है"। हिन्दी के सुप्रसिद्ध विद्वान एवं आलोचक आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी ने अपने इस कथन में गद्य साहित्य के क्षेत्र में निबंध को महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया है। उनके अनुसार गद्य का पूर्ण विकसित और शक्तिशाली रूप निबंध में ही चरम उत्कर्ष को प्राप्त होता है।

संस्कृत में "निबंध" शब्द का अर्थ है बाँधना। अर्थात् भावाभिव्यक्ति हेतु किसी भी भाषा में विचारों या व्यख्याओं का संगठित या सुबंधित रूप से अभिव्यक्ति ही निबंध कहलाएगी। हिन्दी शब्द सागर के अनुसार "निबंध" वह व्याख्या है, जिसमें अनेक मतों का संग्रह हो"। इस दृष्टि से निबंध, लेख, संदर्भ आदि सभी पर्यायवाची हो जाते हैं।

आज हन्दिी साहित्य में प्रचलित निबंध शब्द अंग्रेजी के "एस्से" का पर्यायवाची है, जिसका अर्थ है "प्रयत्न"। फ्रेंच भाषा में इसका पर्याय वाची "ऐसाई" है। आधुनिक साहित्य में निबंध विधा का विकास पाश्चात्य साहित्य की प्रेरणास्वरूप माना जाता है।

BRAOU

6.3.2 हिन्दी निबंध साहित्य

हिन्दी में निबंध साहित्य आधुनिक काल की देन है। उससे पूर्व हिन्दी में गद्य साहित्य का अभाव ही रहा है। ऐसी स्थिति में गद्य की उत्कृष्टतम् विधा निबंध का अभाव होना संभव ही नहीं अपितु निश्चित ही है। हिन्दी के समस्त निबंध साहित्य को चार भागों में बाँटा जा सकता है।

1. भारतेन्दु युग
2. द्विवेदी युग
3. शुक्ल युग
4. वर्तमान युग

6.3.3 भारतेन्दु युग

भारतेन्दु युग हिन्दी निबंध के आविर्भाव एवं विकास का युग है। इससे पूर्व हिन्दी में निबंध साहित्य का विकास न होने के कई कारण हैं। प्रथम एवं प्रमुख कारण तो यह है कि इससे पूर्व गद्य का समुचित विकास ही नहीं हुआ था। दूसरा कारण यह है कि पूर्ववर्ती साहित्याकारों का मुख्य

लक्ष्य अपनी भावानुभूतियों को ही अभिव्यक्ति देना था, विचारों की अभिव्यंजना नहीं, अतः काव्य का माध्यम ही उनके लिए अधिक उपयुक्त था। निबंध साहित्य के विकास में बाधक तृतीय कारण मुद्रण एवं प्रचार साधनों का अभाव है। इसके अतिरिक्त भारतेन्दु युग से पूर्व रीतिकालीन वातावरण में उस सामाजिक एवं राजनीतिक चेतना का अभवा था जो विचारों में उत्तेजना भरकर निबंधों का सर्जक बन सकती। भारतेन्दु युग में भारतीय समाज में एक नवीन सांस्कृतिक एवं राजनैतिक चेतना का उदय हो रहा था। इस नवीन चेतना का तत्कालीन हिन्दी पत्रपत्रिकाओ के माध्यम से प्रसार का अवसर मिला। हरिश्चन्द्र चन्द्रिका, ब्राह्मण, सार-सुधानिधि, एवं प्रदीप आदि पत्रिकाओं की निबंध के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका थी। इन पत्रिकाओं में छपने वाले प्रारंभिक निबंध छोटे छोटे होते थे तथा इन पत्रिकाओं का अंग होते थे। इन निबंधों के लेखक पत्रिकाओं के संपादक ही होते थे। फलतः इन निबंधों में पत्रकारिता का स्पष्ट प्रभाव था। इन निबंधों में गंभीरता पर उन्मुकता की प्रधनता थी। साधारणतः सामाजिक आन्दोलन या धार्मिक समस्याओं को लेकर ही निबंध लिखे गए।

अंग्रेजी-साहित्य में भी निबंधों का विकास पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से हुआ है। वहाँ निबंध-लेखन की द्विविध परंपराएँ प्राप्त होती है- व्यक्तित्व-प्रधान एवं निर्वैक्तिक परंपरा। इनमें व्यक्तित्व-प्रधान लेखकों में मौन्तेन, अब्राहम, काजली, स्विफट, लैम्ब, हैजलिट, स्टील गोल्डस्मिथ, ली हंट, स्टीवेन्सन आदि निबंधकार हुए। निर्वैयक्तिक या विषय-प्रधान परंपरा में बेकन, बेन जानसन, एडीसन, जॉनसन, जेफरी, मैकाले, वाल्टरपीटर आदि निबंधकार हुए। भारतेन्दु युग में हिन्दी निबंध-साहित्य पर दोनों ही परंपराओं का प्रभाव दिखाई देता है। यद्यपि यह प्रभाव अप्रत्यक्ष एवं आंशिक ही रहा। हिन्दी निबंध-लेखन की पृष्ठभूमि में सामायिक आवश्यकताओं की ही प्रमुख भूमिका रही है।

पत्रकारिता के प्रभावस्वरूप भारतेन्दु युग के निबंधों में विषय में विषय को विविधता, सामाजिक एवं राजनैतिक जागरण शैली की सजीवता एवं रोचकता आदि गुण आ गए हैं। संपादक एवं लेखक इस चेतना के प्रतिनिधि थे। उनका लक्ष्य बहुमुखी था। जैसे-साहित्य के नवीन एवं प्राचीन अंगों को पुष्ट बनाना, नवीन नाट्यकला की ओर ध्यान देना, सामाजिक और राजनीतिक गतिविधि पर टीका-टिप्पणी करना तथा शिक्षा का प्रसार करना आदि। इस सब कार्यों के लिये निबंध ही अच्छा एवं सशक्त माध्यम था। इसी कारण इस युग में अतिसामान्य से लेकर अत्यंत गंभीर विषयों पर निबंध लिखे गए। उस समय हिन्दी गद्य, विकास की अवस्था में था। अतः गद्य का कोई एक सर्व-स्वीकृत रूप सामने नहीं था, फलतः इस काल के निबंधों में गद्य-शैली-निर्माण के वैयक्तिक प्रयास ही अधिक मिलते हैं। इनकी भाषा सर्व-साधारण की भाषा है, जिसमें प्रांतीय लोकोक्तियों, मुहावरों और शब्दों का खुलकर प्रयोग किया गया है। भारतेन्दु युग के निबंध "ऐसे" शब्द के वास्तविक अर्थ को ध्वनित करनेवाले प्रारंभिक "प्रयास" थे। उनमें न बुद्धि-वैभव का चमत्कार प्रदर्शित है और न पाण्डित्य-प्रदर्शन का दंभ है। ये प्रारंभिक निबंध-लेखक जिन्दा दिल, सजीव और कल्पनाशील थे, इसी कारण इनके निबंधों में वैयक्तिक-विशेषताएँ, हास्य-विनोद, व्यंग्य निश्छलता आदि गुण स्वाभाविक रूप से ही आ गए हैं।

BRAOU

इस युग के निबंधकारों में भारतेन्दु के अतिरिक्त बालकृष्ण भट्ट, बदरीनारायण चौधरी, प्रेमघन, प्रताप नारायण मिश्र, बालमुकुन्द गुप्त, राधाचरण गोस्वामी आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। जहाँ तक हिन्दी निबंध के प्रारंभ का प्रश्न है कुछ विद्वानों ने राजा शिव प्रसाद सितारे हिन्द के निबंध "राजभोज का सपना" को हिन्दी का प्रथम निबंध माना है तो कुछ ने पं. बाल कृष्ण भट्ट को हिन्दी का प्रथम निबंधकार स्वीकार किया। किन्तु यह निर्विवाद रूप से स्वीकार्य है कि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ही हिन्दी गद्य-साहित्य के प्रवर्तक एवं हिन्दी निबंध के संस्थापक है। भारतेन्दु का निबंध साहित्य के क्षेत्र में प्रथम प्रयास है। भारतेन्दु के निबंधों में विषय और शैली की दृष्टि से विविधता है। किन्तु वे निबंध इस दिशा में छिट-पुट प्रयास ही है, वे निबंध परंपरा को विकास नहीं दे पाए। प्रस्तुत युग के प्रतिनिधि निबंध लेखकों के रूप में पं. बालकृष्ण, पं. प्रताप नारायण मिश्र और बाबू बालमुकुन्द गुप्त को ही विशेष मान्यता प्राप्त है। इनमें मिश्रजी का सा उल्लास और मस्ती-आजतक किसी अन्य लेखक में दृष्टि गोचर नहीं हुई। लिखते समय वे नियमों के बंधन को स्वीकार नहीं करते। उसकी भाषा-अकृत्रिम, सजीव और ग्रामीण है। उनमें गांभीर्य का अभाव है, परन्तु कहावतों, मुहावरों, अनुप्रास एवं श्लेष के सफल प्रयोग से वे पाठकों को प्रभावित कर लेते हैं। निबंध का विषय उनकी विचार धारा को

प्रभावित नहीं करता अपितु निबंध उनकी विचारधारा से नियंत्रित होते हैं। जो विषय मन में आया उसे उठा लिया और उसके माध्यम से अपने मन की बात कह दी। "बत", वृद्ध, "भौं", "मरे को मारे शाह मदार" आदि निबंध उनकी सुंदर व्यक्ति निष्ठ शैली के परिचायक हैं।

बलकृष्ण भट्ट, मिश्रजी के श्रेष्ठ सहयोगी थे। ये गंभीर विद्वान थे। भारतेन्दु की विचारात्मक तथा व्याख्यात्मक शैली ने भट्टजी के निबंधों में विकास पाया। इनके निबंधों में विनोदप्रियता है। गंभीर बात को सुबोध और रोचक ढंग से कहने में सिद्धहस्त है। हास्य को विशेष महत्व देते हुए वे कहते है- "सच पूछो तो हास्य ही लेख का जीवन है। लेख पढ कुंद कली के समान दाँत न खिल उठें तो वह लेख ही क्या?"। उनके निबंधों में कहीं-कहीं सुंदर भावात्मक शैली का भी प्रयोग है। वे पाठक से आत्मीयता से बात तो करते हैं किन्तु इसके हेतु वे मिश्रजी की ग्रामीणता को नहीं अपनाते। उन्होंने साहित्यिक, सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, नैतिक एवं मनोवैज्ञानिक विषयों पर निबंध लिखे हैं. उनके निबंधों में विभिन्न शैलियों के दर्शन होते हैं जैसे-विश्लेषणात्मक, भावात्मक एवं व्यंग्य आदि। उन्होंने विचारात्मक निबंध तर्क पुष्ट शैली में व्यस्थित ढंग से लिखे हैं।

इस काल के तीसरे प्रमुख बाबू बाल मुकुन्द गुप्त हैं। निबंधों के क्षेत्र में गुप्तजी का सर्व प्रमुख योगदान यह है कि उन्होंने गद्य को परिमार्जित कर उसे प्राज्वल बनाया है। इनका व्यंग्य अधिक सांकेतिक और व्यंजक है। विषय की दृष्टिं से इनके निबंधों में विविधता है। इन्होंने कई तरह के निबंध लिखे हैं जैसे जीवन-चरित, हिन्दी भाषा, लिपि, व्याकरण, राष्ट्रभाषा आदि। व्यंग्यात्मक निबंधों ने इन्हें विशेष ख्याति प्रदान की। "शिव शंभु का चिट्टा" और "खत" इनकी विशेष ख्याति प्राप्त रचनाएँ हैं। गंभीर बातों को विनोदपूर्ण बनाकर अपने हृदय का आक्रोश प्रभावपूर्ण ढंग से व्यक्त करने की अद्भुत क्षमता गुप्त जी में थी।

इस युग के अन्य लेखक विशेष उल्लेखनीय न हुए। इन्होंने महत्वपूर्ण निबंधों का निर्माण नहीं किया, सामान्य निबंध एवं टिप्पणीयाँ ही लिखी हैं।

6.3.4 भारतेन्दु युगीन निबंधों की विशेषताएँ

1. भारतेन्दु युग हिन्दी निबंधों का उत्थान काल था। उस समय निबंध-लेखन कला का समुचित विकास नहीं हो पाया था। भाषा भी विकास दशा में ही थी, अतः इस काल के निबंध विषय और क्षेत्र दोनों ही दृष्टियों से सीमित थे। समाज और साहित्य के कुछ इने गिने पक्षों पर ही निबंध लिखे गये। जीवन के सर्वांगीण पक्ष का विवेचन संभव न हो सका।

2. प्रस्तुत युग नवीन राजनैतिक एवं सांस्कृतिक चेतना के उदय का युग था। इस युग के निबंध छोटे लेखों के रूप में समाचार पत्रों में छपा करते थे। इनमें साधारण विषयों, सामाजिक आंदोलन या धार्मिक समस्याओं पर प्रकाश डाला जाता था। इन निबंधों के लेखक भी प्रायः पत्र-संपादक ही होते थे। अतः उनमें पत्रकारिता की झलक दिखाई देती है। अतः उनमें रोचक शैली में सामाजिक या राजनैतिक जागरूकता का वर्णन है।

3. इस काल के निबंधों का एक महत्वपूर्ण गुण वैयक्तिकता है। यह वैयक्तिकता मांटेन के निबंधों में व्यक्त वैयक्तिकता से अलग है। इन्होंने विषय को रोचक बनाने के लिए ही यत्र-तत्र वैयक्तिकता का सामावेश किया है। शायद इस युग के लेखकों का मांटेन से परिचय नहीं था।

4. शैली की दृष्टि से हास्य एवं व्यंग्य शैली की ही अधिकता है तथा सादृश्य मूलक अलंकारों का प्रयोग अधिक हुआ है। निबंध लेखन कला का मान्यरूप स्थापित नहीं हुआ था। अतः लेखकों की अपनी वैयक्तिक शैली थी। भारतेन्दु में बौद्धिकता कम, भावुकता अधिक है। भट्ट जी की शैली में विदेशी शब्दों की बहुलता है। भारतेन्दु स्वभाव से कवि थे, उनकी भाषा में पद-लालित्य और अनुप्रास के दर्शन होते हैं। लाला श्रीनिवासदास की भाषा सरल और मर्म स्पर्शिणी है। पं. राधाचरण

BRAOU

गोस्वामी की भाषा में ब्रज प्रदेश की भाषा का प्रभाव है। पं. अम्बिकादत्त व्यास विद्वान एवं प्रभावशाली धर्मोपदेशक थे। ये लेखक जिन्दादिल, सरस और कल्पनाशील थे। इनके निबंधों में झंकृत हास्य-व्यंग्य आदि इनकी वैयक्तिक विशेषता के परिणाम थे। इनमें पाण्डित्य प्रदर्शन की भावना तथा बुद्धि-चमत्कार है। इनकी शैली में जो सरलता, प्रसन्नता एवं आत्मीयता है उसे देखते हुए आचार्य रामचंद्रशुक्ल ने कहा था- "यह युग बच्चे के समान हँसता-खेलता आया था, जिसमें बच्चों की-सी निश्छलता, अक्खड़पन, सरलता और तन्मयता थी"। भाषा जनसाधारण की भाषा थी।

6.3.5 भारतेन्दु युग के निबंध-साहित्य का मूल्यांकन

हिन्दी निबंध का प्राथमिक प्रयास होने पर भी यह युग महत्वपूर्ण है। इसके विषय में डॉ. रामविलास शर्मा ने कहा है- "जितनी सफलता भारतेन्दु-युग के लेखकों को निबंध रचना में मिली, उतनी कविता और नाटक में भी नहीं मिली। इसका एक कारण यह था कि पत्रिकाओं में नित्यप्रति लिखते रहने के कारण उनकी शैली खूब निखर गई थी। दूसरी बात यह है कि निबंध ही एक ऐसा माध्यम था, जिसके द्वारा उस युग के फक्कड़ लेखक बेतकुल्लुफी से अपने पाठकों से बात कर सकते थे। "उस युग के लेखक तटस्थ रहते हुए अपनी बात पाठकों से कहकर संतोष कर सकते थे। वे उससे आत्मीयता का संबंध स्थापित कर सकेत थे। और एक मित्र की भांति घुल-मिलकर उसे अपनी बात समझाना चाहते थे। साहित्य की सच्ची सप्राणता उस शैली में है, जहाँ लेखक और पाठक के बीच कोई दुर्भाव नहीं रह जाता। सहज आत्मीयता से भाव ने भाषा को खूब स्वाभाविक बना दिया। कृत्रिम शैली में लेखक पाठक का आत्मीय बन ही नहीं सकता। इसीलिए भारतेन्दु युग की गद्य-शैली के सबसे चमत्कारपूर्ण निदर्शन निबंधों में ही मिलते हैं। बाबू गुलाबराय ने आत्मीयता की प्रशंसा करते हुए कहा है- भारतेन्दु युग चिरस्मरणीय रहेगा। "भरतेन्दु युगीन निबंधों का प्रमुख योग दान यही रहा कि उनके द्वारा उस युग में तेजी से उभरती सामाजिक और राजनीतिक चेतना प्रच्छन्न-अप्रच्छन्न रूप में अभिव्यक्त हुई थी तथा हास्य-व्यंग्य शैली ने उसे और अधिक मार्मिकता एवं प्रभावोत्पादकता प्रदान की। यह युग वास्तव में वृद्धि और प्रसार का युग था। इस युग में साहित्य की प्रत्येक विधा पर कलम चलाई गई। निबंध का क्षेत्र भी वैविध्यपूर्ण है, विषय की दृष्टि से और शैली की दृष्टि से भी। किन्तु ये प्रयासदशा में ही रहे। गंभीर आलोचना और आत्माभिव्यक्ति के साधन के रूप में निबंध को नहीं अपनाया जा सका। यह कार्य परवर्ती युग में हुआ। डॉ. राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी के अनुसार- "इस काल के निबंध उस शिशु के समान थे जो लड़खड़ाते हुए बार बार उठकर अपने पैरों पर खड़ा होना चाहता है। उसको सहारा देने वाले अभिभावक की आवश्यकता थी। परवर्ती युग में आचार्य द्विवेदी द्वारा यह कार्य पूरा किया गया। उन्होंने उत्तरदायी पिता के समान इस शिशु को अपने पैरों पर निडर होकर चलाना सिखाया"।

BRAOU

6.3.6 द्विवेदी युग

पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी नाम पर इस युग का नामकरण किया गया। उन्होंने सरस्वती पत्रिका के संपादक के रूप में साहित्य जगत् में प्रवेश किया। सरस्वती के माध्यम से हीआपने हिन्दी भाषा के परिष्कार और गद्य साहित्य के परिमार्जन का कार्य आरंभ किया। इस युग के निबंधों में विषय की दृष्टि से गंभीरता आई और भाषा का भी परिमार्जन हुआ अतः इस काल को "परिमार्जनकाल" भी कहा जाता है।

सन् 1904 से सन् 1920 तक का समय जन-जागरण का समय था। शिक्षा का भी इस युग में पर्याप्त विकास हुआ। समाज में राजनीतिक एवं नैतिक चेतना जागृत हुई। देश-भक्ति की भावना ने जोर पकडा। मंचूरिया का युद्ध, बंग-भंग आंदोलन, प्रथम महायुद्ध, जालियाँवाला बाग कांड तथा रौलेट एक्ट आदि घटनाएँ सामाजिक विचार धारा को प्रभावित कर रही थी। इन सबका सीधा प्रभाव साहित्य पर पड़ रहा था। हल्के फुल्के हास्य-व्यंग्य के स्थान पर साहित्य में गंभीर चिंतन की परंपरा आई तथा नैतिकता का समावेश हुआ।

6.3.7 द्विवेदी युगीन निबंध-साहित्य की विशेषताएँ

1. भारतेन्दु युग वृद्धि एवं विस्तार का युग था। निबंध लेखन प्रयास दशा में था। किन्तु द्विवेदी युग परिमार्जन का युग था। विषय, शैली, भाषा आदि सभी दृष्टियों से परिमार्जन हुआ।

2. भारतेन्दु युगीन उच्छृंखलता ने द्विवेदी युग में गंभीर विचारों का रूप धारण किया। हास्य-व्यंग्य के स्थान पर अब नैतिकता प्रधान हुई। वैयक्ति प्रयास सामाजिक भावना के रूप में संयोजित हुए।

3. शिक्षितों की संख्या बढ़ी। राजनीतिक जनजागरण के कारण साहित्य का भी विकास हुआ। विषयों का विस्तार हुआ। विषय-विभिन्नता के कारण भाषा की शक्ति बढ़ी। शिक्षा के प्रसार और आदर्शवादिता के कारण स्वच्छंदता के लिए अधिक स्थान न रहा। फलतः इस काल में नैतिक निबंधों की संख्या अधिक दिखाई देती है।

4. निबंध मनोरंजन का साधन मात्र न होकर शिक्षा का माध्यम बने। पुरातत्व, इतिहास, दर्शन संबंधी गूढ आलोचनात्मक लेख लिखे गए। अँग्रेजी और मराठी के निबंधों के अनुवाद हुए। निबंधों में भावनात्मकता की अपेक्षा बौद्धिकता का प्राधान्य होने से निबंध आलोचनात्मक लेख बन गए। लेखकों ने साहित्य की अपेक्षा नैतिक आदर्शों का अधिक ध्यान रखा।

5. द्विवेदी युग निबंध का द्वितीय उत्थान है। इसका प्रारंभ "सरस्वती" और "नागरी प्रचारिणी पत्रिका" के प्रकाशन के साथ प्रारंभ होता है।

6. इस युग के निबंधों में उन्मुक्ता एवं वैयक्तिता के स्थान पर विवेचन गंभीरता तथा सामाजिकता का तत्व अधिक हो गया। फिर भी निबंधों का क्षेत्र सीमित हो गया। निबंधों की प्रवृत्ति जनसाधारण की ओर न होकर शिष्ट एवं शिक्षित वर्ग की ओर उन्मुख हुई। मार्क्सवादी भाषा में "भारतेन्दु-युगीन जनवादी निबंध द्विवेदी-युग में आकर बुर्जुआ अर्थात् अभिजात्य-वर्गीय बन गया।

7. निबंध अब मनोरंजन एवं व्यंग्य का साधन न रहकर रुचि-संस्कार का माध्यम बन गया। उनकी श्रेष्ठता का आधार उपयोगिता को माना गया। निबंध ज्ञान-विस्तार का साधन बन गए।

8. बौद्धिकता के प्राधान्य से हार्दिकता और भावुकता में कमी होने से ज्ञान-गहन निबंधों में धीरे-धीरे रोचकता का अभाव होने लगा।

9. भाषा का परिमार्जन और विकास हुआ। आचार्य द्विवेदी ने गद्य की भाषा को पूर्णतया समर्थ बना दिया और वह अबाध गति से विकसित होने लगी। अपनी प्रगति के लिए उसे किसी सहारे की आवश्यकता न रही।

6.3.8 द्विवेदी युग के प्रमुख निबंधकार

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी इस काल के प्रमुख निबंधकार थे। उनके निबंध "साहित्य की महत्ता", "कवि और कविता", "प्रतिभा", "नाटक", "उपन्यास" सरल एवं सुबोध शैली में लिखे गए ज्ञान-वर्धक निबंध हैं। इनके अतिरिक्त पं. गोविदनारायण मिश्र, पं. माधवप्रसाद मिश्र, चंद्रधरशर्मा गुलेरी, बाबू गोपालराम गहमरी, बाबू ब्रज नंदन सहाय, पं. पद्मसिंह शर्मा, अध्यापक पूर्णसिंह, गणेश शंकर विद्यार्थी एवं गंगाप्रसाद अग्निहोत्री का स्थान महत्वपूर्ण है। डॉ. श्याम सुंदर दास, बाबू गुलाबराय और मिश्रबंधु भी इसी युग के महान निबंधकार हैं। किंतुइन निबंधकारों ने द्विवेदी जी की प्रेरणा से आधार ग्रहण कर निबंधों का सृजन और साहित्य" "कला का विवेचन" आदि अनेक निबंध पाण्डित्यपूर्ण ढंग से लिखे गए हैं। ये ज्ञान के अक्षय भंडार है, किन्तु ये निबंध साहित्यिक दृष्टि से उच्च कोटि के निबंध न कहला सके। मिश्रबंधुओं के निबंध भी शिक्षा मूलक हैं। गुलाबराय जी के इस युग के निबंध विशेष महत्वपूर्ण

BRAOU

नहीं है। परवर्ती युग में ही उन्हें अधिक ख्याति मिल सकी। बख्शी जी ने कई साहित्यिक निबंध लिखे। पं. पद्मसिंह शर्मा ने फडकती शैली में सुंदर एवं भावुक निबंध लिके। बनारसी दास चतुर्वेदी, मोहनलाल महता आदि ने कुछ संस्मरणात्मक एवं चरितात्मक निबंध लिखे।

प्रस्तुत युग में तीन निबंधकारों को विशेष स्थान प्राप्त हुआ। वे निबंधकार हैं- पं. माधव प्रसाद मिश्र, चन्द्रधर शर्मा गुलेरी तथा अध्यापक पूर्णसिंह. इन तीनों ने तिन उच्च कोटि के निबंधों की रचना की हैं कि इनकी तुलना हिन्दी साहित्य के किसी भी अन्य निबंधकार से नहीं की जा सकती। किन्तु इसकी विशेषता इन तक ही सीमित रह गई। उनका अनुसरण कोई न कर सका। मिश्रजी के निबंधों में त्योहार, तीर्थस्थान, देशप्रेम तथा सनातन धर्म से संबंधित निबंध उनके देश एवं संस्कृति प्रेम को व्यक्त करते हैं। गुलेरी जी विचार एवं शैली की दृष्टि से अत्यधिक प्रगतिशील निबंध लेखक हैं इनके व्यंग्य में अपेक्षाकृत अधिक मार्मिकता एवं तीखापन है। इस युग के लेखकों में सबसे अधिक विकसित ऐतिहासिक और सांस्कृतिक चेतना इन्हीं में मिलती हैं। "कछुआ धरम" मोरेसि मोहि कुठाँव" और "संगीत" जैसे निबंधों में इनकी चमत्कारपूर्ण शैली दर्शनीय है। सरदार पूर्णसिंह ने निबंधों को एक नवीन लय और गतिप्रदान की। उसे मानतावादी विचारधारा की ओर मोडा। सभ्य आचरण एवं प्रेम के द्वारा ही वे समाज का कल्याण संभव मानते थे। उन्होंने श्रम का जो महत्व समझाया वह हिन्दी साहित्य के लिए एक नवीन वस्तु थी। इनकी भाषा में लक्षणा एवं-चित्रण, मार्मिकता भावव्यंजना, गंभीर विचार एवं भाषा की ओजस्विता ने आप के निबंधों की प्रभावकारी बनाया।

6.3.9 द्विवेदी-युग के निबंधों का मूल्यांकन

द्विवेदी युग के निबंध साहित्य का मूल्यांकन करते हुए श्री राजनाथ शर्मा ने कहा है- "द्विवेदी युग के निबंध राष्ट्रीय जागृति, विश्व-प्रेम, सामाजिक एकता, भारत और युरोप का संपर्क, अतीत-गौरव सांस्कृतिक पुनरुत्थान तथा भाषा परिष्कार की भावनाओं और प्रयत्नों से ओत-प्रोत हैं। जीवन को पूर्ण और गंभीर दृष्टि से देखने के कारण इनमें हास्य-व्यंग्य के स्थान पर गंभीरता का समावेश होता गया। रूप की दृष्टि से गद्य-गीत और चरितात्मक कहानियों के रूप का भी निबंध के माध्यम से विकास हुआ। इस युग के निबंधों में विषय-वैविध्य, विचार-गांभीर्य, और भाषा की सशक्त स्वच्छता के दर्शन हुए। इस दृष्टि से इस युग के निबंधों का प्रभावक्षेत्र अपेक्षाकृत सीमित हो गया था। इसमें निबंध के प्रधानगुण-आत्मीयता और रसप्रवणता-का प्रायः अभाव ही रहा। इस युग के निबंध अपनी सुधारवादी भावना के रहते हुए भी, बौद्धिकता और नैतिकता के प्रति अत्यधिक आग्रह रहने के कारण उच्च-शिक्षित वर्ग तक ही सीमित होकर रह गए। ?

BRAOU

6.3.10 शुक्ल युग

द्विवेदी युग के पश्चात् हिन्दी निबंध पर आचार्य रामचंद्र शुक्ल का प्रभाव पड़ा। सन् 1920 से 1940 तक का समय शुक्ल युग के नाम से जाना जाता है। इस युग की व्याख्या करते हुए गुलाबराय जी ने कहा है- "आचार्य रामचंद्रशुक्ल के निबंध-क्षेत्र में पदार्पण करने से निबंध साहित्य में एक नया जीवन आया। द्विवेदी युग में विचार और परिमार्जन तो पर्याप्त हुआ परंतु उस काल में उतना विश्लेषण और गहराई में जाने की प्रवृत्ति न उत्पन्न हो सकी।"

इस अभाव की पूर्ति शुक्ल जी ने की। शुक्लजी की "चिंतामणि" के निबंधों ने निबंध साहित्य में नये विचार, नई अनुभूति और नवीन उद्‌भावना की। इस युग में आचार्य श्यामसुंदर दास, पं. पद्मसिंह शर्मा, बाबू गुलाबराय, वियोगी हरि, गणेश शंकर विद्यार्थी, जय शंकर प्रसाद, राहुल सांकृत्यायन आदि उल्लेखनीय निबंधकार हैं। उपरोक्त निबंधकारों में बाबू श्याम सुंदरदास का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है। उन्होंने हिन्दी गद्य के विकास में बहुत योगदान दिया है। उनके निबंध-आलोचनात्मक एवं विचारात्मक है। इन निबंधों की शैली विश्लेषणात्मक है। संस्कृत निष्ठ सुसंगठित भाषा के प्रयोग से आपने सिद्ध कर दिया कि हिन्दी में गंभीरतम विचारों एवं भावों को अभिव्यक्त करने की क्षमता है। निबंधों के अतिरिक्त आपने आलोचना, इतिहास, भाषा-विज्ञान जैसे विषयों पर पाठ्य-पुस्तक लिखकर हिन्दी को उच्च

कक्षाओं में पढ़ाए जाने योग्य विषय बना दिया। इनके निबंधों में इनके पांडित्यपूर्ण ओज और गांभीर्य की छाप सर्वत्र दिखाई देती है।

6.3.11 वर्तमान युग

शुक्ल जी के पश्चात् अर्थात् सन् 1980 ई. के पश्चात् का समय हिन्दी निबंधों का वर्तमान काल माना जाता है। यह युग प्रगति एवं प्रयोग का युग था। इस युग में साम्यवादी विचार धारा का विशेष प्रभाव रहा है। और इसी आधर पर निबंध साहित्य में विषय एवं शैली में विविधता एवं व्यापकता का समावेश हुआ। इस युग में भाषा भी पूर्णतया समर्थ एवं समृद्ध बनी है। उसमें साहित्यिकता भी है और गंभीरतम विचारों को अभिव्यक्त करने की क्षमता भी है। अँग्रेजी के शब्दों के समावेश से शब्दावली का विकास हुआ है। विषय की विविधता को देखते हुए आधुनिक युग के निबंध लेखकों को निम्न वर्ग में विभाजित किया जा सकता है:

1. शुक्ल परंपरा :
इस वर्ग में डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी, डॉ. नगेन्द्र, डॉ. नंददुलारे बाजपेयी, डॉ. सत्येन्द्र, तथा शांतिप्रिय द्विवेदी प्रमुख निबंधकार हैं। शैली एवं विचारों में किंचित विभिन्नता होने पर भी ये साहित्यकार साहित्य एवं जीवन के संबंध की दृष्टि से शुक्लजी की विचार परंपरा में ही आते हैं। रस-मत के अनुयायी होने तथा लोकरंजन को साहित्य का अभेद्य अंग मानने के कारण ये लेखक एक ही वर्ग में आते हैं। शास्त्रीयता एवं सांस्कृतिकता इनके निबंधों की प्रमुख विशेषताएँ हैं।

2. आलोचनात्मक वर्ग :
वर्तमान काल के निबंध साहित्य का यह सबसे अधिक पुष्ट वर्ग है। आजकल के सभी निबंध आलोचनात्मक व्याख्यारूप में ही होते हैं। हाँ, नगेन्द्र एवं आचार्य नंददुलारे बाजपेयी ने इस प्रकार के निबंध लिखे हैं। छायावाद के आधार स्तंभ चारों प्रमुख कवि-पंत, प्रसाद, महादेवी एवं निराला ने अपने काव्य की भूमिका रूप में आलोचनात्मक निबंध लिखे हैं।

3. भावात्मक वर्गः
इस वर्ग के लेखकों में रामकृष्णदास, वियोगी हरि और माखनलाल चतुर्वेदी उल्लेखनीय है। शांतिप्रिय द्विवेदी भी एक भावुक निबंधकार हैं।

4. मार्क्सवादी वर्गः
आधुनिक विचारधारा पर मार्क्सवाद का अत्यधिक प्रभाव है। इस वर्ग के लेखकों में डॉ. रामविलास शर्मा, डॉ. शिवदान सिंह चौहान, डॉ. रागेय राघव के नाम विशेष उल्लेखनीय है।

5. यात्रा संबंधी निबंधः
यात्रा संबंधी निबंध भी बहुत लिखे गये हैं। इस वर्ग के लेखकों में राहुल सांस्कृत्यायन, देवेन्द्र सत्यार्थी आदि के नाम विशेष उल्लेखीय है।

6. नैतिक-सांस्कृतिक निबंध लेखकः
इस वर्ग के लेखकों में कन्हैयालाल मिश्र, प्रभाकर का नाम स्मरणीय है। इनकी शैली बड़ी मनोरम है। बाबू गुलूब राय ने भी इस श्रेणी के सशक्त निबंधों का निर्माण किया है।

7. हास्य-व्यंग्य संबंधी लेखक
भारतेन्दु युग में कुछ निबंध हास्य-व्यंग्य शैली में लिखे गए थे। आधुनिक युग में पुनः हास्य-व्यंग्य प्रधान निबंध लिखे गए। इस वर्ग के लेखकों में श्री बेढब बनारसी, बरसानेलाल चतुर्वेदी, गोपाल प्रसाद, मोहन राकेश, हरिशंकर परसाई, आदि महत्वपूर्ण लेखक हैं।

BRAOU

8. दार्शनिक वर्गः

इस वर्ग के अंतर्गत बाबू गुलाबराय, डॉ. रामानंद तिवारी, डॉ. रामचरण, महेन्द्र, डॉ. सम्पूर्णानंद का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

9. संस्मरण संबंधी निबंध लेखकः

इस वर्ग के अंतर्गत पं. बनारसीदास चतुर्वेदी, बाबू गुलाब राय, श्रीमती महादेवी वर्मा आदि आदर्श निबंधकार हैं।

10. अन्यः

इनके अतिरिक्त अन्य विविध विषयों पर निबंध लिखे गए है। भंदत आनंद कौशल्यायन, प्रभाकर माचवे, डॉ. कमलेश, गुरुशरण अवस्थी, डॉ. विजयेन्द्र स्नातक, आदि ने विभिन्न प्रकार के साहित्यिक निबंध लिखे हैं।

इस तरह हम देखते है कि वर्तमान काल में निबंध साहित्य का समुचित विकास हुआ है। विविध विषयों पर निबंध लिखे गए। साहित्यिक आलोचनात्मक निबंधों का प्राधान्य रहा क्योंकि विश्वविद्यालय में नित्य नए शोध लिखे जा रहे हैं। दैनिक जीवन एवं मनोविज्ञान से संबंधिक निबंध भी लिखे जा रहे हैं। हिन्दी निबंध साहित्य निरंतर प्रगतिमान है। देवेन्द्र सत्यार्थी ने लोक संस्कृति एवं लोकगीतों की पृष्ठभूमि को लेकर विभिन्न विषयों पर अनुभूतिपूर्ण निबंध लिखे हैं। ये निबंध "एकयुग"; "एकप्रतीक" "रेखाएँ बोल उठी" "क्या गोरी क्या सॉवरी" कला के हस्ताक्षर आदि में संगृहीत हैं। हिन्दी में "इन्टर्व्यू"-शैली में भी निबंध लिखे गए हैं। इन निबंधों को प्रारंभ करने का श्रेय डॉ. पद्मसिंह शर्मा "कमलेश" को है। इनके निबंध में "इनसे मिला" (दो भाग) में संगृहीत है। इसमें इन्होंने विभिन्न साहित्यकारों के इन्टर्व्यू के आधार पर उनके व्यक्तित्व, दर्शन एवं साहित्य-सर्जन के विभिन्न पक्षों को कलात्मक शैली में प्रस्तुत किया है।

हिन्दी निबंध साहित्य का समुचित विकास होने पर भी उस के और विकसित होने की आवश्यकता है। आज निबंधकार किसी विचारधारा से प्रभावित होकर उसी के सिद्धांतों के प्रतिपादन हेतु निबंध लिखते जा रहे हैं। विषय का निष्पक्ष मूल्यांकन नहीं हो पाता। उसमें वैयक्तिकता का तत्व भी क्रमशः न्यून होता जा रहा है। निबंधों के विषय साहित्य के कठघरे में बंद हैं। राजनीतिक एवं सामाजिक विषयों से संबंधित निबंधों का भी अभाव ही है। आशा है आगे आनेवाले विद्वान विचारक निबंधों की कमी को दूर कर उसे पूर्णता प्रदान करेंगे।

BRAOU

6.4 सारांश एवं मूल्यांकन

निबंध गद्य की कसौटी है। विषयानुकूल भाषा में गंभीर विचारों का अभिव्यक्तिकरण ही निबंध है। अत एवं इसे संस्कृत के निबन्ध का रूपान्तर माना जा सकता है।

आधुनिक अर्थ में निबंध अंग्रेजी के "ऐसे" के पर्यायवाची है। आधुनिक काल में गद्य-साहित्य का विकास हुआ। इसमें निबंध साहित्य का महत्वपूर्ण स्थान है। गद्य के विकास के साथ ही साथ निबंधों का भी विकास हुआ। इस विकास क्रम में निबंध साहित्य भी भारतेन्दु युग, द्विवेदी युग एवं शुक्ल युग से होता हुआ आधुनिक युग तक आया है। इस विकासक्रम में निबंधों में विषय, शैली, भाषा एवं अभिव्यक्ति की क्षमता के आधार पर अत्यंत विविधता है। भारतेन्दु युग प्रयास का युग है। द्विवेदी युग विकास का युग है। शुक्ल युग में विचारों का गांभीर्य है तो आधुनिक युग में विषय की विविधता है। विषय एवं शैलीगत विविधता के कारण निबंध साहित्य में विश्रृंखलता आई है। विचारों में गंभीरता भी कम है। इसे देखते हुए किसी विद्वान ने कहा हैः-

हिन्दी निबंध-साहित्य ने थोडे से समय में पर्याप्त उन्नति कर ली है। भारतेन्दु युग से लेकर अब तक निबंध साहित्य में क्रमशः प्रौढ़ता आती रही है, किन्तु फिर भी नवीनतम निबंध साहित्य में कुछ दूषित प्रवृत्तियों का भी विकास हो रहा है। एक तो अपने ज्ञान की धाक जमाने के लिए कुछ निबंधकार पाश्चात्य लेखकों से उधार लिये हुए विचारों को बिनासमझे ही उगलते जा रहे है, जिससे उनकी भाषा में न तो प्रवाह मिलता है और न ही कलाका सौन्दर्य। दूसरे, हमारे निबंधों में वैयक्तिकता का तत्व न्यून होता जा रहा है। तीसरे, हमारा दृष्टिकोण साहित्य की समस्याओं तक ही सीमित है। क्या हम राजनीतिक एवं सामाजिक समस्याओं को निबंध का विषय नहीं बना सकते हैं जैसा कि भारतेन्दु युग में हुआ था? चौथा, हमारे निबंधों में सहज प्रफुलता, ताजगी, रोचकता एवं व्यंग्यात्मकता का हास होता जा रहा हैं।"

यह वक्तव्य निबंध-लेखन की आधुनिक प्रवृत्ति पर प्रकाश डालता है। निबंध हमारे विचारों की अभिव्यक्ति के सशक्त माध्यम है। अतः हमें उसमें विचारों की गंभीरता की ओर अवश्य ध्यान देना होगा।

6.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

6.6.1 'अ' श्रेणी के प्रश्न

निम्न लिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 250 शब्दों में उत्तर दीजिएः

1. भारतेन्दु युग के निबंध-साहित्य की विशेषताएँ बताइए।
2. भारतेन्दु युग के निबंध-साहित्य का मूल्यांकन कीजिए।
3. द्विवेदी युग के निबंध-साहित्य की विशेषताएँ स्पष्ट कीजिए।
4. हिन्दी में शुक्लोत्तर युग के निबंध-साहित्य का परिचय दीजिए।

6.6.2 'ब' श्रेणी के प्रश्न

निम्न लिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 125 शब्दों में उत्तर दीजिएः

1. भारतेन्दु-युग के पूर्व निबंध-साहित्य न होने के क्या कारण हैं?
2. निबंधकार बालकृष्ण भट्ट की विशेषताओं का निरूपण कीजिए?
3. द्विवेदी युग के निबंध-साहित्य का मूल्यांकन कीजिए।

BRAOU

6.7 नमूने के उत्तर

6.7.1 'अ' श्रेणी के प्रश्नोत्तर

प्रश्नः हिन्दी में शुक्लोत्तर युग के निबंध साहित्य का परिचय दीजिए।
उत्तरः हिन्दी में निबंध-साहित्य का प्रारंभ भारतेन्दु युग से ही हो गया था। भारतेन्दु युग, द्विवेदी युग एवं शुक्ल युग में गद्य साहित्य के विकास के साथ साथ निबंध साहित्य का भी विकास हुआ। आधुनिक युग में हमारे साहित्य पर पाश्चात्य विचारधारा का प्रभाव पड़ा जिसका प्रभाव निबंध साहित्य पर भी दृष्टिगोचर होता है। विषय की दृष्टि से इस युग के निबंधों में विविधता पाई जाती है। इस दृष्टि से प्रस्तुत युग के निबंध लेखकों को विभिन्न वर्गों में बाँटा जा सकता है। जैसे

शुक्ल परंपरा के डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी, डॉ. नंददुलारे बाजपेयी आदि।

आलोचनात्मक - डॉ. नगेन्द्र, आचार्य नंद दुलारे बाजपेयी, पंत, प्रसाद, महादेवी, निराला आदि।
भावात्मक वर्ग - रामकृष्ण दास वियोगी हरि, माखनलाला चतुर्वेदी आदि।

मार्क्सवादी वर्ग	=	मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित लेखक डॉ. रामविलास शर्मा, डॉ. शिवदान सिंह चौहान, डॉ. रागेयराघव आदि।
यात्रा संबंधी निबंध	=	पं. राहुल सास्कृत्यायन, सत्यदेव, शिवशंकर भारती आदि।
नैतिक सांस्कृतिक निबंध लेखक	=	कन्हैयालाल मिश्र, प्रभाकर माचवे का नाम उल्लेखनीय है।

हास्य-व्यंग्य संबंधी लेखकों में श्री बेढब बनारसी, डॉ. बरसानेलाल चतुर्वेदी, गोपाल प्रसाद व्यास, प्रभाकर, हरिशंकर परसाई मोहन राकेश आदि।

दार्शनिक वर्ग में बाबू गुलाबराय, डां. रामानंद तिवारी, डॉ. रामचरण महेन्द्र, तथा डॉ. संपूर्णानंद आदि।

संस्मरण संबंधी निबंध लेखकों में बनारसीदास चतुर्वेदी, बाबू गुलाबराय एवं श्रीमती महादेवी वर्मा का नाम विशेष उल्लेखनीय है।

इन विषयों के अतिरिक्त शिकार संबंधी निबंध, दैनिक एवं मनोविज्ञान से संबंधित निबंध; लोक संस्कृति एवं लोक-गीतों पर आधारित निबंध तथा इंटरव्यू या विद्वान लेखकों से साक्षात्कार के आधार पर भी निबंध लिखे गए।

आधुनिक युग में विषय की विविधता के साथ विशृंखलता भी आई है। लेखकों की वैयक्तिकता समाप्त हो गई है। वे विभिन्न सिद्धांतों के पोषक बनाकर रह गए हैं। निबंध हमारे विचारों को अभिव्यक्ति करनेवाले प्रधान साधन हैं अतः हमें निबंधों में भाव-गांभीर्य तथा स्व-विवेचन एवं मूल्यांकन क्षमता पर ध्यान देना होगा। हिन्दी में राजनीति या समाज से संबंधित निबंधों का अभाव है। निबंधों के विषय साहित्यिक ही नहीं अपितु सामाजिक होना चाहिए।

6.8 पठनीय पुस्तकें

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
2. हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास : डॉ. गणपति चंद्र गुप्त
3. प्रतिनिधि हिन्दी निबंध कार : विभूराम मिश्र

BRAOU

इकाई-7: हिन्दी उपन्यास साहित्यः प्रवृत्तिमूलक ऐतिहासिक विश्लेषण

7.0 विषय प्रवेश
7.1 पाठ का उद्देश्य
7.2 पाठ परिचय
7.3 मूल पाठ
  7.3.1 उपन्यास की परिभाषा
  7.3.2 उपन्यास के तत्व
  7.3.3 उपन्यास के प्रकार
  7.3.4 हिन्दी उपन्यासों का प्रवृत्यात्मक विकास
  7.3.5 मूल्यांकन
7.4 पाठ का सारांश
7.5 पारिभाषिक शब्द-अर्थ
7.6 अभ्यासार्थ प्रश्न
  7.6.1 'अ' श्रेणी के प्रश्न
  7.6.2 'ब' श्रेणी के प्रश्न
7.7 नमूने के प्रश्नोत्तर
  7.7.1 'अ' श्रेणी के प्रश्नोत्तर
  7.7.2 'ब' श्रेणी के प्रश्नोत्तर
7.8 पारिभाषिक शब्द-अर्थ

7.0 विषय प्रवेश

भारत में औद्योगिक सभ्यता और वैज्ञानिक आविष्कारों के प्रचलन से जिस आधुनिक चेतना का आरम्भ हुआ उनका प्रमुख क्षेत्र रहा गद्य। मुद्रण-प्रकाशन व्यवस्था की सुविधा और नई बौद्धिकता की अभिव्यक्ति के लिए आधुनिक काल के आरम्भ में हिन्दी ही नहीं, लगभग सभी भारतीय भाषाओं में गद्य की विभिन्न विधाओं का अभूतपूर्व विकास हुआ। 'उपन्यास' एक प्रमुख गद्य विधा है।

7.1 पाठ का उद्देश्य

प्रस्तुत पाठ का उद्देश्य है हिन्दी में उपन्यास विधा के विकास का परिचय देना, इस पाठ के अध्ययन से आप जान सकेंगे कि-

- उपन्यास की संरचना और आधुनिक युग के यथार्थ का संबंध क्या है।
- हिन्दी के समानान्तर अन्य भारतीय भाषाओं में भी उपन्यास का विकास एक ही सी प्रवृत्तियों के साथ हुआ।
- उपन्यास एक निरन्तर विकासशील विधा रही है और हिन्दी में तो यह नए प्रयोगों, नई क्षमताओं और नए विचारों का क्षेत्र रहा है। इस लिए हिन्दी उपन्यास अपने लगभग सौ वर्षों के जीवन में बहुत अधिक परिवर्तनों से गुज़र चुका है।

BRAOU

7.2 पाठ परिचय

उपन्यास आज का सर्वाधिक लोकप्रिय और विकासशील साहित्यिक रूप है। आधुनिक जीवन के यथार्थ से इसका सीधा सम्बन्ध है। हिन्दी अपन्यास अपने आरंभ से लेकर आजतक के लगभग सौ वर्षों की यात्रा मेंअनेक प्रकृतियों, प्रयोगों और परम्पराओं का परिचय दे चुका है। प्रस्तुत पाठ में उपन्यास के तत्वों व प्रकारों की चर्चा करते हुए हिन्दी उपन्यास के अद्यतन विकास का परिचय दिया गया है। इस परिचय में युगीन परिस्थितियों के अनुसार उपन्यास की प्रवृत्तियों में आये बदलाव को भी रेखांकित किया गया है।

7.3 मूलपाठ

7.3.1 उपन्यस की परिभाषा

उपन्यास आधुनिक युग की सर्वाधिक लोकप्रिय साहित्यिक विधा है। व्युत्पत्तिपरक अर्थ की दृष्टि से यह दो शब्दों से मिलकर बना है- 'उप' अर्थात समीप, 'न्यास' अर्थात् थाती या धरोहर, अर्थात वह वस्तु जो पास रखी है, अर्थात वह रचना जिसमें मनुष्य को अपना चतुर्दिक जीवन, अपना सुखदुख प्रतिबिम्बित दिखाई दे। एक साहित्यिक विधा के रूप में उपन्यास इस शर्त को पूरा करता है। उपन्यास आज के युग की सर्वाधिक लचीली विधा है। इसमें जीवन का यथार्थ लेखक की कल्पना का सहरा लेकर लघु से लघुत्तम और बृहद से बृहत्तम रूप धारण कर सकता है। चाहे वह, अंग्रेज़ लेखिका जेन्स ऑस्टिन का 'अहंकार और पूर्वग्रह' (प्राइंड एण्ड प्रिज्युडिस) जैसा सुसंगठित कथानक हो या जन्म ज्वायस के चेतना-प्रवाह-शैली में लिखा गया 'युलिसिस' हो- सभी 'उपन्यास' ही के अन्तर्गत आते हैं। हिन्दी के संदर्भ में 'झूठा सच' (यशपाल) जैसा देश-विभाजन की त्रासदीपर आधारित विस्तृत विचारात्मक और यथार्थपरक कथानक हो या धर्मवीर भारती का 'गुनाहों का देवता' जैसी प्रेम कहानी हो- सभी 'उपन्यास' ही है। तात्पर्य यह कि उपन्यास मानव-जीवन के यथार्थ को किसी न किसी रूप में, शैली में, और किसी न किसी कोण से प्रकट करता है। सच पूछा जाए तो उपन्यास आज के जीवन में वही भूमिका निभाता है जो मध्यकाल में महाकाव्य की थी, अर्थात् मानव-जीवन के अनुभवों, आदर्शों, मूल्यों और आकाँक्षाओं को अभिव्यक्त करना। आज के बदले हुए जीवन-यथार्थ में उपन्यास इस बदले हुए कोण से भी प्रकट करता है। अर्थात् जहाँ महाकाव्य में मध्य युग की सामंती व्यवस्था के अनुसार समष्टि को प्रधानता दी जाती थी, व्यक्ति की जगह समाज, वंश, कुल, जाति जैसी समष्टिपरक संस्थाएँ प्रधान थी, आदर्श का महत्व अधिक था,- वहाँ उपन्यास आज के वर्ग-विभक्त समाज में रह रहे व्यक्ति की विभक्त चेतना का यथार्थ प्रस्तुत करता है। इसलिए उपन्यास का नायक कोई उच्च वंशीय नहीं, कोई मध्य वर्गीय क्लर्क या निम्न वर्गीय मजदूर ही सकता है। प्रेमचन्द के 'गोदान' में किसान होरी नायक है, तो, फणीश्वरनाथ रेणु के 'मैला आँचल' में समूचा गाँव ही नायक बनबैठा है। अर्थात उपन्यास का स्वरूप, क्षेत्र और शैली बहुत व्यापक, लचीला और विविध है। इसी कारण उपन्यास को 'आधुनिक युग का महाकाव्य' कहा गया है। यह मनोरंजन करता है, आनंद प्रदान करता है, और हमारे संकुचित अनुभव से ऊपर उठाकर हमें व्यापक जीवन का साक्षात्कार भी करता है।

अंग्रेजी में उपन्यास को 'नांवेल' कहा जाता है। 'न्यू इंग्लिश डिक्शनरी' में 'नॉवेल' की परिभाषा इस प्रकार दी गई है- 'बृहत आकार गद्य आख्यान-या वृत्तान्त जिसके अन्तर्गत वास्तविक जीवन के प्रतिनिधित्व का दावा करनेवाले पात्रों और कार्यों को कथानक में चित्रित किया जाता है।" भारतीय भाषाओं में उपन्यास के लिए अलग-अलग पर्याय प्रचलित हैं, जैसे, गुजराती में, 'नवलकथा', तेलुगु में 'नवल', मराठी में 'कादम्बरी', बंगला और हिन्दी में 'उपन्यास'। स्पष्ट है कि 'नॉवेल' ही को विभिन्न रूपों में भारतीय भाषाओं में अपनाया गया। हिन्दी में उपन्यास की परिभाषाएँ तो अनेक है। इन्हे सार-रूप में रखा जाए तो इस प्रकार होगा- गद्य साहित्य का वह रूप जिसका आधार कथा है, और जो मनुष्यों की, मनुष्यों से इतर प्रकृति की, कथा को कल्पना के आधार पर कौतूहल और रागात्मकता के सहारे प्रस्तुत करता है। यहाँ प्रेमचन्द का मंतव्य देना आवश्यक है जिसमें उन्होंने उपन्यास का उद्देश्य, प्रकृति और

BPAOU

स्वरूप स्पष्ट किया है। उनके शब्दों में "मैं उपन्यास को मानव-जीवन का चित्र-मात्र समझता हूँ। मानव-चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्व है।"

स्वपरीक्षणार्थ प्रश्न :-

(1) उपन्यास का व्युत्पत्तिपरक अर्थ बतलाइए।
(2) उपन्यास को 'आधुनिक युग का महाकाव्य' क्यों कहा जाता है?
(3) उपन्यास और महकाव्य में क्या अंतर है?
(4) प्रेमचन्द के अनुसार उपन्यास क्या है?

7.3.2 उपन्यास के तत्व

उपन्यास चाहे सीमित आकर का हो, या बृहद् चाहे कुछ पात्रों को लेकर चलता या अनेक पात्रों को, चाहे इसमें वर्तमान जीवन की कथा हो या किसी सुदूर अतीत की- उपन्यास की संरचना में एक तारतम्य, कारण-कार्य की एक श्रृंखला अवश्य होगी। कौतूहल को बनाए रखते हुए विविध चरित्रों, घटनाओं और स्थितियों का चित्रण उपन्यास का मुख्य कार्य है। एक वाक्य में कहा जाए तो 'उपन्यास वास्तविक जीवन की काल्पनिक कथा है।" इसलिए कथा-कहानी की तरह उपन्यास के भी छः तत्व हैं- कथावस्तु, पात्र, संवाद, देशकाल, शैली और उद्देश्य। इनमें प्रमुख है कथावस्तु। सम्पूर्ण उपन्यास की कहानी जिन उपकरणों से मिलकर बनती हैं वे 'कथावस्तु' के अन्तर्गत आते हैं। ये उपकरण हैं- कथासूत्र (थीम), मुख्य कथानक (प्लॉट) प्रासंगिक कथाएँ या अन्तर्कताएँ (एपीसोड), उपकथानक (अण्डर प्लॉट), पत्र, समाचार, प्रामाणिक लेख (डॉक्यूमेण्ट्स), डायरी के पृष्ठ आदि. इन सबको मिलाकर, या आवश्यकतानुसार इनकी सहयता से उपन्यासकार अपनी कथावस्तु बनाता है। उपन्यास जिस प्रमुख विचार, दृष्टि कोण, कार्य या विषय को लेकर चलता है, उसे कथासूत्र या थीम कहते हैं। विषय के अनुसार उपन्यस में एक से अधिक कथाएँ होती हैं जिनमें से एक प्रमुख होतीहै, आदि से अन्त तक चलती है और नायक-नायिका से संबन्धित होती है। इसे मुख्य कथानक-कहा जाता है (नाटक में यही अधिकारिक कथा कहलाती है)। उससे अलग प्रसंग 'प्रासंगिक कथाएँ' कहालाती है किसी उपन्यास में मुख्य कथा के साथ कथासूत्र स्पष्ट करने के लिए एक और कथा होती है, इसे उपकथानक (अंडरप्लॉट) कहा जाता है। उपन्यासकार रोचकता और प्रामाणिकता लाने के लिए सरकारी लेख, शिलालेख, वसीयतनामा, महत्वपूर्ण समाचार, न्यायालय का निर्णय या किसी की व्यक्तिगत डायरी का महत्वपूर्ण अंश उद्धृत कर सकता है।

BRAOU

उपन्यास का दूसरा प्रमुख तत्व है पात्र और उनका चरित्र-चित्रण। यह इतना महत्वपूर्ण तत्व है कि अधिकाँश उपन्यास ऐतिहासिक राजनीतिक या सामाजिक चरित्रों को केन्द्र बनाकर ही लिखे गए हैं। उपन्यास के पात्रों की गतिविधियों से ही तो कथा आगे बढ़ती है। अतः पात्र जितने सजीव होंगे और यथार्थ होंगे, उतना ही वे पाठक को अपने आत्मीय और विश्वस्त लगेंगे। इसके लिए उपन्यासकार के लिए कल्पना शक्ति, जीवन-यथार्थ के सूक्ष्म और गहरे ज्ञान, मानव-मन की विभिन्न अनुभूतियों का बोध और उनके चित्रण की क्षमता का होना आवश्यक है। उपन्यास के अच्छे-बुरे दोनों वर्गों के पात्र केवल उसी उपन्यास तक सीमित नहीं होते बल्कि वे समाज के विभिन्न वर्गों का प्रतिनिधित्व करते हैं और जीवन के सद-असद पक्ष को प्रस्तुत करते हैं। महान उपन्यासकार अपने पात्रों को देश और काल की सीमा के अनुकूल रखते हुए भी सार्वकालिक और सार्वजनिक बना देते हैं। जैसे टॉलस्टॉय की 'अन्नाकेरेनिना' की 'अन्ना', गोर्की की 'मदर' की माँ, और प्रेमचन्द की गोदान का 'हीरो' इसी तरह के अमर चरित्र हैं।

कथावस्तु और चरित्र-चित्रण को निभाने के लिए तीसरा मुख्य तत्व है संवाद या कथोपकथन। संवादों से कथावस्तु का विकास होता है, पात्रों का चरित्र प्रकट होता हैऔर गतिशीलता आती है। संवादों में स्वाभाविकता,, नाटकीयता, प्रसंग-व-चरित्र के अनुरूप भाषा और प्रभावोत्पदकता होनी चाहिए।

उपन्यास का चौथा प्रमुख तत्व है देशकाल अर्थात वातावरण। उपन्यास की कथा जिस जीवन प्रसंग से उठाई गई है, उसके पात्र जिस देश-काल और परिवेश में रहते हैं उसका यथार्थ चित्रण किए

बिना उपन्यास विश्वसनीय नहीं हो सकता। कुछ उपन्यासों में देशकाल या वातावरण इतना अधिक-सजीव, यथार्थ और ठोस होता है कि वही उपन्यास का नायक बन बैठता है। उदाहरण के लिए 'मैला आँचल' में वातावरण ही प्रमुख है और उसके बाद चली हिन्दी उपन्यासों की 'आँचलिक' धारा में तो स्थानीय वातावरण के चित्रण पर ही बल दिया गया।

"पाँचवाँ प्रमुख तत्व है- शैली। इसके अन्तर्गत उपन्यास की संरचना और भाषा-प्रयोग आते हैं। उपन्यासकार किस प्रकार से कथावस्तु को आगे बढ़ाता है, कैसे अपनी जीवन दृष्टि को अभिव्यक्त करता है, पात्रों को अपनी निर्दिष्ट दिशा में किस तरह ले चलता है, और आवश्यकतानुसार भाषा का किस तरह प्रयोग करता है- इन सब बातों पर समग्र विचार 'शैली' के अन्तर्गत किया जाता है। हर उपन्यासकार की अपनी शैली होती है। सच देखा जाए तो उपन्यासकार अपनी शैली से ही पहचाना जाता है। फिर भी कहा जा सकता है कि उपन्यासों में मुख्यतः अभिनयात्मक, व्याख्यात्मक, सूत्रात्मक, चित्रात्मक, वर्णनात्मक और प्रतीकात्मक आदि शैलियों का प्रयोग होता है।

अन्तिम महत्वपूर्ण तत्व है उद्देश्य। वास्तव में यह सम्पूर्ण उपन्यास की दिशा-निर्धारित करने वाला तत्व है। उपन्यासकार की जीवन-दृष्टि, उसके नैतिकमूल्यों, अनुभवों और ज्ञान से इस तत्व का निर्माण होता है और यही उपन्यास को अंतिम परिणति तक पहुंचाता है। उदाहरण के लिए हिन्दी उपन्यासों के क्षेत्र में प्रेमचन्द के आगमन से पूर्व जिन तिलिस्मी और जासूसी उपन्यासों की रचना हो रही थी, उनका उद्देश्य केवल मनोरंजन प्रदान करना था। लेकिन, प्रेमचन्द ने अपने उपन्यास-लेखन का उद्देश्य "मानव-चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना" घोषित किया। प्रेमचन्द के सारे उपन्यास इसी उद्देश्य से लिखे गए, और इससे हिन्दी-उपन्यास लेखन को ही एक नई दिशा मिली। वैसे, कलात्मक दृष्टि से सफल उपन्यास वह माना जाता है जिसमें खुलकर कोई नैतिक या सैद्धान्तिक उपदेश न दिया जाए, बल्कि उपन्यास की कथा-स्थितियों के द्वारा ही प्रतिपादित किया जाए। उदाहरण के लिए प्रेमचन्द के अन्य उपन्यासों की तुलना में 'गोदान', के उद्देश्य की कलात्मक अभिव्यक्ति देखिए जिसमें प्रेमचन्द ने जीवनभर संघर्ष करने के बाद भी होरी की मृत्यु दिखाकर यह बताया है कि उस समय की सामंती-पूंजीवादी शोषण-व्यवस्था में किसान की क्या परिणति हो रही थी।

BRAOU

स्वपरीक्षणार्थ प्रश्न :-

(1) उपन्यास के प्रमुख तत्व कौन-कौन से हैं?
(2) 'कथावस्तु' में कौन-कौन सी बातें सम्मिलित होती है?
(3) 'पात्र और चरित्रचित्रण' उपन्यास में क्यों महत्वपूर्ण हैं?
(4) देशकाल से क्या तात्पर्य है? हिन्दी में वे कौन से उपन्यास हैं जिनमें इसका महत्व केन्द्रीय होता है?
(5) उपन्यास की भाषा-शैली से क्या तात्पर्य है?
(6) 'उद्देश्य' उपन्यास की रचना को किस तरह प्रभावित करता है?

7.3.3 उपन्यास के प्रकार

उपन्यास ने अपने आरम्भ से लेकर आज तक अनेक रूप धारण किए हैं, विषय-वस्तु, रचना विधान और उद्देश्य की दृष्टि से हिन्दी उपन्यासों में इतनी विविधता पाई जाती है कि इनको परिगणित करना कठिन है। फिर भी, विषय-वस्तु की दृष्टि से उपन्यास के प्रकार हैं- तिलिस्मी और जासूसी, मनो वैज्ञानिक, सामाजिक, यथार्थवादी, ऐतिहासिक, आँचलिक, प्रकृतवादी, राजनैतिक आदि। इन उपन्यासों के उद्धेश्य के अनुरूप ही विषयवस्तु का चयन किया गया। जैसे, हिन्दी उपन्यासों के आरम्भिक काल में उपन्यास केवल मनोरंजन की दृष्टि से लिखे जाते थे, जिन्हें 'तिलिस्मी और जासूसी उपन्यास' के अन्तर्गत रखाजाता है। इसके बाद प्रेमचन्द के सामाजिक उद्देश्य प्रधान उपन्यासों की प्रमुखता रही। जिन उपन्यासों में मनोविश्लेषण को प्रमुखता दी गई वे मनोवैज्ञानिक, एतिहासिक आधार पर लिखे गए ऐतिहासिक और राजनैतिक संदर्भ-प्रधान उपन्यास राजनैतिक प्रकार के अंतर्गत आते हैं। शैली-की दृष्टि से उपन्यासों के प्रकार हैं वर्णनात्मक, संवादात्मक, आत्मकथात्मक, पत्र-शैली और डायरी-शैली। वर्णनात्मक शैली के उपन्यास सर्वाधिक प्राप्त होते हैं जिनमें उपन्यासकार

कथा कहता है। संवादात्मक उपन्यास संवादों को आधार बना कर लिखा जाता है। आत्मकथात्मक उपन्यास उत्तम पुरुष या 'मैं' शैली में लिखा जाता है। इसी प्रकार पत्रों और डायरी के माध्यम से बढ़ने वाले उपन्यास शेष दो प्रकारों के अन्तर्गत आते हैं। हिन्दी में सर्वाधिक उपन्यास वर्णनात्मक हैं। विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक की 'माँ' संवादात्मक शैली में है। जैनेन्द्र, इलाचन्द्र जोशी आदि के अधिकाँश उपन्यास आत्मकथात्मक शैली के हैं। पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' का उपन्यास 'चन्द हसीनों के ख़तूत' पत्र-शैली का उदाहरण है, तो, डॉ. देवराज का उपन्यास 'अजय की डायरी' में डायरी-शैली का सर्वोत्कृष्ट प्रयोग है। वैसे, एक से अधिक शैलियों का भी प्रयोग उपन्यासों में हो सकता है, जैसे अज्ञेय के 'नदी के द्वीप', और 'शेखर-एक जीवनी' उपन्यासों में वर्णनात्मक, आत्मकथात्मक, पत्र और डायरी-शैली का मिला-जुला प्रयोग मिलता है।

स्वपरीक्षणार्थ प्रश्न :-

(1) उपन्यासों को किन आधारों पर वर्गीकृत किया गया है?
(2) उद्देश्य की दृष्टि से उपन्यास-लेखन में कैसे विविधता आती है?
(3) आत्मकथात्मक उपन्यासों की विशेषता क्या है?
(4) पत्र और डायरी शैली में लिखे गए उपन्यासों के उदाहरण बतलाइए।

7.3.4 हिन्दी उपन्यासों का प्रवृत्यात्मक विकास

उपन्यास एक आधुनिक विधा है और हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में इसका प्रवेश पश्चिमी साहित्य से सम्पर्क के कारण ही हुआ। वैसे भारत में कथा-कहानी की परम्परा प्राचीन है और संस्कृत कथासाहित्य इस दृष्टि से बहुत समृद्ध रहा, लेकिन, अपने आधुनिक रूप में उपन्यास का विकास हिन्दी में और बंगाली, मराठी, तेलुगु आदि भाषाओं में भी उन्नीसवीं शती के अन्तिम चरण ही में हुआ। हिन्दी में बंगला उपन्यासों के अनुवाद और अनुकरण के द्वारा उपन्यास-लेखन आरम्भ हुआ। आरम्भ में केवल मनोरंजन-प्रधान उपन्यास लिखे गए, लेकिन इस क्षेत्र में प्रेम चन्द जैसे युग प्रवर्तक व्यक्तित्व के प्रवेश से उपन्यास-रचना का उद्देश्य ही बदल गया। अब यथार्थवादी और सामाजिक उद्देश्य-प्रधान उपन्यासों की रचना होने लगी। प्रेमचन्द के बाद तो हिन्दी उपन्यासों में विकास की नई-नई दिशायें खुल गई। हिन्दी उपन्यासों की इस विभिन्न प्रवृत्तियों और आजतक के विकास को समझने के लिए निम्न लिखित उपशीर्षकों में बाँटकर देखना सुविधाजनक होगा-

BRAOU

आरम्भिक युग

हिन्दी उपन्यस भारत में आधुनिकता के प्रवेश और आधुनिक काल के आरम्भ के साथ जुड़ा हुआ है। भारत में आधुनिक काल विज्ञाने, औद्योगिकता और राष्ट्रीय चेतना के प्रसार के साथ शुरु हुआ चूँकि उपन्यास समसामयिक जीवन के यथार्थ को चित्रित करने वाली विधा है, इसीलए हिन्दी उपन्यासों के आरम्भ की सामाजिक-राजनैतिक परिस्थितियों की संक्षिप्त चर्चा आवश्यक है-

अंग्रेज भारत में व्यापारी बनकर आए थे, किन्तु परिस्थितियाँ अनुकूल देखकर शासक बन बैठे। अंग्रेजों की शोषणामूलक नीति के सबसे पहले शिकार हुए भारत के गाँव, जहाँ ज़मीन्दारी प्रथा, हर स्थिति में लगान नकद रूपयों में वसूल करने की नीति, कुटीर-उद्योगों के विनाश, पंचायतों को समाप्त कर अदालतों की स्थापना आदि के कारण धीरे-धीरे भारतीय किसान दरिद्रता के अंतहीन जाल में फंसते चले गए। नगरों के विकास और कारखानों के खुलने से औद्योगिक मजदूर वर्ग निर्मित हुआ। इन आर्थिक परिवर्तनों के साथ-साथ सामाजिक परिवर्तन भी होने लगे। नई शिक्षा-व्यवस्था, रेल-मार्गों के प्रचलन के कारण उत्पन्न हुई भौगोलिक एकता, औद्योगिकता और नगरों के विकास के कारण जाति-प्रथा पर असर पड़ा। अब लोग-अपनी ही जाति के व्यवसाय से बंधे हुए नहीं रहे। सामाजिक नवजागरण के आन्दोलनों ने हिन्दू और मुसलमान जनता में रूढ़िवादिता, कट्टरता और अशिक्षा आदि को नष्ट करना आरम्भ किया। राजा राममोहन राय, स्वामी विवेकानन्द, दयानन्द सरस्वती, लोकमान्य तिलक, श्रीमती एनीबेसेण्ट, माहात्मा गाँधी जैसे व्यक्तित्वों और ब्रह्म समाज, आर्य समाज, अछूतोद्धार, स्त्री-शिक्षा जैसे आन्दोलनों के कारण देश में एक नई सामाजिक अथलपुथल मच गई। राष्ट्रीय स्वतंत्रता-आन्दोलन सम्पूर्ण देश को

राजनैतिक स्वाधीनता दिलाने के लिए चला। प्रकाशन-मुद्रण-व्यवस्था के कारण और नई विचारात्मकता के कारण गद्य-विधाओं का विकास हुआ। शिक्षित मध्यवर्ग का विकास हुआ। देश दो तरह से पराधीन था- एक तो विदेशी शासन के अधीन, और दूसरे अपनी ही सामाजिक कुरीतियों, अंधविश्वासों और साम्प्रदायिक कट्टरता के अधीन। इसलिए उस समय चल रहे सामाजिक नवजागरण और राष्ट्रीय स्वाधीनता-आन्दोलन का सीधा सम्बन्ध उपन्यास से जुड़ गया। उपन्यास के पाठक-वर्ग में तीन प्रकार के लोग थे- नौकरी पेशा, उच्च शिक्षित लोग, छोटे दुकानदार और व्यापारी तथा घर की चार दीवारी में बंद स्त्रियाँ। इन तीनों ही प्रकार के लोगों की रुचियों को संतुष्ट करने के लिए हिन्दी उपन्यास के इस आरम्भिक युग में तीन मुख्य उद्देश्य थे- आदर्श-स्थापन, यथार्थ चित्रण और मनोरंजन।

हिन्दी का पहला उपन्यास 'परीक्षागुरु' (1882 ई.) माना जाता है। इसके लेखक लाला श्रीनिवासदास ने सामाजिक विषय वस्तु को उठाया, जिनमें एक धनी परिवार का युवक कुसंगति में पड़ जाता है और फिर एक मित्र के उपदेश से सही राह पर आता है। इसमें भारतीय संस्कृति के आगे पाश्चात्य संस्कृति को हीन बताया गया है। इस युग में सामाजिक उपन्यासों की अधिकतर विषयवस्तु थी- बाल-विवाह, बहुविवाह और अनमेल विवाह के दुष्परिणाम, देश, जाति और समाज का नैतिक सुधार, विधवाओं की दुर्दशा, संयुक्त परिवार और स्त्री-शिक्षा का समर्थन हिन्दू धर्म का सच्चा स्वरूप और भारतीय संस्कृति की उच्चता आदि। इन पर लिखे गए उपन्यासों में प्रमुख हैं- भाग्यवती (श्रद्धाराम फुल्लौरी), नूतन ब्रह्मचारी (बालकृष्ण भट्ट), स्वतंत्र रमा:परतंत्र लक्ष्मी (मेहता लक्ष्माराम शर्मा) निस्सहाय हिन्दू (राधाकृष्ण दास) आदि।

इस काल के उपन्यासों की दूसरी धारा थी ऐतिहासिक-पौराणिक उपन्यासा की, लेकिन इनमें ऐतिहासिक यथार्थ की जगह केवल कल्पना-प्रधान पौराणिक आख्यान ही मिलते हैं। तीसरी और सबसे प्रबल धारा थी- तिलिस्मी-जासूसी उपन्यासों की, जिनका उद्देश्य-था मनोरंजन। हिन्दी भाषा और उपन्यास-विधा को लोकप्रिय बनाने में इस धारा का बहुत बड़ा योगदान रहा। 'तिलिस्म' शब्द यूनानी शब्द 'टेलिस्माने से बना है, जिसका अर्थ है जादू और अलौकिक चमत्कार। इन उपन्यासों में ऐसे नायकों की कथा होती है जो किसी न किसी राजवंश से सम्बन्ध रखते हैं, और अपने पूर्वजों द्वारा छिपाए गए धन को प्राप्त करने केलिए तिलिस्म तोड़ते हैं। इस क्रम में अनेक अलौकिक चमत्कार होते हैं शत्रुओं के षड़यंत्र तथा अनेक आश्चर्य जनक घटनाएँ होती हैं। अन्त में नायक सारी बाधाओं पर विजय प्राप्त कर धन, यश और नायिका को प्राप्त करते हैं। इन उपन्यासों में जासूस भी होते हैं जिन्हें ऐयार कहा जाता है। कुल मिलाकर ये उपन्यास बेहद रोचक होते हैं। हिन्दी में मुख्यतः बाबू देवकीनन्दन खत्री ने तिलिस्मी उपन्यासों की रचना की, और ये इतने सफल हुए कि इन्हें पढ़ने के लिए कितने ही लोगों ने हिन्दी सीखी। इन उपन्यासों में खत्रीजी ने अपने नायकों को आदर्शवादी बताया जो बुराई के विरुद्ध संघर्ष करते हैं। इनके लिखे प्रमुख उपन्यास हैं- चन्द्रकान्ता, चन्द्रकान्ता सन्तति, भूतनाथ, रोहतासमठ आदि। हिन्दी में जासूसी उपन्यासों का आरम्भ करने वाले है गोपालराम गहमरी। इनमें अलौकिक चमत्कार नहीं होता, बल्कि बुद्धि के बल पर किसी रहस्य को सुलझाया जाता है। इन उपन्यासकारों में गोपालराम गहमही के अतिरिक्त दुर्गाप्रासद खत्री, ठाकुरदत्त मिश्र, राजेश्वर प्रसाद सिंह आदि प्रमुख हैं। यद्यपि आज भी जासूसी उपन्यास लिखे जा रहे है, लेकिन इन्हें विशुद्ध साहित्य नहीं माना जाता। इसमें सन्देह नहीं कि उस समय लिखे गए इन रोचक उपन्यासों ने उपन्यास का स्वरूप-निर्माण करने का उसे लोकप्रिय बनाने में योगदान दिया।

BRAOU

स्वपरीक्षणार्थ प्रश्न :-

(1) हिन्दी उपन्यासों का आरम्भ किस प्रकार हुआ?
(2) हिन्दी का पहला उपन्यास कौन-सा है?
(3) आरम्भिक युग में सामाजिक उपन्यासों का स्वरूप कैसा था?
(4) 'तिलिस्मी' शब्द से क्या आशय है? उपन्यास की इस धारा के लिए यह नाम कहां तक सार्थक है?
(5) जासूसी और तिलिस्मी उपन्यासों में क्या अंतर है?

प्रेमचन्द युग :

हिन्दी उपन्यस-लेखन के क्षेत्र में प्रेमचन्द का प्रवेश एक युगान्तकारी घटना थी। प्रेमचन्द ने उपन्यास को जीवन के यथार्थ से जोड़ा, और घोषणा की कि "मैं उपन्यास को मानव-चरित्र का चित्र-मात्र समझता हूँ। मानव-चरित्र पर प्रकाश डालने और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूलतत्व है।" प्रेमचन्द ने हिन्दी उपन्यास-लेखन को एक नया उद्देश्य नई दिशा और नई गति दी। इसी कारण लगभग 1905 से 1936 तक का समय प्रेमचन्द-युग के नाम से याद किया जाता है। प्रेमचन्द ने पहले से चली आती सामाजिक उपन्यासों की धारा को आगे बढ़या और उसे इतना सबल बनाया कि उसके बाद से तो हिन्दी उपन्यासों की वही मुख्य धारा बन गई। प्रेमचन्द ने उपन्यासों को मानव-चरित्र का ही नहीं, समकालीन जीवन-यथार्थ का प्रतिबिम्ब बनाया। प्रेमचन्द का समय देश के जीवन में बहुत अधिक उथल-पुथल का समय था। शोषण के तले दबकर भारतीय निम्न वर्ग की दशा बहुत दयनीय हो चली थी। शिक्षित मध्य-वर्ग में राष्ट्रीय जागरण एक ओर उग्रवादी और दूसरी ओर अहिंसक आन्दोलन के रूप में उभर रहा था। प्रेमचन्द पहले 'नवाबराय' नाम से उर्दू में लिखा करते थे। हिन्दी में उनका पहला उपन्यास 'सैवासदन' सन् 1918 में प्रकाशित हुआ, जिसमें 'वेश्या-समस्या' का यथार्थ चित्रण है और एक आदर्श समाधान भी प्रस्तुत किया गया है। 'प्रेमाश्रय' में ग्रामीण जीवन में किसानों और जमींदारों के संघर्ष को विषय बनाया गया है। 'रंगभूमि' में बढ़ती हुई पूंजीवादी सभ्यता, गाँवों पर उसके प्रभाव और उसके खिलाफ संघर्ष का चित्रण हुआ है। 'गबन' और 'निर्मला' मध्यवर्गीय जीवन की पृष्ठभूमि पर लिखे गए हैं। 'निर्मला' तो दहेज-प्रथा और अनमेल-विवाह की शिकार भारतीय कन्या की यातना को साकार कर देती है। 'कर्म भूमि' में तत्कालीन राजनीतिक-आन्दोलन का चित्रण है। प्रेमचन्द की कीर्ति को अमर बनाने वाला उपन्यास है 'गोदान' जिसमें पहली बार भारत के किसान को नायक बनाया गया है। जमीन्दार और महाजन के शोषण का शिकार बनकर होरी अंत में प्राण त्याग देता है। वास्तव में 'गोदान' की कथा भारतीय किसानों पर सामंती और पूंजीवादी व्यवस्था के मिले जुले दबाव, अत्याचार और शोषण की कथा है। प्रेमचन्द का दृष्टिकोण आदर्शवाद और यथार्थवाद के मिले-जुले तत्वों से बना है, लेकिन 'गोदान' तक पहुंचते-पहुँचते उनका दृष्टिकोण यथार्थ वादी हो गया था। इसके लिए प्रमुख कारण है भारतीय निम्न वर्ग- किसान और मजदूर का शोषित जीवन, जिसे प्रेमचन्द ने बहुत निकट से देखा और महसूस किया था। प्रेमचन्द के अतिरिक्त इस युग के प्रमुख उपन्यासकार हैं- जयशंकर प्रसाद (कंकाल, तितली), ब्रजनन्दन सहाय् (सौन्दर्योपासिक), शिवपूजन सहाय (देहाती दुनिया), पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' (चन्द हसीनों के ख़तूत, शराबी) चण्डी प्रसाद हृदयेश (मनोरमा, मंगल प्रभात), प्रतापनारायण श्रीवास्तव (विदा, विकास), वृन्दावन लाल वर्मा (गढ़ कुण्डार, विराटा की पद्मिनी, मृगनयनी) गोविन्द वल्लभ पंत (प्रतिभा, मदारी) सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' (अप्सरा, अलका, बिल्लेसुर बकरिहा) आदि।

BRAOU

प्रेमचन्दोत्तर युग (स्वतंत्रता-प्राप्ति तक):

प्रमचन्द के समय ही से हिन्दी उपन्यास-लेखन में यथार्थवादी, मनोविश्लेषणात्मक, प्रकृतवादी और ऐतिहासिक प्रवृत्तियो का आरंभ हो चुका था। प्रसाद का 'कंकाल' और पाण्डेय-बेचन शर्मा के सभी उपन्यास प्रकृतवादी प्रवृत्ति के उपन्यासों में आते हैं, अर्थात् इनमें यथार्थ का यथावत चित्रण हुआ है। प्रेमचन्द के बाद तो हिन्दी उपन्यासों की धारा अपूर्व वेग से अनेक प्रवृत्तियों को लेकर प्रवाहित होने लगी। जैनेन्द्र कुमार, इलाचन्द्र जोशी, आदि ने मनोविश्लेषण को प्रमुखता देते हुए रचना की, जिससे हिन्दी उपन्यासों की मनोवैज्ञानिक धारा का आरंभ हुआ। यूँ तो हर उपन्यासकार अपने पात्रों का मनोवैज्ञानिक चित्रण करता ही है, पर जैनेन्द्र ने अपने पात्रों के मानसिक व्यापारों पर ही अपना ध्यान केन्द्रित किया। उनके 'परख', 'सुनीता' 'त्यागपत्र', कल्याणी' आदि में मध्यवर्गीय मानसिकता, उसके अन्तर्द्वन्द्व और कुंठाओं का चित्रण हुआ है। इलाचन्द्र जोशी के उपन्यासों 'प्रेत और छाया', 'ज़हाज का पछी' आदि में फ्रायड के मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन है। इस धारा को आगे बढ़ाने में भगवती चरण वर्मा, अज्ञेय आदि हैं। ऐतिहासिक उपन्यासकारों में चतुरसेन शास्त्री, वृन्दावन लालवर्मा, यशपाल, राहुल सांकृत्यायन, रांगेय राघव, भिक्षु, आदि नाम प्रमुख हैं। वास्तव में प्रेमचन्दोत्तर और स्वतंत्रता-पूर्व के इन दस-ग्यारह वर्षों के समय को अलग से विवेचित करने की आवश्यकता इसलिए पड़ती है कि इसी समय दो विचारधाराओं का प्रभाव हिन्दी रचनाकारों और बुद्धिजीवियों पर गहरा होता दिखाई देता है। ये दो विचारधाराएँ हैं फ्रायड के मनोविज्ञान पर आधरित 'काम' को ही मूल वृत्ति मानकर चलनेवाली फ्रायडवादी विचारधारा,

और दूसरी मनुष्य के आर्थिक कार्यकलापों को ही उसके सामाजिक जीवन का आधार मानकर चलने वाली मार्क्सवादी विचारधारा। इनके परिणाम स्वरूप हिन्दी उपन्यासों में कई नई प्रवृत्तियों का आरम्भ हुआ।

स्वातंत्र्योत्तर युग :

स्वतंत्रता-प्रप्ति देश के इतिहास में युगान्तरकारी घटना भी है सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन में भी यह एक नया मोड़ है। देश के विभाजन और उससे जुड़ी अमानुषिक अत्याचारों के अनुभवों ने रचनाकारों को झकझोर दिया, और विभाजन की ही पृष्ठभूमि पर कई उपन्यास लिखे गए, जैसे यशपाल का 'झूठा सच' (दो भागों में)। प्रवृत्ति की दृष्टि से सामाजिक-यथार्थवादी उपन्यासों की धारा मुख्य होती चली गई। इसे भी दो क्षेत्रों में बांट कर देखा जा सकता है- नगर-केन्द्रित और ग्राम-केन्द्रित। नगर-केन्द्रित उपन्यासों में विशेषकर मध्यवर्गीय जीवन को विषय बनाया गया, वैसे- गर्म राख, गिरती दीवारें (उपेन्द्रनाथ अश्क), बूंद और समूह (अमृतलाल नगर), नदी के द्वीप (अज्ञेय), उखड़े हुए लोग (राजेन्द्र यादव), मुरदाघाट (जगदाम्बा प्रसाद दीक्षित) आदि। इस युग में एक नई धारा का प्रवर्तन हुआ और यह धारा ग्राम-जीवन केंद्रित थी। यह भी 'आंचलिक उपन्यासों की धारा'। प्रवर्तक थे- फणीश्वरनाथ रेणु। रेणु ने प्रेमचन्द्र ही की परम्परा को नए ढंग से उठाते हुए मिथिलांचल के एक पिछड़े, शोषितु, अनेक प्रकार के नए पुराने अनुभवों से गुज़रते एक गाँव को चुना, और उसके दैनिक जीवन के सूक्ष्मतम विवरण, उसके भौगोलिक, सांस्कृतिक और सामाजिक अनुभवों का वहीं की भाषा में ऐसा सजीव अंकन किया कि हिन्दी उपन्यासों में आंचलिक उपन्यास-लेखन की एक परम्परा ही चल पड़ी। बाद में इसे समृद्ध करने वाले नाम हैं- शिवप्रसाद सिंह, भैरव प्रसाद गुप्त, राही मासूम रज़ा, रामदरश मिश्र, विवेकीराय, श्री लाल शुक्ल आदि।

स्वातंत्र्योत्तर उपन्यासों में आजतक के लगभग 45 वर्षों की अवधि में इतनी अभूतपूर्व प्रगति हुई है, विभिन्न प्रवृत्तियों, क्षेत्रों और पीढ़ियों के लेखकों ने इतना अधिक योगदान दिया है कि सबका उल्लेख यहाँ सम्भव नहीं। इसलिए आवश्यक है कि इस काल की कुछ प्रमुख विशेषताओं की संक्षिप्त चर्चा करते हुए इस काल की प्रमुख कृतियों का नामोल्लेख किया जाए -

(1) इस युग में नई और पुरानी पीढ़ियों के लेखकों की रचनाएँ एक जैसे उत्साह, नवीन प्रयोगों और अनुभूतियों के साथ सामने आती है। जैसे यशपाल, नागार्जुन, रेणु, भगवतीचरण वर्मा, अमृतलाल नागर, चतुरसेन शास्त्री, उपेन्द्रनाथ 'अश्क' अज्ञेय, अमृतराय आदि लेखकों ने अपने लेखन में उत्तरोत्तर विकास किया और अपनी श्रेष्ठ कृतियाँ दीं, जैसे दिव्या, झूठासच (यशपाल), बलचनमा, रतिनाथ की चाची (नागार्जुन), बूँद और समृद्ध, अमृत और विष (अमृत लाल नागर), भूले-बिसरे चित्र (भगवती चरण वर्मा) 'वैशाली की नगर वधु', 'गोली', सोना और खून (चतुरसेन शास्त्री), गिरती दीवारें, गर्म राख (उपेन्द्रनाथ अश्क), शेखरः एक जीवनी (अज्ञेय) आदि।

(2) इस काल में कुछ पुरानी प्रवृत्तियों का नए सिरे से उत्थान हुआ, जैसे ऐतिहासिक उपन्यास लेखन में मार्क्सवादी दृष्टि से इदिहास का विवेचन करते हुए यशपाल ने 'दिव्या' लिखी, हजारी प्रसाद द्विवेदी ने 'बाणभट्ट की आत्मकथा', 'अनामदास का पोथा' आदि में सास्कृतिक चेतना को अभिव्यक्ति दी, नरेन्द्र कोहली ने राम कथा और महाभारत पर आधारित अपने उपन्यासों में पुरानी मान्यताओं को आधुनिक संदर्भ में प्रस्तुत किया।

(3) नई पीढ़ी के रचनाकार नयी दृष्टि लेकर आए, जैसे काशीनाथ सिंह, गिरिराज किशोर, राजेन्द्रयादव, कमलेश्वर, गोविंद मिश्र, मोहन राकेश, नरेश मेहता, पंकज बिष्ट, जगदम्बा प्रसाद दीक्षित आदि।

(4) महिला कथाकारों की बड़ी संख्या इस काल में आगे आई। यह भारत की नवजागृत्त नारी-चेतना को सूचित करता है। इनमें उल्लेखनीय उपन्यासकार हैं- शशि प्रभा शास्त्री शिवानी, मन्नु भण्डारी, कृष्णा सोबती, उषा प्रियंवदा, मृदुला गर्ग, राजी सेठ आदि।

BRAOU

(5) कथानक और शिल्प की दृष्टि से कुछ नए प्रयोग किए गए, जैसे अमृतलाल नागर ने तुलसीदास और सूरदास की जीवनी को लेकर क्रमशः 'मानस का हंस' और 'खंजन नैन' की रचना की। डॉ. देवराज ने डायरी शैली में उपन्यास लिखा 'अजय की डायरी'। अज्ञेय का 'अपने अपने अजनबी' कामू के अस्तित्ववादी दर्शन से प्रभावित है। श्री लाल शुक्ल का 'राग दरबारी' रिपोर्ताज शैली में लिखा गया उपन्यास है। महेन्द्र भल्ला के उपन्यास 'दूसरे तरफ' और 'उड़ने से पेश्तर' लंदन में रहनेवाले प्रवासी भारतीयों की समस्याओं पर प्रकाश डालता है। जगदम्बा प्रसाद दीक्षित के 'मुरदाघर' में बम्बई शहर की निम्न वर्गीय वेश्या-जीवन का उन्हीं की भाषा और संवादों में चित्रण किया गया है।

7.3.5 मूल्यांकन

हिन्दी उपन्यास की यात्रा बहुत रोमांचक और प्रशंसनीय रही है। विशुद्ध मनोरंजन के उद्देश्य से लिखे गए तिलिस्मी-जासूसी उपन्यासों से शुरु होकर यह प्रवाह आज अनेक दिशाओं में प्रवाहित हो रहा है। उपलब्धियों की दृष्टि से हिन्दी उपन्यासकारों की कुछ कृतियाँ विश्व के अन्य साहित्यकारों की कृतियों की तुलना में रखी जा सकती हैं। प्रेमचन्द की तुलना टॉलस्टॉय, लूशुन और गोर्की से की जाती है। 'मैला आंचल', झूठा सच, बूंद और समुद्र, खंजन नैन जैसी कृतियाँ हिन्दी ही नहीं, भारतीय कथा-साहित्य में 'मील का पत्थर' कही जा सकती हैं? आज हिन्दी साहित्य में उपन्यास सर्वाधिक लोकप्रिय, जीवंत, रचनात्मक और प्रयोगशील विधा है।

स्वपरीक्षणार्थ प्रश्न :-

(1) प्रेमचन्द-युग में उपन्यास-लेखन में कौन सा महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ?
(2) प्रेमचन्द ने अपने पूर्ववर्ती उपन्यासों की किस धारा को उठाया और क्यों?
(3) प्रेमचन्द के बाद स्वतंत्रता-प्राप्ति के पूर्व तक का उपन्यास-लेखन किस दृष्टि से महत्वपूर्ण है?
(4) स्वातंत्र्योतर उपन्यासों की प्रमुख प्रवृत्तियों का विवरण दीजिए।
(5) स्वतंत्र्योत्तर उपन्यास-लेखन की मुख्य विशेषताएँ बतलाइए।

BRAOU

7.4 पाठ का सारांश

उपन्यास आधुनिक युग की सर्वाधिक लोकप्रिय विधा है। आधुनिक युग के वैज्ञानिक चिन्तन, भौतिक सभ्यता, औद्योगिक-पूंजीवादी संस्कृति और यथार्थवादी चेतना के साथ ही उपन्यास का जन्म हुआ। इसलिए इसे 'आधुनिक युग का महाकाव्य' कहा गया है। मध्यकालीन सामंती व्यवस्था में महाकाव्य एक साहित्यिक विधा के रूप में उस समय के आदर्शों और मूल्यों को अभिव्यक्त कर रहा था, उसी प्रकार आधुनिक युग में उपन्यास आज के वर्ग-विभक्त समाज एक विधा के रूप में उपन्यास बहुत लचीली संरचना और व्यापक कल्पनात्मकता लिये हुए है। इसमें जीवन के यथार्थ की अभिव्यक्ति है तो मनोरंजन भी है, नैतिक मूल्यों की स्थापना है तो समाज से संघर्ष करने वाले अकेले व्यक्ति की भी कथा है।

हिन्दी उपन्यास-लेखन का आरंभ सन् 1882 में लिखे 'परीक्षा गुरु' के साथ होता है। इसके बाद प्रेमचन्द ने उपन्यास-लेखन को एक सही उद्देश्य से जोड़ा। प्रेमचन्द ही के समय से सामाजिक और यथार्थवादी उपन्यासों की धारा बलवती हुई, और आज भी मुख्य धारा यही है। उपन्यास के तत्व मुख्यतः छः हैं- कथावस्तु, पात्र, संवाद, देशकाल शैली और उद्देश्य। उपन्यासों को विषय-वस्तु, उद्देश्य और शैली की दृष्टि से कई प्रकारों में बाँटा जा सकता है। विषय वस्तु और उद्देश्य की दृष्टि से उपन्यासों के प्रकार हैं- तिलिस्मी और जासूसु, मनोवैज्ञानिक, सामाजिक यथार्थवादी, ऐतिहासिक, आँचलिक, राजनैतिक आदि। इन्हें उपन्यासों की प्रमुख प्रवृत्तियाँ भी कहा जा सकता है। शैली की दृष्टि से उपन्यासों के पाँच प्रकार हैं- वर्णनात्मक, संवादात्मक, आत्मकथात्मक, पत्र-शैली और डायरी शैली।

विभिन्न प्रवृत्तियों, प्रयोगों और विषय क्षेत्रों की दृष्टि से हिन्दी उपन्यासों के विकास को चार चरणों में बाँटकर देखा जा सकता है- आरम्भिक युग, प्रेमचन्द युग, प्रेमचन्दोत्तर युग और स्वातंत्र्योत्तर युग। प्रथम युग में तीन प्रकार की प्रवृत्तियाँ मिलती हैं- सामाजिक, ऐतिहासिक-पौराणिक और मनोरंजन प्रधान तिलिस्मी-जासूसी। प्रेमचन्द ने श्रेष्ठ उपन्यासों की रचना की। इसीलिए इसे प्रेमचन्द युग कहा जाता है। प्रेमचन्दोत्तर काल में मार्क्सवादी और फ्रायडवादी सिद्धान्तों के प्रचलित होने के कारण सामाजिक चेतना से युक्त मार्क्सवादी और मनोवैज्ञानिक उपन्यास लेखन का सूत्रपात हुआ। स्वतंत्रता प्राप्ति के साथ देश के विभाजन की त्रासदी को लेकर बड़े महत्वपूर्ण उपन्यास लिखे गए। ग्रामीण जीवन को लेकर नया संदर्भ देते हुए उपन्यस लिखे गए। इनके अतिरिक्त ऐतिहासिक, जीवनीपरक, आत्मकथात्मक, अस्तित्ववादी और नारी जीवन पर केन्द्रित उपन्यास-लेखन का समय यही है। महिला उपन्यासकारों में कई प्रमुख नाम इसी समय उभरे। संक्षेप में, स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास बहुत व्यापक, विविध, प्रयोगशील और निरंतर विकासशील क्षेत्र प्रस्तुत करता है।

7.5 पारिभाषिक शब्द-अर्थ

सामंती व्यवस्था	= वह सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था जिसमें कृषि मुख्य उत्पादन का साधन होती है और समष्टि परक मूल्य प्रधान होते हैं, अर्थात व्यक्ति की जगह समाजकी प्रधानता दी जाती है। इस पाठ्यक्रम में अन्यत्र इसकी विस्तृत चर्चा हो चुकी है।
वर्ग-विभक्त-समाज	= मार्क्सवादी विचारधारा के अनुसार समाज दो वर्गों में विभक्त है- सम्पन्न और विपन्न।
लचीला	= जिसमें कम से कम और अधिक से अधिक ग्रहण करने की क्षमता हो।
वसीयतनामा	= किसी व्यक्ति द्वारा उसकी मृत्यु के बाद उसकी सम्पत्ति के बरखारे का निर्देश करने वाला पत्र।
अभिनयात्मक	= नाटकीय
सूत्रात्मक	= संक्षिप्त से संक्षिप्त रूप में अधिक से अधिक कहना।
व्याख्यात्मक	= किसी बात को समझाकर कहना
चित्रात्मक	= ऐसी शैली जिसमें शब्दों के माध्यम से ही कही गई बात का चित्र प्रस्तुत हो जाए
प्रतीकात्मक	= किसी निश्चित अर्थ में प्रयोग
पूंजीवादी व्यवस्था	= सामंती व्यवस्था के बाद अतीत है पूंजीवादी व्यवस्था। इसमें समाज में उद्योग प्रधान हो जाते हैं, सम्बन्ध मालिक और मज़दूर के हो जाते हैं। पूंजीवादी व्यवस्था में धन या अर्थ प्रधान हो जाता है।

BRAOU

7.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

7.6.1 'अ' श्रेणी के प्रश्न

निम्न लिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 250 शब्दों में दीजिए -

1. उपन्यास के प्रमुख तत्वों का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
2. उपन्यास के प्रकारों का परिचय देते हुए विषय वस्तु पर आधारित प्रकारों का विवेचन कीजिए।
3. हिन्दी उपन्यासों के आरम्भिक युग पर प्रकाश डालिए।
4. स्वातंत्र्योत्तर उपन्यासों की मुख्य प्रवृत्तियों की समीक्षा कीजिए।

7.6.2 'ब' श्रेणी के प्रश्न

निम्न लिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 125 शब्दों में दीजिए -

1. उपन्यास की परिभाषा दीजिए।
2. रचना-शैली के आधार पर उपन्यास के कितने भेद हैं?
3. उपन्यास में 'उद्देश्य' का क्या महत्व है, सोदाहरण बतलाइए।
4. प्रेमचन्द के उपन्यासों की विशेषतायें बतलाइए।

7.7 नमूने के प्रश्नोत्तर

7.7.1 'अ' श्रेणी के प्रश्नोत्तर

निम्न लिखित प्रश्न का उत्तर लगभग 250 शब्दों में दीजिए -

प्रश्नः स्वातंत्र्योत्तर उपन्यासों की मुख्य प्रवृत्तियों की समीक्षा कीजिए।

उत्तरः स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों में एक ओर तो पहले से चली आरही प्रवृत्तियों का विकास हुआ, और दूसरी ओर कुधन नई प्रवृत्तियों का आरम्भ और प्रसार हुआ। 1947 से लेकर आज तक फैली लगभग 45 वर्ष की इस अवधि में पुरानी पीढ़ी के उपन्यासकार सक्रिय हैं तो नए उपन्यासकारों की पूरी पीढ़ी नई चेतना के साथ जुटी है। इस युग की मुख्य प्रवृत्तियाँ हैं- सामाजिक यथार्थवादी, मनोवैज्ञानिक और ऐतिहासिक ये तीनों प्रवृत्तियाँ पहले से चली आरही थी, लेकिन इनका अभूतपूर्व विकास इस काल में हुआ। सामाजिक यथार्थवादी के अन्तर्गत○नगर-केन्द्रित उपन्यास अधिक लिखे गए। विभाजन की दुखद स्मृतियाँ, स्वतंत्रता के बाद का जनजीवन, राजनीतिक उथलपुथल, मध्यवर्गीय आकाँक्षाओं और मूल्यों का दुखद अंत आदि इनके विषय हैं। ˚ग्राम-केन्द्रित उपन्यासों की नई धारा चली-आंचलिक उपन्यासों के रूप में। प्रवर्तक रेणु ने एक विशेष ग्रामांचल की संस्कृति, बोली, रहन-सहन का विस्तार से चित्रण करते हुए ग्रामीण निम्न वर्ग की संघर्ष-कथा कही। मार्क्सवादी उपन्यासकारों ने नगर और ग्राम दोनों के जीवन का यथार्थ चित्रण किया। इतिहास को नए ढंग से विश्लेषित करते हुए ऐतिहासिक उपन्यास लिखे गए। मनो विश्लेषित करते हूए ऐतिहासिक उपन्यस लिखे गए। मनोविश्लेषणात्मक उपन्यासों की धारा में भी विकास हुआ। सांस्कृतिक, जीवनी परक, आत्मकथात्मक उपन्यास लिखे गए। महिला उपन्यासकारों ने अपनी गहन संवेदना के बल पर पारिवारिक-सामाजिक जीवन के मार्मिक चित्र दिए। नई पीढ़ी के रचनाकारों ने समसामयिक राजनीतिक संदर्भों का चित्रण किया। वस्तु और शिल्प के नये प्रयोग भी इन उपन्यासों में मिलते हैं। संक्षेप में, स्वातंत्र्योत्तर उपन्यासों की प्रवृत्ति है, अधिक से अधिक समसामयिक यथार्थ से जुड़ना, और उसका चित्रण करना। इनमें शोषित वर्ग के प्रति सहानुभूति है, आक्रोश और संघर्ष के स्वर हैं। जीवन के विविध मुखी यथार्थ चित्रण ही इन उपन्यासकारों का लक्ष्य है।

BRAOU

7.7.2 'ब' श्रेणी के प्रश्नोत्तर

निम्न लिखित प्रश्न का उत्तर लगभग 125 शब्दों में दीजिए

प्रश्नः उपन्यास में 'उद्देश्य' का क्या महत्व है- सोदाहरण बतलाइए।

उत्तरः रचना सदा सोद्देश्य होती है। उद्देश्यहीन रचना का कोई अर्थ नहीं होता। उपन्यास-लेखन भी किसी उद्देश्य को लेकर ही होता है। यह उद्देश्य क्या और कैसा हो- यह उपन्यास-लेखक की दृष्टि पर आधारित होता है, और उपन्यास-लेखक की दृष्टि उसके जीवनानुभव, युगीन परिस्थितियों और नैतिक मूल्यों पर आधारित होती है। लेखक का सही उद्देश्य युगीन मनोवृत्ति को ही बदल सकता है। इसका उदाहरण हैं प्रेमचन्द, जिन्होंने अपने युग में केवल मनोरंजन के लिए लिखे जाने वाले उपन्यासों की धारा में क्रान्तिकारी परिवर्तन ला दिया, यह कहकर कि "उपन्यास मानव चरित्र का चित्र होता है"। उसके बाद से उपन्यासों में मनुष्य के आंतरिक और बाहरी यथार्थ का चित्रण ही मुख्य उद्देश्य बन गया। उपन्यास का उद्देश्य जितना अधिक व्यापक जन-जीवन से जुड़ेगा, उतना ही रचना में गहराई आएगी। 'गोदान' जैसे उपन्यास में यही सोदेश्यता का गुण है। संसार के महान उपन्यास भी अपने इसी गुण के कारण सराहे जाते हैं।

7.8 पाठनीय पुस्तकें

1. उपन्यासः उद्भव और विकास : डॉ. सुरेश सिन्हा, अशोग प्रकाशन, नई दिल्ली
2. हिन्दी उपन्यास : डॉ. सुषमाधवन, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
3. हिन्दी उपन्यास : डॉ. शिवनारायण श्रीवास्तव, सरस्वती मन्दिर, वाराणसी।

BRAOU

इकाई-8: हिन्दी कहानी: प्रवृत्तिमूलक ऐतिहासिक विकास

8.0 विषय प्रवेश
8.1 उद्देश्य
8.2 पाठ-परिचय
8.3 मूलपाठ
8.3.1 प्रस्तावना
8.3.2 पाश्चात्य प्रेरणा से नई विधा का आरंभ
8.3.3 संस्कृत साहित्य में कहानी
8.3.4 हिन्दी में कहानी का आरंभ
8.3.5 स्वतंत्रता से पूर्व हिन्दी कहानी का विकास
8.3.6 नई कहानी
8.3.7 अ-कहानी आन्दोलन
8.3.8 सचेतन कहानी
8.3.9 समान्तर कहानी
8.3.10 हिन्दी कहानी की नई दिशाएँ
8.3.11 नयी कहानी का शिल्प
8.4 पाठ का सारांश
8.5 शब्दार्थ
8.6 अभ्यासार्थ प्रश्न
8.6.1 'अ' श्रेणी के प्रश्न
8.6.2 'ब' श्रेणी के प्रश्न
8.7 नमूने के प्रश्नोत्तर
8.7.1 'अ' श्रेणी के प्रश्नोत्तर
8.7.2 'ब' श्रेणी के प्रश्नोत्तर
8.8 पठनीय पुस्तकें

BRAOU

8.1 उद्देश्य

इस पाठ में हिन्दी कहानी के प्रवृत्तिमूलक ऐतिहासिक विकास पर प्रकाश डाला गया है। इसके अध्ययन से आप:

- हिन्दी कहानी के ऐतिहासिक विकास पर प्रकाश डाल सकेंगे,
- हिन्दी साहित्य में कहानी के विकास की दिशाओं को स्पष्ट कर सकेंगे,
- नयी कहानी के स्वरूप पर विचार कर सकेंगे,
- नयी कहानी की शिल्पगत विशेषताओं को रेखांकित कर सकेंगे,
- नयी और पुरानी कहानी के अन्तर को स्पष्ट कर सकेंगे,
- हिन्दी कहानी के विभिन्न आंदोलनों पर प्रकाश डाल सकेंगे।

8.2 पाठ-परिचय

आधुनिक हिन्दी साहित्य के इतिहास में कविता, कहानी और उपन्यास का विकास, अन्य विधाओं की तुलना में विशेष उल्लेखनीय हैं। इनके कथ्य और शिल्प दोनों दृष्टियों से अनेक नये प्रयोग हुए हैं। स्वतंत्रता के बाद बदलती परिस्थितियों में नई कहानी ने आधुनिक भावबोध को सफल अभिव्यक्ति दी है। कहानी के नये नये आन्दोलन-इस बाद के प्रमाण हैं कि हिन्दी के कहानीकार जीवन की सच्ची और सूक्ष्म यथार्थता को पकड़ने के प्रयत्न में लगे हुए हैं। प्रस्तुत पाठ में हिन्दी कहानी के ऐतिहासिक विकास को दर्शन के साथ साथ उसकी नवीनतम प्रवृत्तियों का भी विश्लेषण और मूल्यांकन किया गया है।

8.3 मूलपाठ

8.3.1 प्रस्तावना

कहानी हर रूप में उपन्यास से पुरानी विधा है। गीत और कहानी मानव सभ्यता के साक्षरता काल के पहले से जुड़े हुए हैं। आधुनिक हिन्दी साहित्य में यह रूप भी बंगला के माध्यम से पाश्चात्य साहित्य से आया है। अंग्रेजी में जिसे "शॉर्ट स्टोरी" कहते है, वही बंगला में गल्प तथा हिन्दी में कहानी नाम से प्रचलित है। हिन्दी में भी गल्प नाम का किसी मात्रा में प्रचलन रहा है। परन्तु कहानी शब्द ही सर्वाधिक स्वीकृत है। शॉर्ट स्टोरी के शब्दानुवाद के रूप में कभी कभी इसे "छोटी कहानी" और "लघु कथा" भी कहा जाता है, परन्तु कहानी नाम ही अधिक सुकर और सहज है।

8.3.2 संस्कृत साहित्य में कहानी

BRAOU

भारत वर्ष में कहानी का प्राचीनतम रूप कथा है। कथा शैली की कथाओं के विषय वीरों के शौर्य, प्रेम, न्याय, ज्ञान और वैराग्य, समुद्री यात्राओं के साहस, आकाश तथा अन्य अगम्य पर्वतीय प्रदेशों में प्राणियों के अस्तित्व आदि है। इनमें कथानक अथवा घटना प्रधान रूप ही अधिक मिलते हैं। इन कथाओं में सबसे प्राचीन कथा मनुष्य की बृहत् कथा है। यद्यपि यह अप्राप्त है किन्तु इसके संक्षिप्त रूपों में बुद्ध स्वामी के "बृहत्कथा श्लोक संग्रह" क्षेमेन्द्र की "बृहत् कथा मेजरी" और सोमदेव के 'सरित्सागर' से इसके स्वरूप पर प्रकाश पड़ता है। कथा की परंपरा में एक शाखा नीति कथाओं की भी है। ऐसी कथाओं में सबसे विख्यात "तंत्र" है। बौद्ध परंपरा की कथाओं में सबसे विख्यात "जातक कथा" है। संस्कृत में कथा की कथानक प्रधान नीति परक कथाओं की परंपरा दूर तक मिलती है। इनमें विक्रमादित्य, भर्तृहरि, मंजु और भोज के विद्याप्रेम, न्याय, शौर्य आदि वर्णित हैं। इसके अतिरिक्त बेताल पंच विशंप्ति का, सिंहासन् द्वात्रिंशिका, आनंद कृत माधवानल कथा, और बल्लाल सेन का "भोज प्रबंध" आदि अधिक प्रसिद्ध है।

8.3.3 कहानीः पाश्चात्य प्रेरणा से नई विधा का आरंभ

यह स्वाभाविक है कि अपने नये मुद्रित रूप में कहानी का हिन्दी साहित्य में आविर्भाव बीसवीं शती के आरंभ में है। साहित्यिक पत्रकारिता के उदय के साथ, मनोरंजन से हठकर एक अनुभूति का सीधा साक्षात्कार अब उसका विधागत लक्ष्य हो गया है। विषय और वातावरण की दृष्टि से जहाँ प्राचीन कहानी में राजा, राजकुमार, राजकुमारियों की प्रणय कथाओं का आधिक्य; मानव के बाह्य क्रिया कलाप; स्वभाव के वर्णन पर दृष्टि है तथा संयोग एवं आकस्मिक घटनाओं से कुतूहल, आश्चर्य, और जिज्ञासों को शांत करने की प्रवृत्ति की अतिरंजकता तथा प्रेम वृत्ति की एक छत्रता है, वहाँ आधुनिक कहानी में सामाजिक समानता के भाव जगने के कारण, समाज की सभी संस्थाओं, वर्गों और वर्णों के मनुष्यों के व्यक्तिगत जीवन की साधारण घटनाओं को कहानी का विषय बनाया गया है, मानव की अंतः प्रकृति चित्रित करने का प्रयत्न किया गया है, संयोग और दैव घटना को केवल कथानक के

विकास में साधन मात्र माना गया है। प्रेम के साथ अन्य प्रवृत्तियों के चित्रण पर भी ध्यान दिया गया है, मानव को देव-दानवों जैसी आधिभौतिक सत्ताओं के हाथ का क्रीडा कंदुक नहीं बनाया गया है; उनकी प्रवृत्तियों का मनोवैज्ञानिक चित्रण किया गया है और जीवन के मार्मिक तथ्यों एवं शश्वत सत्यों का भी उद्घाटन किया गया है। शैली की दृष्टि से जहाँ प्राचीन कहानी कथानक के किसी भी स्थल से प्रारंभ हो सकती है। उसमें वक्रता या विचित्रता है और कलात्मक चित्रण की प्रवृत्ति है। दूसरे, जहाँ प्राचीन कहानी वर्णन प्रधान होती थी वहाँ आधुनिक कहानी रूपकों और प्रतिकों का सहारा लेकर कलात्मक होती जा रही है। उसकी शैली में निरंतर विकास होता जा रहा है।

हिन्दी की आधुनिक कहानी के विकास में एक ओर मानव विकास के प्रेम, करुणा, विनोद, हास्य व्यंग्य, विस्मय, आश्चर्यपूर्ण, साधारण और यथार्थ परिस्थितियों के आघात-प्रतिघात सहायक हुए हैं; दूसरी ओर प्राचीन प्रेम प्रधान खंड काव्य, प्रबंध काव्य, नाटकों और प्रेमाख्यानों से प्राप्त काव्यात्मक कल्पना ने योग दिया है।

8.3.4 हिन्दी में कहानी का आरंभः द्विवेदी युग

आधुनिक हिन्दी कहानी का प्राथमिक स्वरूप हम बंगला से अनुदित कहानियों में पाते हैं। इस दिशा में बाबू गिरजाकुमार बोस ने "लाला पार्वती नंदन" के नाम से तथा श्रीमती राजबाला घोष ने "बंग महिला" के नाम से विशेष योगदान दिया है। बंग-महिला ने आगे चलकर कुछ मौलिक रचनाएँ भी प्रस्तुत की जिनमें "दुलारी वाली" सर्वाधिक प्रसिद्ध हुई। सन् 1900 में सरस्वती का प्रकाशन आरंभ हुआ। हिन्दी कहानी के संदर्भ में सरस्वती का प्रकाशन एक महत्वपूर्ण घटना है। "सरस्वती" के प्रथम वर्ष में ही किशोरीलाल गोस्वामी की "इंदुमती" प्रकाशित हुई लेकिन आलोचकों ने इसमें बंगला कहानी और अंग्रेजी नाटक की छाया को खोज निकाला। सन् 1901 से लेकर सन् 1910 तक की उल्लेखनीय रचनाओं में "इंदुमती" के अतिरिक्त रामचन्द्र शक्ल की "ग्यारह वर्ष का समय" बंग महिला की "दुलाई वाली", भगवान दास की "प्लेग की चुडैली", तथा गिरजा दत्त वाजपेयी की "पंडित और पंडितानी" के नाम विशिष्ट हैं। यह सच है कि इस कहानियों में एक विचित्र प्रकार की भावुकता, रहस्यात्मकता, कौतूहल तथा उपदेशात्मकता के दर्शन होते हैं; शैली-शिल्प को लेकर भी परिमार्जन नहीं आ सका है; फिर भी इस कालखण्ड का महत्व इस बात को लेकर है कि अब कितने ही लेखक कहानी के क्षेत्र में तत्परता से अभ्यास करने लगे थे।

हिन्दी कहानी की विकास यात्रा में प्रेमचन्द्र का सर्वाधिक महत्व है। वैसे उन्होंने सन् 1907 से ही उर्दू में धनपत राय के नाम से लिखना आरंभ कर दिया था लेकिन सन् 1916 में उनकी मौलिक रचना "पंचपरमेश्वर" पहली बार हिन्दी में छपी। कहानी कार प्रसाद का उदय सन् 1911 में "इन्दु" में प्रकाशित "ग्राम" से होता है। बीसवीं शती के दूसरे शतक में हिन्दी की कुछ श्रेष्ठ कहानियों का प्रकाशन हुआ. 1913 में विश्वभर कौशिक की "रक्षा बंधन" और राधिका रमन सिंह की "कानों में कँगना" कहानी प्रकाशित हुई, 1914 में ज्वालादत्त शर्मा की "विधवा" छपी। "रक्षा बंधन" और "विधवा" जहाँ पारिवारिक रिश्तों की पहचान कराने वाली कहानियाँ है, वहाँ "उसने कहा था" (1915) सुरुचिपूर्ण मानवीय व्यापार की कथा है। केवल विस्तार से लिखा। सन् 1918 में काशी से "हिन्दी गल्पगाथा" नामक मासिक पत्र का प्रकाशन आरंभ हुआ। इसमें जयशंकर प्रसाद की कहानियाँ नियमित रूप से प्रकाशित होती थीं। इसी पत्रिका में गंगाप्रसाद श्रीवास्तव, इलाचन्द्र जोशी की कुछ प्रारंभिक कहानियाँ प्रकाशित हुई।

स्वतंत्रता के पूर्व कहानी साहित्य का विकासः वर्गीकरण

विषय की दृष्टि से कहानियाँ अनेक प्रकार की हो सकती हैं। जैसे, सामाजिक, भावात्मक, ऐतिहासिक, मनोविश्लेषणात्मक और आंचलिक आदि।

(क) सामाजिक कहानी

सामाजिक कहानी वह है जिसका उपजीव्य सारा समाज है, हर व्यक्ति है, और इन दोनों की संपूर्ण गति है, दिशा है, जिसके व्यक्तित्व में समाज का सारा व्यक्तित्व बंधा है, जैसे कसोटी में स्वर्ण रेखा खिंची रहती है, जिसकी रचना में संपूर्ण समाज का रहस्य, अंतर मन और सारा दर्शन छिपा रहता

BRACU

है, जिसका हर पात्र हमारा प्रतिनिधि होता है। हिन्दी कहानी आरंभ से ही सामाजिक रही है बल्कि सामाजिक चेतना के आग्रह एवं तनाव ने कहानी को विकास ही दिया है। ज्यों ज्यों जीवन जटिल एवं द्वंद्वमय होता गया है त्यों त्यों कहानी के स्तर में विकास होता गया है, क्योकि समाज के बदलते मूल्यों एवं विचार तथा दर्शन का सीधा प्रभाव सामाजिक कहानियों पर पड़ता है, संप्रेषणीयता का सारा दायित्व इन्हीं कहानियों पर आता है। यही कारण है कि सामाजिक कहानियों में जितने शिल्पगत प्रयोग होते है, उतने कहीं नहीं।

प्रेमचंद हिन्दी के एक ऐसे कहानीकार है जिनकी कहानियों में समूचा समाज चित्रित हुआ है। "सप्त सरोज" की कहानियों से लेकर "मान सरोवर" प्रथम भाग तक की कहानियाँ प्रायः समूचा भारतीय समाज, मुख्यतया उसका निम्न वर्ग, निम्न मध्यवर्ग, मध्यवर्ग, उच्च मध्यवर्ग, अपने विविध परिस्थितियों के साथ अभिव्यक्त हुआ है। यशपाल मुख्यतया समालोचक कहानीकार हुए। उनपर मार्क्सवाद का प्रभाव अधिक है। उपेन्द्रनाथ अश्क, इलाचन्द्र जोशी, भगवती चरण वर्मा आदि भी नई सामाजिकता के मूल्यांकन और सफल अभिव्यक्ति के कहानीकार हैं।

(ख) भावात्मक कहानियाँ

ये ऐसी कहानियाँ है जिनमें चरित्र, घटना या कार्य व्यापार पर बहुत बल न होकर केवल किसी भाव विशेष पर बल होता है, और उसी के आधार से समूची कहानी अपनी एक लय के साथ निर्मित होती है, जैसे प्रसाद की कहानियाँ; जैनेन्द्र के "नीलम देश की राज कन्या" और अज्ञेय की कोठरी की बात। ऐसी कहानियाँ में एक मुख्य भावना का प्राधान्य रखा जाता है। भाव प्रधान कहानियाँ प्रायः प्रतीकवादी कहानियों का रूप धारण कर लेती हैं, जैनेन्द्र की "लाल सरोवर" और "राज पथिक", अज्ञेय की "पगोड़ा वृक्ष" और "चिड़िया घर" आदि कहानियाँ अपने भाव चित्रों में किंचित प्रतिष्ठों के सहारे मानसिक चित्रों एवं सत्यों की अभिव्यक्ति में अत्यंत सफल हैं। ऐसी कहानियाँ प्रायः सूक्ष्म तत्वों तथा भावनाओं को साकार रूप देने में सफल होती है।

(ग) ऐतिहासिक कहानी

हिन्दी में आधुनिक दृष्टि कोण से ऐतिहासिक सामग्री को बिल्कुल भिन्न उद्देश्य से कहानी का वर्ण्य विषय बनाया गया है। इसी दृष्टिकोण से प्राचीनता के प्रेम, जातीय गौरव, राष्ट्र प्रेम, आदर्श स्थापना एवं वीर पूजा की भावना ने कहानीकारों को इतिहास की ओर प्रवृत किया है। इस प्रकार वर्तमान से अतीत को जोड़ने अथवा दोनों में रसमय संबंध स्थापित करने का माध्यम केवल कल्पना है। अतएव ऐतिहासिक कहानी में कल्पना एवं तर्क जनित भावुकता का प्रवेश अत्यंत आवश्यक है।

BRAOU

वृंदावनलाल वर्मा, चतुरसेन शास्त्री, प्रेमचन्द और जयशंकर प्रसाद ऐतिहासिक कहानी लिखनेवालों में विशेष उल्लेखनीय हैं। वृंदावन लाल वर्मा की "राखी बंध भाई" तथा "खजुराहो की दो मूर्तियाँ" आदि कहानियों में ऐतिहासिक तथ्यों के प्रति रसमय निष्ठा तथा पुनरुत्थान की भावना है। प्रेमचन्द की "राजा हरदौल", "मर्यादी की वेदी" और "शतरंज के खिलाडी" आदि कहानियाँ, वर्तमान को शक्तिशाली बनाने के लिए अतीत से प्राणशक्ति खोजने के सुन्दर प्रतिमान है। इस दिशा में प्रसाद जी का स्थान अद्वितीय है। इनकी अनेक अमर ऐतिहासिक कहानियाँ जीवन के अनेकानेक पक्षों और उद्देश्यों को लेकर लिखी गयी है जैसे "देवरथ", "सालवती", "स्वर्ग के खंडहर में", "आकाश द्वीप", और "पुरस्कार" आदि प्रसाद की ऐतिहासिक कहानियाँ इसीलिए श्रेष्ठ है कि उनमें परिपार्श्व और वातावरण का इतना मोहक आकर्षण और वेग है कि पाठक उनमें तन्मय हो जाता है।

(घ) मनोवैज्ञानिक कहानी

मनोवैज्ञानिकता कहानी का परमधर्म है, क्योंकि कहानीकार जो वस्तुतः जीवनदृष्टा है, ऐसा सजीव चित्र कहानी में उपस्थित करता है जिसके पीछे चेतन पात्रों की मानसिक स्थिति का दृश्य है, और कुशल कहानीकार उस मानसिक स्थिति का चित्रण उसके कार्य व्यापर, और कर्म प्रेरणाओं के अनुकूल मानव मनोविज्ञान कहानी का उद्देश्य बनकर आता है, विशेषतया उसे ही, मनोवैज्ञानिक कहानी की संज्ञा मिलनी चाहिए। अच्छी कहानी की कसौटी यही मनोवैज्ञानिक सत्य है। प्रेमचन्द ने कहा है "सबसे

उत्तम कहानी वह होती है जिसका आधार किसी मनोवैज्ञानिक सत्य पर हो" उदाहरण के लिये देवता अवश्य छिपा रहता है, यह मनोवैज्ञानिक सत्य है, उस देवता को खोलकर दिखा देना समर्थ आख्यायिका का काम है"; जैसे स्वयं प्रेमचन्द की कहानी "बड़े घर की बेटी" और प्रसाद की "गुण्डा" नामक कहानी। लेकिन प्रेमचन्द और प्रसाद की कहानियों में जिस स्वर के मनोविज्ञान का सहारा लिया गया था वह अपेक्षा कृत चरित्र के साधारण मनोविज्ञान से संबंधित था।

प्रेमचन्द युग के उपरान्त मनोवैज्ञानिक कहानियों के स्तर में बहुत विकास हुआ। जैनेन्द्र, अज्ञेय और इलाचन्द्र जोशी इस दिशा में प्रमुख उदाहरण हैं। इस काल में आकर वस्तुतः मनोविज्ञान शास्त्र में अद्भुत उन्नति हुई, जिसमें से मनोविश्लेषण पद्धति का प्रयोग हिन्दी कहानी कला में हुआ। इस स्तर की कहानियों से हमारे साहित्य का मस्तक बहुत ही ऊँचा उठा है। इन कहानियों में मानव जीवन, उसकी कर्मा प्रेरणाओं के प्रति मनोविज्ञान से उद्‌भूत दृष्टि है। हिन्दी कहानियों में नये मनोविज्ञान के प्रयोगों को जैनेन्द्र ने "एक रात" कहानी संग्रह की भूमिक में विकास की संज्ञा दी है। जैनेन्द्र कुमार की "मित्र विद्याधर" अज्ञेय की छाया, सोप, नंबर दस, इलादन्द्र जोशी की दुष्कर्मी, यशपाल की "एक राज" और उपेन्द्रनाथ अश्क की "उबाल" कहानियाँ इस क्षेत्र की प्रतिनिधि और उत्कृष्ठ कृतियाँ हैं।

(च) प्रगतिवादी कहानी

प्रेमचन्द के साथ ही हिन्दी में प्रयतिवादी आन्दोलन का आरंभ हुआ। यह आन्दोलन मार्क्स के ऐतिहासिक द्वंद्वात्मक भौतिकवाद के सिद्धांत को लेकर चला। इसके मूल में सामाजिक विकास की अवधारणा है। इस प्रकार की प्रगतिवादी कहानियों के पुरस्कर्ता के रूप में यशपाल का नाम अग्रगण्य है। यशपाल ने हन्दी को विविध आयामी कहानियाँ देकर निश्चि ही हिन्दी कहानी के विकास और विस्तार को नवीन क्षितिज प्रधान किये। यशपाल की चिंतना से मेलखाने वाले कहानिकारों में राहुल सांस्कृत्यायन, उपेन्द्रनाथ अश्क, रांगेय राघव तथा अमृतलाल नागर प्रमुख हैं। यशपाल ने अपने समय की राजनीतिक परिस्थिति और सामाजिक घटनाओं से सही प्रेरणा लेकर अपनी रचना प्रक्रिया में विशिष्टता उत्पन्न की है। कहानी लेखकों के इसी वर्ग ने साहित्य में प्रतिबद्धता के प्रश्न को उठाया और प्रेमचन्द की सोद्देस्यता को प्रशस्त माना। इस खेमे के लेखकों में यथार्थवादी दृष्टिकोण की प्रधानता है। इन्होंने जीवन के आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक तथा वैयक्तिक सभी पक्षों को यथार्थ की भूमिका पर उठाया है, और उसके लिये व्यावहारिक समाधन प्रस्तुत किये हैं। आज के प्रगतिशील लेखकों की लंबी पंक्ति प्रेमचन्द के बाद यशपाल की ही ऋणी है।

(छ) आंचलिक कहानी

किसी विशेष अंचल को केन्द्रित कर लिखी जाने वाली कहानी आंचलिक कहानी कहलाती है। इन कहानियों में क्षेत्र की आंचलिकता ही नहीं वरन् भाषा की भी आंचलिकता स्पष्ट रूप से उभरती हैं। ये कहानियाँ मुख्यतया गाँव को केन्द्र में रखकर लिखी जाती है। आंचलिक कहानियाँ शहरी जीवन की कहानियाँ नहीं होती। इस प्रकार की बहुत महत्वपूर्ण और नई जटिल संवेदनावाली कहानियाँ हिन्दी में लिखी गयी है। तीसरी कसम उर्फ मारो गये गुलफाम, रस प्रिया (फनीश्वर नाथ रेणु), हँसा जाय अकेला (मार्खण्डेय), नीली शील (कमलेश्वर), नन्हीं (शिवप्रसाद सिंह), अदरक की गांठ (प्रभाकर द्विवेदी), दिवार पर की औरत (शिवसागर मिश्र) आदि कहानियां उदाहरण के तौर पर रखीं जा सकती हैं। ये कहानियाँ ग्राम परिवेश के अनेक रंगों, और गंधों को, अपने में समेट कर तथा गाँव की बदली हुई सामाजिकता की ओर संकेत कर अपने पूरे व्यक्तित्व में शहर की तथा गाँव की तमाम कहानियों से अपना आत्मगौरव स्थापित कर देती हैं।

8.3.6 नई कहानी

1950 ई. के आसपास जिस कहानी का जन्म हुआ उसमें, परिवर्तित परिवेश में व्यक्ति और समाज का सम्बन्ध फिर स्थापित करने की चेष्टा की गई। नयी युगीन परिस्थितियों के अनुसार उसमें व्यक्तिवादिता के स्थान पर वैयक्तिकता सर्जनात्मक होती है जो व्यापक मानवीय मूल्य स्वीकार कर अपना व्यवहार मर्यादित करती है। वह मानव सापेक्ष होती है और तदनुकूल मूल्यों की खोज करती है। सामयिक

BRAOU

कहानी लेखक ने व्यक्ति को रूढ़ियों से मुक्त कर वैयक्तिक अनुभूति को व्यापक दायित्वबोध के साथ संपृक्त कर ईमानदारी से उसे व्यक्त करने का प्रयत्न किया है और वैज्ञानिक तकनीकी प्रयोग के अनुरूप सामाजिक संदर्भों एवं आधुनिकता से सम्बद्ध मानवीय व्यक्तित्व के प्रति आस्था व्यक्त की है। लेखक अपनी अकुलाहट, कुण्ठा, संत्रास, अस्वीकृति, नैराश, भग्नाशा आदि व्यक्त करता है किन्तु वह नये मानवीय कोण और आयाम खोजने में प्रवृत्त रहता है। यह भी सच है कि निजी अनुभूतियों के नाम पर अधिकांश लेखकों ने अतिरंजनापूर्ण कृत्रिम और तोड़ा-मराड़ा गया कथ्य, सेक्स जनित दृष्टिकोण और देहवादी दर्शन भी दिया है और उनमें सब चीजें जबरदस्ती ओढ़ी हुयी मालूम होती हैं।

कहानी के क्षेत्र में नई कहानी आन्दोलन नई कविता के वजन पर 1956 के आस-पास आयोजित होता है। मुख्य रूप से तीन कहानीकार- मोहन राकेश राजेन्द्र यादव और कमलेश्वर, एक आलोचक नामवर सिंह, और कहानी पत्रिका के एक सम्पादक भैरव प्रसाद गुप्त के रचनात्मक तथा वैचारिक सहयोग से कहानी के क्षेत्र में यह नयी जागृति आती है। नई कहानी की शुरूआत निर्मल वर्मा की कहानी "परिन्दे" से मानी जाती है, यद्यपि इस भूमिका में कई अन्य कहानियों को भी प्रस्तावित किया जाता है। नई कहानी के सैद्धान्तिक पक्ष पर विचार और नए-कहानीकारों के विवेचन में नामवर सिंह के साथ देवीशंकर अवस्थी ने भी योगदान दिया है। इस आन्दोलन की अनेक शाखायें-उपशाखाये चलीं पर प्रमुख रूप से नई-कहानी नाम ही प्रचलन में रहा।

नई कहानी के पुरस्कर्ताओं का बल बराबर इस पर रहा कि कहानी के अन्तर्गत अपनी बात को सीधे-सीधे कहा जाय, किसी प्रकार के प्रतीक, मिथक आदि का माध्यम स्वीकार न किया जाए, एक मान्यता जो नयी कविता के बाद के कुछ कवियों ने भी "सपाटबयानी" के नाम से प्रस्तावित की। जैनेन्द्र एवं अज्ञेय ने कहानी के स्थूल वर्णन से आगे चलकर जब उसे संवेदन के स्तर विकसित करने का यत्न किया तो जीवन के विविध पक्षों की सूक्ष्म व्याख्यायें सामने आयीं। नई कहानी इन सूक्ष्म व्याख्याओं और उनके लिए कभी प्रयुक्त प्रतीक, बिम्बों को निरस्त करके "अनुभव की प्रत्यक्षता" पर बल देती है। इस तर्क में से कई रचनात्मक समस्यायें उभरती हैं। पहली बात यह कि अनुभव की प्रत्यक्षता तो सबके लिए स्वयं सुलभ है, उसे दिखाने के लिए फिर साहित्य की आवश्यकता ही क्या है? और दूसरे यह कि वास्तविक की प्रकृति यदि ऐसी सीधी एवं इकहरी होती, जैसी नई-कहानी के आलोचक ने बतानी चाही है, तो मानव जीवन के जटि ल स्वरूप को समझने के लिए दर्शन, साहित्य और विज्ञान के इतने अनवरत प्रयत्न न चले होते जैसे कि वस्तुतः चले हैं, और जिनके सामूहिक रूप को संस्कृति नाम दिया गया है। इस प्रकार की आलोचनात्मक व्याख्याओं ने समकालीन हिन्दी कहानी को संचार माध्यमों के निकटतर लाने में योग दिया, और उसे आज की उपभोक्ता सम्यता का अंग बना दिया है।

नई-कहानी में अनुभूति की प्रामाणिकता को रचना-प्रक्रिया का मूल अंश माना गया। इनमें जीवन अपनी समग्रता में रूपायित हुआ। इसके विपरित पुरानी कहानी की स्थिति दूसरी रही है। पुराने कहानीकारों का रास्ता "साहित्य से जीवन की ओर" का था, वे जीवन के प्रति या आदमी के सामने खड़ी भयावह परिस्थितियों और आसन्न संकट की ओर देखना हेय समझते थे। वे अपने शीश-महलों में बंद थे और निरंतर बदलती परिस्थितियों के प्रति उदासीन।

नई कहानी में विकास की प्रक्रिया निरंतर बनी रही है। एक ओर जहाँ नई-कहानी पुरानी कहानी की जड़वादी स्थिति की प्रतिक्रिया में जीवन के यथार्थ से जुड़कर चली है, वहीं दूसरी ओर इसकी अपनी यात्रा में भी उसने निरन्तर प्रगति की है। शुरु की सांकेतिक अभिव्यंजना, अछूती कथा भूमियों की तलाश यथर्थवादी कलात्मक वेश आदि से अपने को बदलती हुई वह आज अस्तित्व, संत्रास, विसंगति, अनिर्णय की स्थिति, विश्वबोध, अपरिचय आदि की मानवीय परिस्थितियों से अपने को जुड़ा हुआ पाती है। साथ ही, नई-कहानी ने पुरानी कहानी के सांचे को अस्वीकार किया है। कमलेश्वर के अनुसार पुरानी रूढ़ कहानी एक सांचे में ढ़लकर गहन मानवीय संकट एवं अपेक्षाओं को वाणी देने में असमर्थ थी जिसने किस्सागोई को तो कुछ-कुछ छेड़ दिया था पर निष्कर्षवादी अन्तों से जुड़ी हुई थी। इसके विरोध में नई कहानी का उदय ऐतिहासिक संदर्भ में हुआ। इसने परिपाटी बद्ध रूढ़

BRAOU

अर्थों में कहानी को स्वीकार नहीं किया। यह एक ऐसा मोड़ था, जो आन्तरिक एवं बाह्य कारणों से हिन्दी कहानी में आया। इसके अन्तर्गत कहानी के फार्म और कथ्य दोनों स्तरों पर एक नई दिशा की खोज की गई।

कथ्य की दृष्टि से नई कहानी को दो वर्गों में बाँट सकते हैं। (1) नगरीय, विशेषतः मध्यवर्गीय, जीवन-परिवेश और मानसिकता की कहानियाँ जो कभी कभी विलक्षणता और काम-कुंठा की शिकार भी हो गई हैं। (2) ग्रामीण परिवेश और संवेदना की कहानियाँ जिनमें बदलती ग्रामीण परिस्थितियों में भारतीय अस्मिता, आत्मीयता और मानवीय संवेदना को अभिव्यक्ति दी गई हैं। मोहन राकेश, राजेन्द्र यादव और कमलेश्वर प्रथम कोटि में आते हैं तो शिव प्रसाद सिंह, फणीश्वरनाथ रेणु, शेखर जोशी आदि दूसरी कोटि में।

नई-कहानी का आन्दोलन धीरे-धीरे परिपक्वता प्राप्त करता गया। मोहन राकेश (मलबे का मालिक, सफ्टीपिन), राजेन्द्र यादव (जहाँ लक्ष्मी कैद है, छोटे छोटे ताजमहल), कमलेश्वर (राजा निरबंसिया, एक अश्लील कहानी), धर्मवीर भारती (गुलकी बन्नो), भीष्म साहनी (चीफ की दावत), ज्ञानरंजन (पिता, बहिर्गमन), दूधनाथ सिंह (प्रतिशोध), अमरकान्त (जिंदगी और जोंक, डिप्टी कलक्टरी), शेखर जोशी (कोसी का घटवारी), फणीश्वरनाथ रेणु (तीसरी कसम) की कहानियाँ अपने प्रचलित विधान में पूरी तरह संतोषजनक है, और अच्छे से अच्छे संकलन में हिन्दी कहानी का सशक्त प्रतिनिधित्व कर सकती हैं। कुछ अन्य कहानीकार भी इस क्षेत्र में सक्रिय रहे हैं- गोविन्द मिश्र, काशीनाथ सिंह, बटरोही, अर्चना वर्मा, रवीन्द्र कालिया, उषा प्रियवन्दा, विजय मोहन सिंह, मेहरुन्निसा परवेज, गिरिराज किशोर, ज्ञान प्रकाश, सतीश जमाली तथा प्रयाग शुक्ल। अनेक प्रकार के विवादों से अलग रहकर द्विजेन्द्रनाथ मिश्र "निर्गुण" ने कुछ अच्छी कहानियाँ लिखी है। व्यंग्य-कथा के क्षेत्र में कुछ अच्छे प्रयोग अमृतलाला नगर, श्रीलाल शुक्ल, हरिशंकर परसाई, शिक्षार्थी, केशवचन्द्र वर्मा मनोहर श्याम जोशी ने किए हैं।

8.3.7 अ-कहानी का आन्दोलन

BRAOU

नई कहानी आन्दोलन की प्रतिक्रिया में गंगाप्रसाद विमल आदि के द्वारा अ-कहानी आन्दोलन का आरंभ हुआ। अ-कहानी, कहानी की धारणागत प्रतीति से अलग एक अस्थापित कथाधारा है जो कहानी के सभी वर्गीकरणों, कहानी के मूल्यांकन के आधारों, एवं कहानी की पूर्व समीक्षाओं को अस्वीकार करती है, इसीलिए अनेक समर्थ कथाकार इस सच्चे नवलेखन को अस्वीकार भी कर देते हैं। अ-कहानी में 1. अस्तित्ववाद और अब्सर्ड विचारधारा का प्रभाव है, 2. उसमें पूर्ण जीवन की अस्वीकृति है और वह जीवन की कोई परिभाषा नहीं देती, 3. वह कहानी के सभीरूढ़ मानदण्डों से मुक्त है, 4. उसमें स्थूलता का अभाव रहता है और उसका कोई बंधा-बधाया शिल्प नही होता, 5. उसमें टाइप चरित्र नहीं होते, 6. उसकी दृष्टि, अकथित तथ्यों और अनुभूति प्रबल कथ्यों पर रहती है, 7.वह जीवन की विसंगतियों, असामंजस्य, अन्तर्गता आदि पर बल देकर रुग्ण संवेदना व्यक्त करती है, 10.वह मोनोलाग, फेंटसी, संस्मरण, असम्बद्ध आत्म-प्रलाप, निबंध, डायरी आदि के समीप रहती है।

3.8 सचेतन कहानी

कहानी के साठोत्तरी आंदोलनों में सबसे सशक्त और योजनाबद्ध रूप सचेतन कहानी आन्दोलन का रहा है जो स्पष्टतः नई कहानी की स्पर्धा में सामान्यतः उन कथाकारों द्वारा चलाया गया जिनके नाम नई कहानी के पुरस्कर्ताओं और सहयोगियों में छूट गए थे। इनमें आनन्द प्रकाश जैन, महीप सिंह, राजीव सक्सेना, तथा श्याम परमार के साथ मरहर चौहान, योगेश गुप्त, जगदीश चतुर्वेदी, धर्मेन्द्र गुप्त तथा हिमांशु जोशी आदि के नाम उल्लेखनीय है। वैसे सचेतन कहानी आन्दोलन की धुरी महीप सिंह और आनन्द प्रकाश जैन रहे है।

सचेतन कहानी को वैचारिक भूमि प्रदान करने के लिए नवम्बर 1964 में रामावतार चेतन द्वारा सम्पादित महीपसिंह के सम्पादन में "आधार" नामक पत्रिका का "सचेतन कहानी विशेषांक" निकाला गया। इस अंक में बीस सचेतन कहानियों के साथ-साथ सचेतन कहानी की दृष्टि, आशय एवं आधार भूमि को स्पष्ट करने की भी कोशिश की गई। महीप सिंह के अनुसार सचेतनता एक दृष्टि है। वह दृष्टि जिसमें जीवन जिया भी जाता है और जाना भी जाता है। महीप सिंह सचेतन कहानी को सक्रिय भावबोध तथा जीवन की स्वीकृति की कहानी मानते हैं। उनमें पश्चिम की भौंडी नकल और ओढ़ी हुई मानसिकता से प्रेरित होकर व्यर्थता, नितांत अकेलेपन और बनावटीपन का प्रदर्शन करने की प्रवृत्ति नहीं है। इसके विपीरत वे नई कहानी को रूप तत्व के आग्रह की कहानी मानते हैं। नई कहानी में, उनके अनुसार, व्यक्तित्व एवं व्यक्तिवाद को उभारने का प्रयास है। महीप सिंह की यह भी मान्यता है कि सचेतन दृष्टि आधुनिकता की दृष्टि है और आधुनिकता एक गतिशील स्थिति है और हमारे सक्रिय जीवन पर निर्भर है। सचेतन आन्दोलन को महीप सिंह सामूहिक संचेतना का फल मानते हैं।

8.3.9 समान्तर कहानी

सचेतन कहानी आन्दोलन के पस्चात् आन्दोलन के स्तर पर प्रायः 10 वर्ष तक खामोशी रही। उपरांत, अक्तूबर 1974 की सारिका के अंक में एक बार फिर कमलेश्वर द्वारा "समान्तर कहानी" के नाम से "आम आदमी के आस पास की कहानियाँ" प्रस्तुत की गई। कमलेश्वर का कहना है कि कहानी की समान्तर वैचारिकता ने साहित्यिकता को अस्वीकार करके समय को पूरी तरह से स्वीकार किया है। इसलिए इन कहानियों को लेकर साहित्य के प्रश्न हल नही किए जा सकते। ये कहानियाँ आम आदमी के समय संदर्भों में जन्म लेने वाले जलते प्रश्नों के यथार्थमूलक दुविधा रहित कदम हैं। ये समान्तर कहानियाँ सामान्य जन की अपाजेय परम्परा की कहानियाँ है। ये कहानियाँ साहित्य की तरफ से साथ देने का औपचारिक प्रस्ताव नहीं, बल्कि बड़े पैमाने पर चल रही यथार्थ की लड़ाई में शामिल कहानियाँ हैं। ये मुजस्सिम आदमी की बदलती हुई धारणाओं, उसके प्रश्नों की लिखित तहरीर ही नहीं, बल्कि समय में लिए गए उसके फैसलों की यथार्थ प्रतिलिपियां भी है। समान्तर कहानियाँ सही अर्थों में विषमता मूलक समाज के द्वंद्व की कहानियाँ है।

BRAOU

8.3.10 हिन्दी कहानी की नई दिशायें

सारांश यह कि 1950 के बाद गहराई और व्यापकता दोनों ही दृष्टि से हिन्दी कहानी का विकास अद्वितीय रहा हैं। इसके कथ्य में सबसे मुख्य प्रवृत्ति यह है कि ये कहानियाँ व्यक्ति के परस्पर सम्बन्धों में पड़ी दरार को अभिव्यक्ति देती है। इसके अन्तर्गत पुरानी और नई पीढ़ी का संघर्ष, पति और पत्नी, पिता और पुत्र, तथा भाई और बहनों के सम्बन्धों की टूटन और शिथिलता परिलक्षित होती है। आज के हिन्दी कहानीकारों ने इन टूटते हुए सम्बन्धों तथा कारणों को गहराई के साथ अनुभव किया है। उसने उन्हें अभिव्यक्ति भी दी है और ऐसे स्थानों पर व्यक्ति सम्बन्धों का यह भावात्मक परिवर्तन आज की परिस्थितियों की देन है और इस परिस्थितियों के जन्म और विकास में आर्थिक पक्ष अत्यधिक प्रभावशाली और महत्वपूर्ण रहा है। "वापसी" और "जिन्दगी और गुलाब के फूल" (उषा प्रियवन्दा), "देवी की माँ और "किसके लिए" (कमलेश्वर), "अकेली" (मन्नू भण्डारी), "चीफ की दावत" (भीष्म साहनी), "बरादारी बाहर" (राजेन्द्र यादव) तथा "गंदल जल का रिश्ता" (शानी) आदि ऐसी कितनी ही रचनाएँ है जिनमें सम्बन्धों की टूटन व्यक्त हुई है और संवेदनात्मक धरातल पर जैसे किसी का किसी से कुछ लेना-देना नहीं रह गया है। समकालीन समाज में व्याप्त यह एक गम्भीर स्थिति है। हिन्दी कहानीकार ने इसे बड़ी सूक्ष्मता से पकड़ा और व्यक्त किया है और हिन्दी कहानी ने इस ठण्डेपन को रेखांकित करके आज के समय की वस्तुस्थिति तथा मानसिकता दोनों पर प्रश्न चिह्न लगा दिया है।

8.3.11 नई कहानी का शिल्प

अन्त में हमें शिल्प को लेकर कुछ कहना है। यह सही है कि स्वातन्त्रोत्तर हिन्दी कहानियों के शिल्प में एक निश्चित निखार आया है। कुछ कहानीकार जैसे मोहन रकेश, दूधनाथ सिंह, श्रीकांत वर्मा, सतीश मदान, गंगा प्रसाद विमल आदि में शिल्प के माध्यम से कथा को आकर्षित बनाने का प्रयास अवश्य नजर आता है लेकिन सामान्यतः कहानीकारों का आग्रह शैली की सरलता पर ही अधिक रहा है। शैली की सरलता का अर्थ अभिव्यक्ति का सपाटपन नहीं है। इससे हमारा आशय यही रहा है कि कहानी पढ़ते हुए पाठक वाक्य विन्यास को समझने या शब्दों के अर्थ टटोलने में नहीं रह जाता, बल्कि उसका ध्यान कथा की गत्यात्मकता पर रमा रहता है। यह कहानी लेखन की एक बड़ी उपलब्धि है और कहना न होगा कि आज के हिन्दी कहानीकार ने इस उपलब्धि को अवश्य प्राप्त कर लिया है। यह ठीक है कि सैकड़ों और हजारों कहानियों के अम्बार में अधिकांश कहानियाँ कथ्य और कथन-कला की दृष्टि से, रचनात्मकता की दृष्टि से हीनतथा अपने महत्व में गौण हो सकती है।. लेकिन सार्थक एवं महत्वपूर्ण कहानियों को लेकर जब हम उनका शिल्पगत अध्ययन करते हैं तो यह स्पष्ट हो जाता है कि इस युग के कहानीकार ने भाषा की लच्चेबाजी से निरंतर छुटकारा पाना चाहा है। कहानी के आरम्भ और अन्त को लेकर भी चौंकने की कोशिश नहीं हुई है। प्रतीक और उपमाओं के बाह्य सौंदर्य से भी उसने अपने को मुक्त किया है और इन सबके स्थान पर उसने उस शिल्प का आविष्कार किया है जो निहायत सादा, बोधमय लेकिन साथ ही प्रभावशाली, बांध रखने वाला तथा कथ्य की सार्थक अभिव्यक्ति में सक्षम है। अब उसका कथ्य महीनों, वर्षों में नहीं चलता बल्कि कुछ दिनों अथवा अनेक अवसरों पर क्षणों में पूर्ण हो जाता है। स्थूल फैलाव के स्थान पर उसमें गहराई आ गई और वह जीवन के बाहरी प्रसंगों को अन्तर्जगत से जोड़ता चलता है। इस सबसे शिल्प भी प्रभावित हुआ है और वह पिछले युग (स्वतन्त्रता से पूर्व) की तुलना में एकदम नया और समसामयिक, जीवन और स्थिति के अनुकूल लगता है। हमारे इस कथन में यह स्थापना अन्तर्निहित है कि आधुनिक कहानीकार अपने समय की बदलती हुई सामाजिक-आर्थिक तथा राजनैतिक स्थितियों से अवगत रहा है। और उसी के अनुकूल उसने अपनी अभिव्यक्ति के लिए योग्य नए शिल्प का सफल आविष्कार भी कर लिया है। यह नही कि विगत प्रतीकात्मकता को उसने उपेक्षित कर दिया है। लेकिन उसको अपने समय के कथ्य-के अनुकूल उसने प्रांजलता अवश्य दी है। "मानसरोवर के हंस" (कमलेश्वर) तथा "कील" (महीप सिंह) इस संदर्भ में विशेष रूप से दृष्टिव्य कहानियाँ है।

BRAOU

8.6 अभ्यास के प्रश्न

8.6.1 'अ' श्रेणी के प्रश्न

निम्न लिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 250 शब्दों में दीजिए

1. प्रेमचन्द-युग तक हिन्दी कहानी के विकास का निरूपण कीजिए।
2. स्वतंत्रता के पूर्व विकसित हिन्दी कहानी के प्रकारों का परिचय दीजिए।
3. "नई" कहानी के स्वरूप पर विचार कीजिए।
4. स्वतंत्रता के बाद हिन्दी कहानी के विकास की दिशाओं का विवेचन कीजिए।

8.6.2 'ब' श्रेणी के प्रश्न

निम्न लिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 125 शब्दों में दीजिएः-

1. "नई कहानी" की शिल्पगत क्या विशेषताएँ हैं?
2. हिन्दी की आंचलिक कहानी का परिचय दीजिए।
3. सचेतन कहानी से क्या तात्पर्य है?
4. अ-कहानी आन्दोलन की क्या मान्यताएँ है?
5. समान्तर कहानी पर टिप्पणी लिखिए।
6. पुरानी और नई कहानी में क्या अन्तर है?

8.7 नमूने के उत्तर

8.7.1 'अ' श्रेणी के प्रश्नोत्तर

प्रश्नः प्रेमचन्द-युग तक हिन्दी कहानी के विकास पर प्रकाश डालिए।

उत्तरः हिन्दी कहानी का वास्तविक इतिहास 20 वीं. सदी के आरंभ से शुरू होता है। 1900 ई. की "सरस्वती" में प्रकाशित किशोरीलाल गोस्वामी की कहानी "इन्दुमती" हिन्दी की पहली कहानी है। हिन्दी की आरम्भिक कहानियों में मास्टर भगवानदास की "प्लेग की चुडैल" रामचन्द्र शुक्ल की "ग्यारह वर्ष का समय", गिरजादत्त वाजपेयी की "पण्डित और पण्डितानी" के नाम लिए जा सकते हैं। बंग महिला की "दुलाई वाला" सरस्वती में सन् 1907 में प्रकाशित हुई जो हिन्दी की प्रथम मौलिक आधुनिक कहानी है और दूसरी 'इंदु' में प्रकाशित जयशंकर प्रसाद की कहानी "ग्राम" है। 1913 ई. में राजा राधिकारमण सिंह की "कानों में कंगना" प्रकाशित हुई। और गुलेरीजी की कहीनी "उसने कहा था" 1915 ई. की सरस्वती में प्रकाशित हुई।

इस युग के सर्वश्रेष्ठ कहानीकार प्रेमचन्द है। वैसे तो उन्होंने 1907 से ही उर्दू में धनपतराय के नाम से लिखना आरंभ कर दिया था लेकिन 1916 में उनकी मौलिक रचना "पंच परमेश्वर" पहली बार हिन्दी में छपी। प्रेमचंद्र की कहानियाँ अपने रचना विधान में उनके उपन्यासों से अधिक निर्दोष हैं। जीवन के हर पक्ष के चित्र उनमें अंकित हुए हैं। कुल मिलकर प्रेमकालीन जीवन की वे प्रतिनिधी कही जा सकती हैं, और पारिवारिक जीवन के आदर्श यहाँ भी केन्द्र में हैं। प्रेमचन्द ने घटना, कथानक, चरित्र और संवेदन सभी को केन्द्र में रखकर कहानियाँ लिखी है। स्पष्ट ही कहानी रचना के ये उत्तरोत्तर सूक्ष्म होते स्तर है। उनकी "ईदगाह", "मंत्र", "पूस की रात" और "कफन" जैसी अनेक कहानियाँ हैं जो किसी भी साहित्य की श्रेष्ठतम कहानियों से सहज तुलनीय है। मानव चरित्र के ऐसे आत्मीय अंकन विरल है जहाँ कि रचना संसार में हर पात्र यह अनुभव करें कि लेखक की सहनुभूति उसी के साथ है, यह चाहे "मंत्र" का आदर्शप्रिय बूढ़ा भगत हो चाहे "कफन के तीखे यथार्थ में स्नेह विद्रूप घिसू और माधव।

प्रेमचन्द के सहयोगी कहानीकारों में सुदर्शन, विश्वंभरनाथ शर्मा कौशिक, चतुरसेन शास्त्री, वृंदावनलाल वर्मा, भगवती प्रसाद वाजपेयी तथा भगवती चरण वर्मा प्रमुख हैं। सुदर्शन और कौशिक प्रेमचन्द से मिलते जुलते कहानीकार है। इन कहानीकारों की पारस्परिक तुलना में एक रोचक बात यह दिखेगी कि साधारण बोलचाल की भाषा में लिखने वाले प्रेमचन्द, सुदर्शन, कौशिक किसी न किसी पारिवारिक या सामाजिक आदर्श को लेकर चलते हैं। प्रेमचन्द-युग में इस तरह की सामाजिक कहानियों के साथ प्रासद की भावात्मक कहानियाँ भी प्रकाशित हुई।

BPRAOU

8.8 पठनीय पुस्तकें

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, नागरी प्रचारणी सभा, वारणासी
2. हिन्दी साहित्यः उद्भव और विकास : आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी कमल प्रकाशन, दिल्ली
3. हिन्दी साहित्य का इतिहासः : सम्पादक डॉ. नगेन्द्र नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली
4. हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास : डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
5. द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य-का इतिहास : डॉ. लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय राजपाल एण्ड संस, दिल्ली
6. हिन्दी कहानीः उद्भव और विकास : डॉ. सुरेश सिन्हा अशोक प्रकाशन, दिल्ली

इकाई-9: हिन्दी नाटक- ऐतिहासिक विकास और नये रूप

9.0 विषय प्रवेश
9.1 पाठ का उद्देश्य
9.2 पाठ परिचय
9.3 मूल पाठ
 9.3.1 हिन्दी नाट्य साहित्य
 9.3.2 भारतेन्दु-पूर्व नाट्य परंपरा
 9.3.3 भारतेन्दु-युग
 9.3.4 द्विवेदी युग
 9.3.5 प्रसाद युग
 9.3.6 प्रसादोत्तर युग
9.4 पाठ का सारांश
9.5 शब्दार्थ
9.6 अभ्यासार्थ प्रश्न
 9.6.1 'अ' श्रेणी के प्रश्न
 9.6.2 'ब' श्रेणी के प्रश्न
9.7 नमूने के प्रश्नोत्तर
 9.7.1 'अ' श्रेणी के प्रश्नोत्तर
 9.7.2 'ब' श्रेणी के प्रश्नोत्तर
9.8 पठनीय पुस्तकें

9.1 उद्देश्य

नाट्यकला भारत की अत्यंत प्राचीन कला है। नाटकों का प्रारंभ लोक रंजनार्थ हुआ है। भारतीय नाट्य परंपरा अत्यंत समृद्ध है। यह परंपरा हिन्दी साहित्य में भी आधुनिक काल में आरंभ हुआ। भारतेन्दु युग में गद्य की अनेक विधाओं का प्रारंभ हुआ जिनमें से नाटक साहित्य भी एक है। पौराणिक, ऐतिहासिक सामाजिक और अनेक प्रकार के नाटकों की रचना आधुनिक काल की देन है। भारतेन्दु युग, द्विवेदी युग तथा प्रसाद युग के नाटकों का विश्लेषण इस पाठ का उद्देश्य है।

9.2 पाठ-परिचय

भारतीय नाट्य-कला अत्यंत प्राचीन है। इसका स्थान वेदों के समक्ष माना गया है। इसे पंचम वेद की संज्ञा दी गई है। नाटकों का प्रारंभ लोक रंजनार्थ हुआ। दृश्य-शैली पर आधारित होने के कारण ज्ञान एवं भक्ति के संवर्धन एवं प्रचार का साधन भी नाटक ही हुआ। यही कारण है कि भारतीय नाट्य-परंपरा अत्यंत समृद्ध है। यह परंपरा हिन्दी साहित्य में भी आई। साथ ही साथ हिन्दी की नाट्य परंपरा पर अंग्रेज़ी, बँगला एवं पारसी नाट्य-शिल्प का भी प्रभाव पडा। युगीन परिस्थितियों से प्रभावित होता हुआ हमारा हिन्दी नाट्य-साहित्य विकसित हुआ है। इसका संक्षिप्त परिचय इस पाठ में प्रस्तुत किया गया है।

BRAOU

9.3 मूल पाठ

स्वरूप, गुण तथा विस्तार की दृष्टि से काव्य के अनेक भेद किए गए हैं। इन्द्रियों के आधार पर इसके दो भेद हैं- दृश्य और श्रव्य। दृश्य काव्य ही नाटक कहलाता है। दृश्य काव्य का आनंद अभिनय को देखकर आँखों द्वारा प्राप्त किया जाता है। यद्यपि दृश्य काव्य का संबंध कानों से भी है किन्तु उसका पूर्ण आस्वादन चक्षुरिन्द्रिय द्वारा देखे गए दृश्यात्मक अभिनयों पर ही आश्रित होता है। अतः इसे दृश्य काव्य कहा जाता है। यह अभिनय नट द्वारा मूल पात्र की वेशभूषा धारण कर, कुशल अभियन-कला द्वारा इस तरह उपस्थित होता है कि दर्शक को उससे मूल कथा का ही आनन्द प्राप्त होता है। नट विद्या पर आधारित यह दृश्य-काव्य नाटक कहलाता है। नाटक शब्द की उत्पत्ति नट धातु से मानी जाती है जिसका अर्थ है सात्विक भावों का प्रदर्शन। नाटक की परिभाषा करते हुए कहा गया है- अवस्थानुकृंतिर्नाट्यम अर्थात नट द्वारा मूलपात्र की विभिन्न अवस्थाओं की अनुकृति ही नाटक है। नाटक में नट पर मूलपात्र के भावों का आरोपण होता है। अतः नाटक को रूपक भी कहते हैं। रूपारोपात्रूरूपकम् अर्थात मूल-पात्र के स्वरूप का नट पर आरोपित होना रूपक है।

नाटकों की उत्पत्ति के संबंध में अनेक मत प्रचलित है। नाट्य शास्त्र का प्रामाणिक ग्रंथ भरत मुनि का नाट्यशास्त्र है। नाट्य-शास्त्र में नाट्य को लोकरंजन हेतु निर्मित पंचम वेद माना गया है। नाट्य शास्त्र के अनुसार - एक बार वैवस्वत मनु के दूसरे युग में लोग बहुत दुःखित हुए। इस पर इन्द्र तथा दूसरे देवताओं ने ज़ाकर ब्रहमाजी से प्रार्थना की कि आप मनोविनोद का कोई ऐसा साधन उत्पन्न कीजिए जिसके द्वारा सबका चित्त प्रसन्न हो सके। इस पर ब्रहमाजी ने चारों वेदों को बुलाया और उन चारों की सहायता से उन्हों ने पंचम वेद नाट्य-शास्त्र की रचना की। इस पंचम वेद नाट्य-शास्त्र के लिए संवाद ऋग्वेद से, गान सामवेद से, यजुर्वेद से नाट्य तथा अथर्ववेद से रस लिया गया था। विश्वकर्मा ने रंगमंच का निर्माण किया, शंकर ने तांडव तथा पार्वती ने लास्य नृत्य दिये और विष्णु ने चार नाट्य शैलियाँ प्रदान की। नाट्य-शास्त्र के इस विवेचन से नाटक की प्राचीनता तथा समाज के लिए उस के महत्व का ज्ञान होता है।

संस्कृत में नाट्य साहित्य की बडी समृद्ध परंपरा रही है। हिन्दी में भी नाट्य-साहित्य अत्यंत विकसित है।

9.3.1 हिन्दी नाट्य साहित्य

BRAOU

हिन्दी में गद्य विकास के साथ ही साथ नाटकों का भी विकास हुआ है। अतः इस का विकास गद्य की अन्य विधाओं के साथ-साथ ही होता रहा। किन्तु जीवन से निकटता एवं सजीव अभिनय परंपरा के कारण नाटक इतने आकर्षक एवं रोचक थे कि संस्कृत साहित्य एवं आधुनिक हिन्दी साहित्य के बीच नाटकों की परंपरा लुप्त होने नहीं पाई। यद्यपि उसका समुचित विकास आधुनिक काल में ही हो सका। हिन्दी के संपूर्ण नाट्य-साहित्य को हम निम्न भागों में बाँट सकते हैं:-

1. भारतेन्दु पूर्व नाट्य-परंपरा या लोक नाट्य।
2. भारतेन्दु युग।
3. द्विवेदी युग।
4. प्रसाद युग।
5. आधुनिक युग।

9.3.2 भारतेन्दु पूर्व नाट्य-परंपरा

हिन्दी में सर्वप्रधम नाटक गोविन्द हुआस नाटक माना जाता है। यह नाटक ब्रज भाषा में लिखा गया है। इसका समय सन् 1700 या सन् 1760 से पूर्व माना जाता है। इसके लेखक का नाम अज्ञात है किन्तु इसके संपादक का अनुमान है कि चैतन्य संप्रदाय के रूप गोस्वामी या जीव गोस्वामी इसके रचयिता हैं।

संस्कृत नाट्य साहित्य की सुदृढ़ परंपरा प्राप्त होने पर भी भारतेन्दु युग से पूर्व हिन्दी में एक दर्जन भी नाटक नहीं मिलते। जो हैं भी उनमें वार्तालाप, प्रवेश और प्रस्थान के अतिरिक्त नाटक का कोई प्रधान लक्षण नहीं मिलता। मध्य-युग में हिन्दी में नाट्य-सहित्य के विकसित न हो पाने के कई कारण थे जैसेः-

1. राष्ट्रीय स्तर पर रंगमंच का अभाव।
2. गद्य साहित्य का अभाव।
3. मुसलमान शासकों की उपेक्षा दृष्टि, क्यों कि इस्लाम में किसी की नकल उतारना पाप माना गया है।

किन्तु नाट्य-साहित्य के विकास के बाधक में ये तत्व गौण ही हैं, प्रधान नहीं। मुसलमानी शासन काल में मंदिरों का निर्माण हुआ। यदि वे चाहते तो राज प्रासादों में नाट्यशाला का भी निर्माण कर सकते थे। औरंगजेब को छोड़कर कोई भी मुस्लिम शासक इतना कट्टर नहीं था। हिन्दी का प्रथम "अभिनीत" नाटक "इन्दर सभा" लखनऊ के नवाब वाजिद अलीशाह की अभिभावकता में लिखा और खेला गया था। हाँ, यह अवश्य है कि दो संस्कृतियों के टकराव से उत्पन्न परिस्थितियों में लोगों का ध्यान इस लोक रंजक कला के विकास की ओर न जा सका हो। इसका दूसरा कारण यह भी था कि संतों की वाणी सांसारिकता के प्रति निराशामूलक थी। अतः नाट्य सृजन की प्रेरणा कुंठित हो गयी थी। सभी संतों ने संसार में दुःख की प्रधानता मानी। इस दुःखवाद के कारण नाटक "प्रबोध चन्द्रोदय" है। इसके हिन्दी में कई अनुवाद हुए। 17वीं शताब्दी में महाराज जसवंत सिंह ने, 17वीं शताब्दी में ब्रजवासी दास और जनअनन्य ने तथा सूरत्ति मिश्र ने। देव ने "देवमाया प्रपंच" के रूप में इसे परिवर्तित कर दिया। कालिदास के "शाकुंतलम" के भी कई अनुवाद हुए। हिन्दी में लिखे गए मौलिक नाटकों में सबसे पहला मौलिक नाटक रीवाँ नरेश विश्वनाथ सिंह का "आनंद-रघुनंदन" है। इसकी रचना सन् 1700 के लगभग हुई। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इसे ब्रजभाषा का नाटकत्वपूर्ण प्रथम नाटक माना है। इसी समय भारतेन्दु के पिता गिरधर दास ने "नहुष" नाटक लिखा। पौराणिक नाटक जनता में मनोरंजनार्थ रामलीला आदि के रुपों में फैले। इन नाटकों में साहित्यकता का अभाव था तथा ये पद्यबद्ध थे।

भारतेन्दु से पूर्व के नाटकों में पारसी थियेटर का योगदान महत्वपूर्ण है। सन् 1760 के लगभग पेस्टनजी फ्रामजी ने ओरिजिनल - थियेटिकल कंपनी खोली। इन में कोई प्रसिद्ध नाटककार तो नहीं हुआ किन्तु नाट्य विद्या को रंगमंच अवश्य प्राप्त हुआ। इस के अतिरिक्त और भी कुछ कंपनियाँ खुलीं। प्रत्येक कंपनी में एक नाटककार होता था जो कंपनी के लिए नाटक लिखता था। इन में रौनिक बनारसी, विनायक प्रसाद तालिब बनरसी, अहसान लखनवी बहुत प्रसिद्ध है। रौनक की गुलेबकावली और इन्साफ मुहमूद प्रसिद्ध नाटक हैं। इस के बाद भारतेन्दु युग प्रारंभ होता है।

BRAOU

9.3.3 भारतेन्दु युग

हिन्दी नाटकों का प्रारंभ एवं विकास यथार्थ में भारतेन्दु युग से ही मानना चाहिए। भारतेन्दु का युग नवीन और प्राचीन के संघर्ष का युग था। उन के नाटकों में यह संघर्ष प्रतिध्वनित होता है। भारतेन्दु ने दो तरह के नाटक लिखे हैः- अनूदित तथा मौलिक। मौलिक नाटकों में- वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति, चंद्रावली, विषस्य विषमम्धम्, भारत-दुर्दशा, नीलदेवी, अंधेर नगरी एवं प्रेम-जोगिनी आदि हैं। इन नाटकों में भारतेन्दु ने जीवन के सभी पक्षों का समावेश किया है। जैसे चंद्रावली में प्रेम का आदर्श है। नीलदेवी में ऐतिहासिक गौरव तो भारत-दुर्दशा में देश की विगलित अवस्था का वर्णन है। भारतेन्दु के अनूदित नाटक भी अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। इन में विद्या-सुंदर, पाखंड-विडंबनम्, धनंजय विजय, कर्पूर मंजरी, मुद्रा-राक्षस, भारत जननी आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। भारतेन्दु का सत्यहरिश्चंद्र नाटक मौलिक माना जाता है किन्तु आचार्य-रामचंद्र शुक्ल उस में बँगला नाटक की छाया देखते हैं। वैसे राजा हरिश्चंद्र की कहानी उस युग में इतनी प्रचलित थी कि उस की प्रेरणा भारतेन्दु को कई ओर से मिल सकती है। भारतेन्दु के नाटकों पर बंगला एवं संस्कृत के नाटकों का प्रभाव है। बँगला

नाटक अँग्रेजी नाटकों से प्रभावित है अतः अप्रत्यक्ष रूप से आप के नाटकों पर अँग्रेजी का भी प्रभाव है। इस तरह भारतेन्दु के नाटकों में भारतीय एवं युरोपीय नाट्य कला का सम्मिलित प्रभाव है।

भारतेन्दु का उद्देश्य नाटक के माध्यम से नवीन जन-चेतना को अभिव्यक्ति देना था तथा नव जागरण फैलना था। इसलिए भारतेन्दु के नाटकों का इतना व्यापक प्रभाव हुआ कि हिन्दी में अत्यधिक नाटक लिखे जाने लगे।

भारतेन्दु युगीन अन्य नाटककारों में प्रताप नारायण मिश्र एवं राधाकृष्ण दास अत्यंत प्रभावशाली थे। प्रतापनारायण मिश्र ने "गौ-संकट", "जुआरी-ख्वारी" और "हम्मीर-हठ" नाम से चार नाटक लिखे। इन नाटकों में तदयुगीन समाज का व्यापक चित्रण है। राधाकृष्णदास ने "महाराणी पद्मावती, महाराणा प्रताप, दुखिया बाला आदि नाटक लिखे।

भारतेन्दु युग के नाटकों की विशेषता यह है कि उनमें कथावस्तु जीवन के विविध क्षेत्रों से ली गई है। किसी नाटक में ऐकान्तिक प्रेम का निरूपण है तो किसी में समसामायि सामाजिक तथा धार्मिक समस्या का चित्रण है। कहीं ऐतिहासिक और पौराणिक वृत्त के आधार पर नाटक लिखा गया तो कंहीं देश की दुर्दशा का चित्र खींचा गया।

भारतेन्दु पूर्व युग में नाटकों के आधार सीमित थे। इस युग में उन्हें व्यापकता प्राप्त हुई। "नीलदेवी" और सती प्रताप" में इतिहास और पुराण की उज्जवल गाथाएँ हैं जो भारतीय संस्कृति में नारी के आदर्श स्वरूप को प्रस्तुत करती हैं। इनमें पाश्चात्य सभ्यता एवं संस्कृति के जागरण का प्रयास है। इस युग के अन्य नाटककारों ने भी नाटक के माध्यमअतीत की कथाओं से उदात्त चरित्रों का चयन कर अपने युग में नवजागृति फैलाई है। सामाजिक समस्याओं को लेकर भी कुछ नाटक लिखे गए। राष्ट्रीयता की भावना पर भी नाटकों की रचना हुई। इन नाटकों में विदेशी शासन से पीडित एवं कुचली हुई राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक दशा का चित्रण किया गया है। भारतेन्दु का "भारत-दुर्दशा" नाटक इसी श्रेणी में आता है। भारतेन्दु ने पुरानी सामाजिक रूढ़िवादी परंपराओं पर आघात करते हुए व्यंग्य और विनोद के नाटक भी लिखे हैं। इनके "अंधेरी नगरी" एवं "वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति? ऐसी ही प्रहसन है। इस युग में बालकृष्ण भट्ट ने "शिक्षादान" तथा राधातरण गोस्वामी, "बूढे मुँह मुहासे" नामक प्रहसन लिखे।

भारतेन्दु युग की नाट्य-रचना के संबंध में दो बातें विशेष रूप से ध्यान में रखने योग्य हैः-

1. धीरे धीरे देवता, गंधर्व, राक्षस आदि दैवी एवं पौराणिक पात्रों का चित्रण नाटकों में कम होने लगा। उसके स्थान पर मानव को स्थान मिला। उसकी बुद्धि एवं प्रतिभा का चित्रण किया जाने लगा। जनमासान्य के जीवन से उनका संबंध हुआ।

2. ब्रजभाषा के स्थान पर खड़ी बोली हिन्दी का नाटकों में प्रयोग हुआ। पद्य के स्थान में गद्य का प्रयोग हुआ।

3. शैली की दृष्टि से प्रस्तुत युग के नाटकों में संस्कृत की काव्यशास्त्रीय पद्धति का आधार लिया गया। नांदी पाठ, भरत वाक्य, स्वगत भाषण, अंकावतार, काव्यात्मक वातावरण आदि की योजना स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। कहीं-कहीं पारसी नाटक-शैली का प्रभाव भी दिखाई पड़ता है।

भारतेन्दु युग के अंतिम-चरण में पारसी नाटक कंपनियों के लिए भी कुछ उर्दू ढंग के मनोरंजक नाटकों की रचना हुई। किन्तु ये नाटक सरकार के खेल समझकर देखे जाते थे। उनमें साहित्यकता का अभाव था अतः उनका विशेष महत्व नहीं था। भारतेन्दु के बाद नाटकों की परंपरा कुछ क्षीण हो गई। द्विवेदी युगमें अनूदित नाटकों की अधिकता रही।

BRAOU

9.3.4 द्विवेदी युग

द्विवेदी युग मुख्य रूप से भाषा के परिमार्जन एवं विकास का काल था। इस युग में नाटकों की रचना की ओर अधिक ध्यान नहीं दिया गया। द्विवेदी युग में मौलिक एवं अनूदित दोनों तरह के नाटकों का निर्माण हुआ। अनुदित नाटकों की संख्या अधिक है। मौलिक नाटकों में ऐतिहासिक और पौराणिक नाटकों की प्रधानता है। सामाजिक जीवन पर आधरित नाटकों का अभाव है। ऐतिहासिक कथावस्तु की आधार शिला पर निर्मित नाटकों में जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी का "तुलसीदास" वियोगी हरि का "प्रबुद्ध यामुने" तथा मिश्रबंधु का "शिवाजी" आदि प्रमुख नाटक है। सामाजिक विषयों पर व्यंग्यमूलक नाटकों की रचना हुई। इन सामाजिक नाटकों में जीवन की असंगतियों एवं पाश्चात्य प्रभाव में विकृत भारतीय समाज पर व्यंग्य किया गया है। बद्रीनाथ भट्ट के "विवाह विज्ञापन" में पाश्चात्य ढंग की कृत्रिम साजसज्जा पर व्यंग किया गया है। पं. बल्देव प्रसाद मिश्र ने "लल्लाबाबू" में समाज की असंगतियों पर व्यंग्य किया है।

इस युग में पौराणिक गाथाओं के आधार पर थियेट्रिकल ढंग का नाटक भी बने। ये नाटक उर्दू में ही लिखे जाते थे। और केवल "तमाशा" या स्वाँग रूप में थे। इनमें साहित्यिकता एवं कलात्मकता का कोई रूप नहीं था।

अनूदित नाटकों में संस्कृत की अपेक्षा अंग्रेजी और बंगला के नाटकों के अनुवाद अधिक हुए हैं। पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव से समाज में अपने धर्म एवं संस्कृति के प्रति उपेक्षा की भावना विकसित हो रही थी। अंग्रेजी संस्कृति को बढावा देने का पूर्ण प्रयास चल रहा था। समाज की इस प्रवृत्ति का प्रभाव अनूदित नाटकों पर दिखाई देता है। संस्कृत नाटकों के अनुवाद में कमी के पीछे यही कारण था। बंगला के श्रेष्ठ नाटकों का अनुवाद पं.. रूपनारायम पांडेय, अंग्रेजी के शेक्सपीयर के नाटकों का अनुवाद पुरोहित गोपीनाथ तथा संस्कृत नाटकों का अनुवाद लाल सीताराम ने किया। पं. सत्यनारायण कविरत्न ने भवभूति के उत्तर रामचरित और मालतीमाधव का बड़ी सरस और साहित्यक भाषा में अनुवाद किया। बंगला से द्विजेंद्रलाल राय के नाटकों का अनुवाद रूपनारायण पांडेय एवं रामकृष्ण वर्मा ने किया। नाथूराम प्रेमी और धन्यकुमार जैन ने भी अनेक बंगला नाटकों का अनुवाद किया। अंग्रेजी नाटकों के अनुवाद में पुरोहित गोपीनाथ के साथ ही साथ गंगाप्रसाद पांडेय तथा मथुरा प्रसाद उपाध्याय का भी बहुत महत्वपूर्ण योगदान रहा।

BRAOU

इस युग के नाटकों में एक और वे नाटक हैं जिनमें नायक की सात्विक वृत्ति का चित्रण है। ये नाटक भारतीय परंपरा के आधार पर लिखे गए पौराणिक एवं ऐतिहासिक नाटक हैं। दूसरी श्रेणी में वे नाटक माने जा सकते हैं जिनमें पारसी नाट्य कला का प्रभाव था। तीसरे प्रकार के वे नाटक है, जिनमें दृश्य काव्य की अपेक्षा श्रव्य-काव्य के गुण अधिक हैं। इनमें मिश्रबंधु का "नेत्रोंतधीन", बदरी भट्ट के "चंद्रगुप्त", "बेनचरित्र", "दुर्गावती" आदि मैथिलीशरण गुप्त का "चंद्रहास" और जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी के "मधुर-मिलन" नाटकों की गणना होती है। इन नाटकों में श्रव्यात्मकता अधिक है।

यहाँ तक तो नाटककारों ने भारतेन्दु की मिश्रित शैली पर नाटक लिखे किन्तु इसके पश्चात् नाटककारों ने भारतेन्दु पद्धति का परित्याग कर पाश्चात्य नाट्य-शैली को अपनाया। इसके प्रभाव स्वरूप नाटकों में से प्रस्तावना, विषकंभक °आदि समाप्त कर दिया गया। अंकों को दृश्यों में विभाजित किया गया। दृश्य और सुच्य का भेद भी गायब हो गया। मंच पर उपस्थिति करनेवाले दृश्यों में कोई बंधन नहीं स्वीकार किया गया। यहीं से हिन्दी-नाटकों का आधुनिक युग प्रारंभ होता है। इसी के बाद नाटक के क्षेत्र में जयशंकर प्रसाद का आविर्भाव हुआ।

9.3.5 प्रसाद युग

प्रसाद-युग हिन्दी नाटकों का उत्थान काल कहा जाता है। प्रसाद जी के नाट्य-साहित्य में पदार्पण करने से नाट्य-साहित्य का कायाकल्प हो गया। प्रसाद जी से पूर्व पौराणिक ऐतिहासिक और काल्पनिक नाटक लिखे गए थे। पौराणिक एवं ऐतिहासिक नाटकों द्वारा भारत की प्राचीन संस्कृति, सभ्यता

और इतिहास का गौरवपूर्ण अंकन किया गया। जिससे देश के परतंत्र रहने पर भी जनमानस में अपनी संस्कृति की गरिमा के प्रति आदरभाव बना रहे।

आधुनिक हिन्दी-नाटकों के पूर्ण साहित्यिक स्वरूप का प्रस्फुटन पहली बार प्रसाद जी के ही नाटकों में दृष्टिगोचर होता है। अपने गंभीर ऐतिहासिक अध्ययन के आधार पर प्रसाद जी ने प्राचीन भारतीय गौरव, सभ्यता, संस्कृति और परंपरा का चित्रण करने वाले नाटकों का निर्माण किया। इन्होंने अपने नाटकों की कथावस्तु का चयन महाभारत के उत्तरार्ध काल से सम्राट हर्षवर्धन के काल तक से किया है क्योंकि वही भारतीय इतिहास का गौरव पूर्ण युग रहा है।

प्रसाद जी के प्रभाव से हिन्दी नाट्य कला में बहुत परिवर्तन हुए। नाटकों के बाह्य आकार एवं अंगों के विन्यास में परिवर्तन आया। प्राचीन नाट्य-शास्त्र में वर्जित दृश्यों को दिखाया जाने लगा, जैसे वध, आत्महत्या, युद्ध आदि के दृश्य। प्रसाद जी ने मनोवैज्ञानिक चरित्र-चित्रण का आधार लेकर पात्रों का अंकन किया। प्रसाद जी की नाट्य कला में भारतीय एवं युरोपीय दोनों नाट्य प्रणालियों का सुंदर समन्वय है। इन्हें जो चीज जहाँ उपयोगी प्रतीत हुई उसे निस्संकोच रूप से ग्रहण किया किन्तु अंधानुकरण नहीं किया। इन्होंने युरोपीय सिद्धांतों में से शील-वैचित्र्यवाद को स्वीकार तो किया किन्तु उसका पुर्ण अनुसरण न कर रस-विधान और शील-वैचित्र्य का सामंजस्य स्थापित किया। प्रसाद जी के नाटक- स्कन्दगुप्त, अजातशत्रु, चंद्रगुप्त, ध्रुवस्वामिनी, विशाख, कामना, जनमेजय का नागयज्ञ, राज्यश्री, सज्जन, करुणालय, प्रायश्चित और एक घूँट हिन्दी नाट्य-साहित्य के श्रेष्ठ रत्न हैं। उनकी नाट्य कला की प्रमुख विशेषताएँ हैं सांस्कृतिक धारा के अक्षुण्ण प्रवाह की भावना, दार्शनिक चिंतन, स्वाभाविक चरित्र कल्पना, राष्ट्रीयता का आग्रह, संघर्ष के द्वारा जीवन के मूल तत्व की खोज, नारी में शक्ति और चेतना की प्रतिष्ठा प्राचीन नीरस रूढ़ियों का बहिष्कार और नवीन युगानुकूल नाट्य-शैली की प्रतिष्ठा।

शैली एवं विषय की दृष्टि से इस युग के नाटकों में विविधता है। जिन्हें निम्न प्रकार से रखा जा सकता है:-

1. ऐतिहासिक नाटक

प्रसाद जी के स्कन्दगुप्त एवं चंद्रगुप्त इन नाटकों में प्राचीन संस्कृति के सजीव चित्र है। प्राचीन भारतीय संस्कृति की खोज नाटक-कला के माध्यम से हुई है तथा ऐतिहासिक तत्वों के विश्लेषण में मौलिक ढंग अपनाया गया है। प्रसाद जी के बाद ऐतिहासिक नाट्यकारों में हरिकृष्ण प्रेमी, उग्र गोविन्दवल्लभ पंत, उदयशंकर भट्ट और सेठ गोविंद दास प्रमुख हे। इन लेखकों ने नवीन शैली की उद्‌भावनाएँ की है। इनमें प्रेमी जी का "रक्षा बंधन", उग्रजी का "महात्मा-ईसा" और सेठ गोविन्द दास का "हर्ष" आदि विशेष प्रसिद्ध नाटक हैं। उदय शंकर भट्ट ने पौराणिक प्रसंगों पर गीति-नाट्यों की (विस्वामित्र, मत्स्यगंधा, राधा) रचना की है।

2. पौराणिक-नाटक :-

पौराणिक नाटकों के क्षेत्र में भी नवीन शैली विधान दिखाई पड़ता है। इस नवीन शैली विधान का संयोजन करनेवालों में सुदर्शन, माखनलाल चतुर्वेदी तथा उदयशंकर भट्ट आदि प्रमुख हैं। प्रसाद जी का "जनमेजय का नागयज्ञ" पौराणिक नाटक है। इसमें प्रसाद जी ने पौराणिक वातावरण को नवीन युग के आलोक से आलोकित किया है।

3. सामाजिक नाटक :-

सामाजिक नाटकों की रचना करनेवालों में सेठ गोविंद दास और उदयशंकर भट्ट के नाम उल्लेखनीय हैं।

BRAOU

4. भावात्मक-नाटक :-

भावात्मक नाटककारों में सुमित्रानंदन पंत का, उनके नाटक ज्योत्सना का विशेष महत्व है। इन्होंने कुछ गीति-नाट्य भी लिखे है। प्रसाद जी ने अंग्रेजी के एलीगोरी-रूपक-अन्योपदेश के आधार पर कामना नाटक लिखा। इसमें भाव एवं मनोविकारों का मानवीकरण है और प्रतीकात्मक शैली का प्राधान्य है। इसलिए कुछ विद्वान इसे "भावात्मक नाटक" कहते हैं और कुछ विद्वान इसे "प्रतीकात्मक नाटक" कहते हैं।

5. समस्या प्रधान नाटकों में प्रसद जी की ध्रुवस्वमिनी का स्थान है।

6. गीति नाट्य :- "करुणालय" - जयशंकर प्रसाद।

7. एकांकी

एक घूँट - जयशंकर प्रसाद।

इस तरह प्रसाद युग के प्रमुख कलाकार भी जयशंकर प्रसाद ही है। इन्होंने विषय और शिल्प की दृष्टि से हिन्दी नाट्य-साहित्य का पर्याप्त विकास किया। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि प्रसाद जी के नाटकों में पूर्वी और पश्चिमी तत्वों का समिश्रण है। कथावस्तु, रस, नायक, प्रतिनायक, विदूषक, शील-निरूपण भी है। भारतीय नाटककार भी है। भारतीय नाटककार सुखांत नाटक पसंद करते हैं तो पाश्चात्य कलाकार दुःखांत को। प्रसाद जी ने अपने नाटकों का अंत इस तरह किया कि उसे हम सुखांत भी कह सकते है और दुखांत भी। न उन्हें सुखांत कह सकते है और न दुखांत ही। वस्तुतः उनका अंत एक ऐसी वैराग्यपूर्ण भावना के साथ होता है। जिसमें नायक की विजय तो हो जाती है। किन्तु वह फल का उपभोग स्वयं नहीं करता, वह उसे प्रतिनायक को ही लौटा देता है। इस विचित्र अंत को प्रसादांत की संज्ञा दी गई है।

BRAOU

रंगमंच पर अभिनेयता की दृष्टि से प्रसाद के नाटकों में अनेक दोष हैं। उनका कथानक इतना विस्तृत एवं विश्रृंखलित है कि उसमें शिथिलता आ जाती है। अनेक ऐसे दृष्यों का आयोजन है जो रंग-मंच की दृष्टि से उपयुक्त एवं उचित नहीं है। लंबे-लंबे स्वगत कथन एवं वार्तालाप, गीतों का अत्यधिक प्रयोग, गूढ दार्शनिक उक्तियाँ आदि अभिनेयता में बाधक होते हैं।

रंगमंच पर अभिनेयता का दृष्टि से प्रसाद के नाटकों में अनेक दोष हैं। उनका कथानक इतना विस्तृत एवं विश्रृंखलित है कि उसमें शिथिलता आ जाती है। अनेक ऐसे दृष्यों का आयोजन है जो रंग-मंच की दृष्टि से उपयुक्त एवं उचित नहीं है। लंबे-लंबे स्वगत कथन एवं वार्तालाप, गीतों का अत्यधिक प्रयोग, गूढ दार्शनिक उक्तियाँ आदि अभिनेयता में बाधक होते हैं। वस्तुतः प्रसाद कवि पहले हैं नाटककार बाद में। फिर भी प्रसाद युग में हिन्दी-नाटकों का जो उन्नयन एवं विकास हुआ है वह अत्यंत महनीय है।

9.3.6 प्रसादोत्तर युग

प्रसादोत्तर युग में नाट्य लेखन की विस्तृत परंपरा रही है। इस युग में ऐतिहासिक, पौराणिक और सामाजिक नाटक लिखे गए हैं।

1. ऐतिहासकि नाटक :-

प्रसादोत्तर युग में ऐतिहासिक नाटकों की परंपरा का पर्याप्त विकास हुआ। इस क्षेत्र में हरिकृष्ण प्रेमी, वृन्दावन लाल वर्मा, गोविंद वल्लभ पंत, चंद्रगुप्त विद्यालंकार, सेठ गोविंद दास, उदयशंकर भट्ट तथा अन्य कई नाटककारों का उल्लेखनीय योगदान रहा। प्रेम जी के नाटकों में सुदूर अतीत के इतिहास को न लेकर प्रायः मुगल कालीन भारतीय इतिहास के संदर्भ को लेते हुए आधुनिक युग की अनेक राजनीतिक, सांप्रदायिक एवं राष्ट्रीय समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करने का सफल प्रयास किया है। उनके नाटकों में राष्ट्र-भक्ति, आत्मत्याग, बलिदान, हिन्दु-मुस्लिम एकता आदि भाव मिलते हैं। उन्होंने इतिहास का उपयोग आदर्शों की स्थापना के लिए किया हैं।

श्री वृन्दावन लाल वर्मा इतिहास के मर्मज्ञ हैं। इनके नाटकों में कथानक एवं घटनाओं पर विशेष बल मिलता है। वे कहीं कहीं घटना-प्रधान हो गए है, किन्तु फिर भी दृश्य-विधान की सरलता चरित्र-चित्रण की स्पष्टता, भाषा की उपयुक्ता एवं गतिशीलता तथा संवादों की संक्षिप्तता के कारण इनके नाटक अभिनय की दृष्टि से सफल हैं।

श्री गोविंद वल्लभ पंत ने अनेक सामाजिक एवं ऐतिहासिक नाटकों की रचना की हैं। इनके नाटकों पर संस्कृत, अंग्रेजी, पारसी आदि विभिन्न नाट्य परंपराओं का प्रभाव है। आपने अपने नाटकों में अभिनेयता का विशेष ध्यान रखा है।

2. पौराणिक नाटक

प्रस्तुत युग के नाटककारों में पौराणिक आधार लेकर अपने युग की प्रवृत्तियों का चित्रण करने के लिए पौराणिक लिखे हैं। इनमें सेठ गोविंद दास का "कर्तव्य" चतुरसेन शास्त्री का "मेघनाद", सद्गुरु शरण अवस्थी का "मंजलीरानी", रामवृक्ष बेनीपुरी का "सीता माँ", गोविंद वल्लभ पंत का "ययाति", लक्ष्मीनारायण मिश्र का "नारद की वीणा" और "चक्रव्यूह" तथा रांगेय राघव का "स्वर्गभूमि का यात्री" विशेष रूप से उल्लेखनीय नाटक हैं। आधुनिक नाटक साहित्य में इन नाटकों का बहुत महत्व है। इनमें पौराणिक चरित्रों के आधार पर पाठकों के सामने आदर्श प्रस्तुत किया गया है। तद्युगीन समाज की समस्याओं का समाधान ढूंढा गया है। कहीं नारी की समस्या को प्रस्तुत करना लेखक का लक्ष्य है तो कहीं जाति-पाँति के भेद-भाव का निराकरण।

इन नाटकों की दूसरी विशेषता यह है कि प्राचीन संस्कृति के आधार पर पौराणिक गाथाओं को असम्बद्ध एवं असंगत सूत्रों में संगति स्थापित करने का प्रयास किया गया है। तीसरी विशेषता यह है कि ये नाटक हमें आज जीवन में व्याप्त संकीर्ण विचारधारा से बाहर निकाल कर उदारता का संदेश देते हैं। रंगमंच की नाट्य-शिल्प की दृष्टि से इनमें कुछ कामियाँ अवश्य हैं किन्तु गोविंद वल्लभ पंत, सेठ गोविंद दास तथा लक्ष्मी नारायण मिश्र जैसे कुशल नाटककारों ने नाट्य-शिल्प का भी विशेष ध्यान रखा है। फलतः ये नाटक विषयवस्तु की दृष्टि से पौराणिक होते हुए भी प्रतिपादन शैली एवं कला के विकास की दृष्टि से आधुनिक हैं तथा आधुनिक रुचि एवं विचारधारा एवं प्रवृत्ति के अनुकूल हैं।

3. सामाजिक नाटक

वर्तमान युग में सामाजिक नाटक बहुत लिखे गए। इसका प्रमुख कारण देश में एक बौद्धिक जागरण था। केवल ऐतिहासिक या पौराणिक गाथाओं की ओर दृष्टि लगाए हुए लोगों का ध्यान अपने जीवन की ओर गया। आधुनिक जीवन के आदर्श, संघर्ष, दुःख एवं सुख नाटक का विषय बनने लगे। ये नाटक अधिकतर समस्या-प्रधान होते थे। इनके दो रूप हुए। 1. सामाजिक तथा 2. मनोवैज्ञानिक।

समस्या-प्रधान नाटकों का प्रारंभ मुख्यतः "इब्सन", "बर्नार्ड शा" आदि पाश्चात्य नाटककारों के प्रभाव स्वरूप हुआ। साहित्य एवं समाज का अन्योन्याश्रित संबंध है। ये दोनों एक दूसरे से कभी अलग नहीं किये जा सकते। समाज एवं साहित्य के संबंध के प्रति पाश्चात्य-विचारधारा यथार्थवादी रही है

BRAOU

तो भारतीय विचारधारा सदैव आदर्शवादी रही। आधुनिक युग में कहीं यथार्थ है कही आदर्श तो कहीं दोनों का सुदूर समन्वय प्राप्त होता है।

पाश्चात्य नाटकों की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप हमारे यहाँ भी समस्या नाटकों का प्रादुर्भाव हुआ। इन नाटकों में सामान्य-जीवन की समस्याओं का समाधान बौद्धिक धरातल पर ढूँढा गया। इनमें विशेषतः यौन समस्याओं को ही लिया गया है। बाह्य-द्वन्द्व की अपेक्षा आंतरिक या मानसिक द्वन्द्व अधिक दिखाया गया है। ये नाटक मनोवैज्ञानिक अधिक हो गए हैं। इस वर्ग में मुख्यतः लक्ष्मीनारायण मिश्र के नाटक आते हैं। रूपविधान की दृष्टि से इनको समस्या नाटक भी कहते हैं।

दूसरे वर्ग में वे सामाजिक नाटक है जिनमें युग एवं समाज की विभिन्न समस्याओं को चित्रण है। इस समस्याओ का समाधान प्रस्तुत करने के लिए आदर्शों की स्थापना की गई है। इन नाटकों को हम आदर्शवादी विचारधारा के अंतर्गत रख सकते हैं। इस वर्ग के सुविख्यात लेखक सेठ गोविंद दास, वृन्दावन लाल वर्मा, हरिकृष्ण प्रेमी, गोविंद वल्लभ पंत आदि हैं।

इनके अतिरिक्त प्रतीकवादी नाटकों की परंपरा भी दिखाई देती हैं। इस परंपरा का प्रारंभ जयशंकर प्रसाद की "कामना" नाटक से ही हो गया था। आधुनिक युग के प्रतीकवादी नाटकों में सुमित्रानंदन पंत का "ज्योत्सना", भगवती प्रसाद बाजपेयी का "छलना", सेठ गोविददास का "नवरस", कुमार हृदय का "नक्शे का रंग" डॉ लक्ष्मी नारायण लाल द्वारा रचित "मादा कैक्टस" एवं "सुंदर रस" सप्रसिद्ध नाटक हैं। इस वर्ग के नाटकों में विभिन्न पात्र विभिन्न विचारों या तत्वों के प्रतीक के रूप में प्रस्तुत किए गए हैं।

समस्या नाटकों के बाद हिन्दी में विकसित नाट्य रूप यथार्थवादी नाटक हैं जिनके प्रवर्तक उपेन्द्रनाथ अश्क हैं। इन नाटकों में भी सामाजिक समस्याएँ उठाई गई हैं, लेकिन इनमें बौद्धिक धरातल की समस्या पर विचार विमर्श नहीं होता है। - जीवन की यथार्थता में पैठने का प्रयत्न अश्क के नाटकों की विशेषता है। पात्रों के चरित्रांकन में मनोवैज्ञानिक गहराई मिलती है। यथार्थवादी प्रवृत्ति के अनुरूप संवाद और भाषा-शैली जीवन के अधिक समीप है। अश्क जी ने अपने नाटकों की मंचीयता का भी ध्यान रखा है। उनके उल्लेखनीय नाटक "स्वर्ग की झलक", "कैद", "उदात्त", "छठा बेटा", "अलग अलग रास्ते" आदि है।

हिन्दी नाटकों के क्षेत्र में सफल नये शिल्प प्रयोग करनेवाले नाटककार जगदीश चन्द्र माथुर, और मोहन राकेश हैं। विस्तृत रंग मंचीय संकेतों को साथ मंचीयता को ध्यान में रखकर उनके नाटक लिखे गये हैं। माथुर के दो नाटक हैं- एक था राजा और कोणार्क। मोहन राकेश के नाटक "आषाढ का एक दिन", "लहरों का राज हँस", और आधे अधूरे" हैं। कुछ समीक्षक "कोणार्क" से आधुनिक भाव बोध के नये नाटकों का आरंभ मानते हैं। इन नये नाटकों में वस्तु ऐतिहासिक या सामाजिक दोनों प्रकार की है। लेकिन वस्तु में सूक्ष्म मानवीय संवेदना का मनोवैज्ञानिक निरूपण मिलता है। वस्तुएँ संरचना या शिल्प में भी नवीनता है।

इस तरह हम देखते है कि आधुनिक युग में नाटक-साहित्य का व्यापक विकास हो रहा है। किन्तु रंग-मंच की अपनी सामाएँ होती हैं। रंग-मंच पर दृश्य एवं वातावरण की अभिव्यक्ति में भी सीमा होती है। बार-बार परदा गिरने एवं परिवर्तन के कारण दर्शक के रसानुभूति में भी बाधा उत्पन्न होती है। ऐसे ही समय में फिल्मों का विकास तेजी से होने लगा। फिल्म भी नाट्य शैली का ही विकसित रूप है किन्तु उनमें रंगमंचीय सीमा और असुविधा नहीं हैं। आज फिल्मों ने दर्शकों को अपनी ओर अधिक आकर्षित कर लिया है जिससे रंग-मंच की उपेक्षा हो रही है। इसी तरह दूरदर्शन पर दिखाए जानेवाले नाटक भी रंग-मंच के लिए खतरा बनकर उपस्थित हुए हैं।

BRAOU

9.4 सारांश

भारत में नाट्य-परंपरा अत्यन्त प्राचीन है। इसे वैदिक ज्ञान परंपरा के समकक्ष रखकर पंचम वेद के रूप में स्वीकार किया गया है। मानव में ज्ञानार्जन के दो साधन है- दृश्य और श्रवण। दृश्य-विधान द्वारा प्रस्तुत ज्ञान सहज ग्राह्य होता है। इस आधार पर ज्ञान के विचरण हेतु नाटकों का सृजन हुआ। प्रारंभ में इन नाटकों का लक्ष्य लोगों को ज्ञानात्मक उपदेश देना तथा धर्म का प्रसार करना था। धीरे-धीरे इसका रूप सामाजिक और लोक रंजक हुआ।

हिन्दी नाटकों का विकास संस्कृत नाटकों से हुआ है। प्रारंभ में नाटकों का हिन्दी में अनुवाद किया गया साथ ही मौलिक नाटकों की भी रचना हुई। बंगला तथा पारसी नाटक भी प्रेरणास्पद हुए। हिन्दी नाट्य-साहित्य के पाँच आयाम हैः-

1. भारतेन्दु-पूर्व परंपरा।
2. भारतेन्दु-युग।
3. द्विवेदी युग।
4. प्रसाद युग, तथा
5. आधुनिक युग।

इन पाँचों युगों में नाटक एवं रंगमंच का क्रमिक विकास हुआ है तथा इनकी चरम परिणति सिनेमा तथा दूरदर्शन के नाटकों के रूप में हुई हैं। भारतेन्दु-पूर्व नाट्य-साहित्य अपनी विकास दशा में था। इस समय ब्रजभाषा, मैथिली आदि में लोक-नाट्य की रचना हुई। ये नाटक पद्यात्मक अधिक हैं।

भारतेन्दु युग हिन्दी नाटक का यथार्थ रूप से प्रारंभिक युग ही है। गद्य की अन्य विधाओं के साथ-साथ इस युग में नाटकों का भी विकास हुआ। ब्रज और मैथिली के स्थान पर हिन्दी भाषा का प्रयोग नाटकों में हुआ। इस युग में मौलिक तथा अनूदित नाटकों का निर्माण हुआ। पूर्व और पाश्चात्य नाट्य-शैली का समन्वय हुआ।

द्विवेदी युग में नाट्य-शिल्प का अधिक विकास नहीं हुआ। द्विवेदी युग भाषा के परिमार्जन और विकास का युग हैं। उस में विद्वानों का ध्यान मुख्य-रूप से भाषा के विकास की ओर अधिक था साहित्य निर्माण की ओर कम। इस युग में अनूदित तथा मौलिक दोनों तरह के नाटक लिखे गए। सामाजिक दशा का चित्रण इस युग के नाटकों की विशेषता है। ये नाटक व्यंग्यात्मक भी हैं। मौलिक नाटकों में पौराणिक आधार लिया गया है। अनूदित नाटकों में संस्कृत, अंग्रेजी एवं बंगला के नाटकों के अनुवाद हैं। पारस थियेटर के लिए भी नाटक लिखे गये, किन्तु साहित्य की दृष्टि से उनका विशेष महत्व नहीं हैं।

प्रसाद युग हिन्दी नाटकों के उत्कर्ष का युग है। इस युग के सर्वाधिक प्रसिद्ध नाटककार जयशंकर प्रसाद थे। उन्होंने पौराणिक, सामाजिक, ऐतिहासिक, भावात्मक तथा प्रतीकात्मक आदि सभी प्रकार के नाटक लिखे हैं। नाटकों के पूर्ण साहित्यिक रूप का प्रस्फुटन पहली बार प्रसाद जी के ही नाटकों में हुआ। नाटक नाट्यशास्त्र के प्राचीन नियमों से मुक्त हुए। वध, आत्महत्या, युद्ध जैसे वर्जित दृश्यों को रंगमंच पर दिखाया जाने लगा। प्रसाद जी ने भारतीय नाट्य-शास्त्र के साथ ही साथ पाश्चात्य नाट्य-परंपरा के शील वैचित्र्य विधान का समावेश किया।

प्रसादोत्तर युग में भी नाटक साहित्य का व्यापक विकास हुआ है। इन लेखकों का प्रमुख उद्देश्य तत्कालीन समाज का चित्रण करना था। इसके लिए पौराणिक नाटकों को आदर्शरूप में प्रस्तुत किया गया है। ऐतिहासिक नाटकों को प्रेरणास्पद रूप दिया गया है। प्रस्तुत समाज की समस्याओं पर आधारित समस्या नाटकों का निर्माण हुआ है। इन नाटकों में मनोवैज्ञानिक पक्ष पर अधिक बल दिया गया। प्रतीकात्मक नाटकों का भी निर्माण हुआ हैं। माथुर, मोहन रागेश आदि ने नवीन प्रयोग किये हैं।

BRAOU

समाज के बदलते परिवेश में साहित्य के रूपों में भी विकास होता है। समाज की परिष्कृत रुचि एवं तकनीकी विकास के परिणाम रंगमंचीय नाटकों के स्थान पर सिनेमा एवं दूरदर्शन के नाटकों को अधिक लोकप्रियता प्राप्त हो रही है।

9.6 अभ्यास के प्रश्न

9.6.1 'अ' श्रेणी के प्रश्न

निम्न लिखित प्रश्नों का उत्तर लगभग 250 शब्दों में दीजिएः-

1. भारतेन्दु युग के नाट्य-साहित्य का परिचय दीजिए।
2. प्रसाद-युग के नाटकों की विशेषताएँ बताइए।
3. प्रसाददोत्तर युग की गद्य-प्रवृत्तियों का विश्लेषण कीजिए।
4. हिन्दी नाटक की शिल्प विधि का विकास स्पष्ट कीजिए।

9.6.2 'ब' श्रेणी के प्रश्न

निम्न लिखित प्रश्नों का उत्तर लगभग 125 शब्दों में दीजिएः-

1. भारतेन्दु युग के पूर्व नाट्य साहित्य का विकास न होने का क्या कारण है?
2. भारतेन्दु युग के पूर्व नाटक-साहित्य की गति-विधि पर प्रकाश डालिए।
3. द्विवेदी युग में नाटक-साहित्य का निरूपण कीजिए।
4. प्रसादोत्तर-युग में "सामाजिक नाटक" पर विचार कीजिए।

9.7 नमूने के प्रश्नोत्तर

BRAOU

9.7.1 'अ' श्रेणी के प्रश्नोत्तर (250 शब्दों में)

प्रश्नः भारतेन्दु युग का हिन्दी नाट्य-साहित्य
उत्तरः हिन्दी गद्य के क्षेत्र में भारतेन्दु युग प्रथम काल है। इस युग में साहित्य के क्षेत्र में खडी बोली हिन्दी का प्रवेश हो रहा था। गद्य की विभिन्न विधाओं का शनै शनै विकास इसी युग में हुआ। गद्य की अन्य विधाओं के साथ साथ नाटकों का भी विकास हुआ। यह युग प्राचीनता एवं नवीनता के संघर्ष के संघर्ष का युग था। इस युग में कुछ मौलिक नाटक लिखे गए तथा अनूदित नाटकों का भी निर्माण हुआ। भारतेन्दु का उद्देश्य नाटक के माध्यम से नवीन जागरण उत्पन्न करना था। नाटक की कथावस्तु जीवन के विविध क्षेत्रों से ली गई है। इन नाटकों में कहीं ऐकान्तिक प्रेम का निरूपण है तो कही तत्कालीन सामाजिक एवं धार्मिक समस्याओं का चित्रण है तथा कहीं ऐतिहासिक कताओं के आधार पर भी नाटकों का निर्माण हुआ है। प्राचीन भारतीय संस्कृति के गायक पुराणों की कहानियों के आधार पर पौराणिक नाटकों की भी रचना हुई। इस युग के नाटकों में पाश्चात्य सभ्यता एवं संस्कृति के अंधानुकरण के विरुद्ध भारतीय संस्कृति के जागरण का प्रयास है। राष्ट्रीयता की भावना पर भी नाटकों की रचना हुई। इनमें विदेशी शासन से पीडित, एवं कुछली हुई राजनीति, आर्थिक तथा सामाजिक दशा का चित्रण किया गया है। कुछ प्रहसनों का भी निर्माण हुआ जिनमें प्राचीन असंगत विचारधाराओं पर व्यंग्य किया गया है।

भारतेन्दु इस युग के प्रमुख नाटककार हैं। उनके अतिरिक्त प्रताप नारायण मिश्र, तथा राधाकृष्ण दास सुविख्यात लेखक हुए।

विशेषताएँ :-

प्रस्तुत युग के नाटक-साहित्य की कुछ विशेषताएँ इस प्रकार हैं:-

1. नाटकों में धीरे-धीरे गंधर्व, राक्षस आदि अतिमानवीय पौराणिक पात्रों के स्थान पर मानवीय चरित्रों का समावेश अधिक हुआ। नाटक देवलोक त्यागकर मानव लोक पर उतरे और जनजीवन का चित्र उसमें होने लगा।

2. ब्रजभाषा के स्थान पर खडी बोली का प्रयोग हुआ। पद्य के स्थान पर गद्य का प्रयोग।

3. शैली की दृष्टि से सस्कृत की काव्य-शास्त्रीय पद्धति का आधार लिया गयाहै। नांदी पाठ, भरत-वाक्य, स्वगत-भाषण, अंकों की योजना, "आदि। कहीं कहीं पारसी नाटक शैली का भी प्रभाव है।

   इस तरह के नाटकों में पूर्व और पाश्चात्य का समन्वित रूप है।

9.8 पठनीय पुस्तकें

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास – आचार्य रामचन्द्र शुक्ल।
2. हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास – डॉ. गणपति चन्द्र गुप्त।
3. हिन्दी नाटक और रंगमंचः पहचान और परख – डॉ. इन्द्रनाथ मदान।
4. हिन्दी नाटकः उद्भव और विकास – डॉ. दशरथ ओझा।

BRAOU

इकाई-10: एकांकी और श्रव्य रूपक: ऐतिहासिक विकास क्रम

10.0 विषय प्रवेश
10.1 पाठ का उद्देश्य
10.2 पाठ परिचय
10.3 मूल पाठ
    10.3.1 एकांकी की परिभाषा
    10.3.2 एकांकी के तत्व
    10.3.3 एकांकी के प्रकार
    10.3.4 हिन्दी एकांकी का विकास
    10.3.5 श्रव्य रूपक की परिभाषा
    10.3.6 श्रव्य रूपक के तत्व
    10.3.7 रेडियो रूपक के प्रकार
    10.3.8 हिन्दी में रेडियो रूपक का विकास
    10.3.9 मूल्यांकन
10.4 पाठ का सारांश
10.5 पारिभाषिक शब्द-अर्थ
10.6 अभ्यासार्थ प्रश्न
    10.6.1 'अ' श्रेणी के प्रश्न
    10.6.2 'ब' श्रेणी के प्रश्न
10.7 नमूने के प्रश्नोत्तर
    10.7.1 'अ' श्रेणी के प्रश्नोत्तर
    10.7.2 'ब' श्रेणी के प्रश्नोत्तर
10.8 पठनीय पुस्तकें

BRAOU

10.0 विषय प्रवेश

एकांकी और श्रव्य-रूपक ये दोनों विधाएँ ऐसी हैं, जिनका विकास आधुनिक युग में जीवन की नई स्थितियों और नए उपकरणों के कारण हुआ। एकांकी आज के व्यस्त जीवन में कम से कम समय में अधिक से अधिक स्वस्थ, सार्थक और सोद्देश्य मनोरंजन की आवश्यकता की परिपूर्ति के लिए विकसित हुआ, तो, श्रव्य-रूपक का जन्म ही रेडियो के लिए हुआ।

10.1 पाठ का उद्देश्य

एकांकी और श्रव्य-रूपक के विकास का विवेचन करना ही इस पाठ का उद्देश्य है।

एस पाठ के अध्ययन से आप जान सकेंगे कि –

(1) एकांकी नए जीवन की आवश्यकताओं के अनुरूप किस प्रकार विकसित हुआ,
(2) हिन्दी में एक सर्वथा नई विधा- रेडियो रूपक का विकास किस प्रकार हुआ, और –
(3) एकांकी व रेडियो रूपक में क्या अन्तर है, क्या समानता है और दोनों एक-दूसरे में कैसे रूपान्तरित किये जा सकते हैं।

10.2 पाठ परिचय

हिन्दी साहित्य के आदुनिक काल में गद्य की विभिन्न विधाओं का अपूर्व प्रसार हुआ। इनमें प्रमुख है- एकांकी। आधुनिक जीवन की व्यस्तता में से कुछ समय निकालकर रंगमंच पर प्रस्तुत किये जाने योग्य छोटे-छोटे एक अंक या सीमित दृश्यों वालो प्रहसनों तथा गंभीर लघु नाटिकाओं की रचना की गई। स्पष्ट ही एकांकी आज के व्यस्त दर्शकोंको ज्ञानवर्द्धन के नए साधन- रेडियो के लिए रचा गया। प्रस्तुत पाठ में इन दोनों विधाओं के मूल तत्वों, प्रवृत्तियों और विकास-क्रम का संक्षिप्त अनुशीलन है। साथ ही यह भी रेखांकित किया जा रहा है कि साहित्य की विभिन्न विधाओं के जन्म और विकास के लिए सामाजिक आर्थिक परिस्थितियाँ कारण होती हैं। एकांकी और रेडियो-रूपक इसी तथ्य का परिचायक हैं। यह भी ज्ञातव्य है कि ये दोनों वास्तव में एक ही विधा के दो अंग हैं- एकांकी दृश्यकाव्य है तो रेडियो-रूपक ध्वनि काव्य। प्रस्तुत पाठ का अध्ययन इन तथ्यों को ध्यान में रखकर ही किया जाना चाहिए।

10.3 मूल पाठ

10.3.1 एकांकी की परिभाषा

एकांकी का अर्थ है एक अंक वाला नाटक। आधुनिक युग के व्यस्त जीवन में लम्बे लम्बे नाटकों के देखने का अवकाश कम मिलता है। इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए एक अंक और सीमित दृश्यों वाले एकांकियों की रचना हुई। एकांकी नाटक का ही लघु रूप नहीं है। इसकी अपनी पहचान है, अपनी निजी विशेषतायें हैं और साहित्य की एक स्वतंत्र विधा के रूप में यह समादृत है। एकाकी की लोकप्रियता भले ही आज बढ़ी हो, इसका प्राचीनतम रूप संस्कृत साहित्य में 'उपरूपक' के रूप में मिलता है। अपने आधुनिक रूप में एकांकी पाश्चात्य 'वन-एक्ट-प्ले' से प्रभावित है। एकांकी पर विचार करते हुए पंडित सदगुरु शरण अवस्थी लिखते है कि "एकांकी नाटक का सुनिश्चित और सुकल्पित एक लक्ष्य होता है। उसमें केवल एक ही घटना, परिस्थिति या समस्या प्रबल होती है। कार्य-कारण की घटनावली अथवा कोई गौण परिस्थिति अथवा समस्या के समावेश का उस में स्थान नहीं होता। एकांकी नाटक के वेग सम्पन्न प्रवाह में किसी प्रकार के अन्तर्प्रवाह के लिए स्थान नहीं होता।" डॉ. नगेन्द्र इसे और स्पष्ट करते हुए लिखते है कि- "एकांकी में हमें जीवन का एक क्रमबद्ध विवेचन न मिलकर उसके एक पहलु, एक महत्वपूर्ण घटना, एक विशेष परिस्थिति का चित्र मिलता है।" एकांकीकार उपेन्द्रनाथ अश्क के मतानुसार "एकांकी जीवन की एक झाँकी मात्र देता है " डॉ. रामकुमार वर्मा ने एकांकी की कुछ विशेषताओं को दृष्टि में रखते हुए लिखा है कि "एकांकी में किसी एक प्रमुख घटना या परिस्थिति से संबंधित एक संवेदना होती है। उस संवेदन का विकास कौतूहलपूर्ण नाटकीय शैली में होता है। संघर्ष एकांकी का प्राण है अतः बाह्य संघर्ष के साथ आंतरिक संघर्ष की योजना से इसका सौन्दर्य बढ़ जाता है। विस्तार के अभाव में प्रत्येक घटना कली की भाँति खिलकर पुष्प की भाँति विकसित हो उठती है।"

BRAOU

एकांकी की ऊपर दी गई परिभाषायें प्रसिद्ध आलोचकों और एकांकीकारों की हैं। इनमें एकांकी के तत्वों और रचना-प्रक्रिया पर भी प्रकाश डाला गया है। इनको दृष्टि में रखकर संक्षेप में कहा जा सकता है कि "एकांकी नाटक का वह रूप है जो रंगमंच पर अभिनय और दृश्य-संयोजन के द्वारा सीमित अवधि और संक्षिप्त कथावस्तु के साथ जीवन के एक पक्ष, एक परिस्थिति, घटना या चरित्र को उसके भीतरी संघर्ष के साथ ऐसे कौतूहलपूर्ण ढंग से प्रस्तुत करता है कि दर्शक को उससे विचार, जीवन-मूल्य और दृष्टि मिल सके और उसका मनोरंजन भी हो।

10.3.2 एकांकी के तत्व

एकांकी के सात प्रमुख तत्व हैं, जिनका संक्षिप्त विवेचन इस प्रकार है-

(अ) कथावस्तु

एकांकी का आधार है कथावस्तु। यह संक्षिप्त कौतूहलपूर्ण, तीव्र गतियुक्त और प्रभावोत्पादक होना चाहिए। एकांकी का आकार सीमित होता है। यह नाटक के समान जीवन के विस्तार और वैविध्य का चित्रण नहीं कर सकता। लेकिन, जीवन के एक पक्ष या प्रभाव समग्र हो। एकांकी की कथावस्तु ऐतिहासिक या पौराणिक हो सकती है, या, आज की सामाजिक-राजनीतिक समस्याओं पर आधारित हो सकती है। एकांकी की कथा के विकास में तीन अवस्थायें आती हैं- आरम्भ, विकास और चरम सीमा। एकांकी का आरम्भ कौतूहल जगाने वाला होना चाहिए। पर्दा उठने के क्षण के साथ ही दर्शक की उत्सुकता को बाँधनेवाली कथावस्तु एकांकी के लिए आवश्यक है। इस उत्सुकता के क्रमिक विकास के लिए संघर्ष या द्वन्द्व आवश्यक है। यह संघर्ष बाहरी भी हो सकता है, और भीतरी भी, किन्तु भीतरी संघर्ष या अन्तर्द्वन्द्व को अधिक महत्व दिया जाता है। जैसे किसी पात्र में विरोधी भावों का टकराव या कर्तव्य-अकर्तव्य के बीच द्वन्द्व। घटनाओं का विकास इस संघर्ष को तीव्र करता है। इसके बाद चरम सीमा आती है। अर्थात एकांकी में चरित्रों, परिस्थितियों, घटनाओं और अन्य कार्यों का विकास होते होते धीरे-धीरे ऐसा बिन्दु आ जाता है जब एकांकी है । एकांकीकार रामकुमार वर्मा इस तथ्य को बादल और बिजली के रूपक से इस प्रकार समझाते हैं कि एकांकी में स्थितियाँ और घटनायें धीरे-धीरे सघन होती हुई उसी प्रकार बढ़ती है, जिस प्रकार आकाश में वर्षा के कालेबादल छाते है। तब चरम सीमा बिजली के समान कौंध उठती है, अर्थात एकांकी का चरम अर्थ दर्शक ग्रहण करलेता है और उसके रस में भीगने लगता है। कई लेखक एकांकी की कथावस्तु में चरम सीमा को आवश्यक नहीं मानते। उदाहरण के लिए सेठ गोविन्ददास के लिखे एकांकी "स्पर्धा" में कोई चरम सीमा नहीं है फिर भी इतना तो माना जा सकता है कि एकांकी की चरम सीमा उसकी अन्तिम अवस्था होती है जिसमें एकांकी का उद्देश्य प्रकट होता है।

(आ) चरित्र-चित्रणः

एकांकी में पात्रों की संख्या सीमित होती है, लेकिन यह कोई बंधन नहीं है। एकांकी की विषय-वस्तु के अनुसार पात्र अधिक भी हो सकते हैं, जैसे चतुरसेन शास्त्री के 'सीताराम' नामक एकांकी में 16 पात्र हैं। एक पात्र वाले एकांकी भी लिखे गए हैं जैसे भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के 'विषस्य विषमौषधम' में एक ही पात्र है। पात्रों का चरित्र-चित्रण कथानक के विकास में सहायक होता है। एकांकी में नायक या नायिका प्रधान चरित्र होते हैं, लेकिन कई ऐसे एकांकी भी लिखे गए हैं। जिनमें कोई घटना, स्थिति या समस्या ही प्रमुख होती है, नायक या नायिका नहीं। सत्येन्द्र शरत और रामकुमार वर्मा ने कई अभिनेय एकांकियों की रचना की जिनमें कोई स्त्री पात्र नहीं है। इसके पीछे एक कारण है। इन दिनों मंच पर अभिनय करने के लिए स्त्रियों पर बंधन था, इसलिए इस तरह के एकांकी लिखने पड़े। स्वयं डॉ. रामकुमार वर्मा ने कई ऐसे एकांकी लिखे जैसे 'इलेक्शन', लेकिन अब समय बदल चुका है और हिन्दी भाषी प्रदेशों में भी स्त्रियाँ मंच पर आ रही हैं।

BRAOU

(इ) कथोपकथन :

कथोपकथन या संवाद एकांकी का प्राण तत्व है। चरित्र का उद्घाटन, वातावरण निर्माण और गतिशीलता कथोपकथनों से ही संभव है। ये संवाद जितने संक्षिप्त, सारगर्भित और प्रवाहपूर्ण होंगे उतना ही एकांकी में सक्रियता आएगी।

(ई) देशकाल और वातावरण :

एकांकी जिस युग और प्रदेश की कथा पर आधारित है उसके अनुकूल वातावरण उस्थित करना आवश्यक है। यह तत्व ऐतिहासिक व पौराणिक एकांकियों में विशेष होता है। एकांकीकार संवादों के अलावा अपने रंगमंच-निर्देशों द्वारा भी वातावरण प्रस्तुत करने में सहायक होता है। इसी के अन्तर्गत 'संकलनत्रय' की भी बात आती है, अर्थात एक सम्पूर्ण एक ही स्थान पर एक ही समय में घटित होना चाहिए।

(उ) उद्देश्यः

साहित्य की अन्य विधाओं की तरह एकांकी का भी एक निश्चित उद्देश्य होता है। ठीक है कि मनोरंजन के उद्देश्य से ही एकांकी की लोकप्रियता बढ़ी, पर मनोरंजन करने वाली रचनाये साहित्य में बहुत समय तक टिक नहीं सकतीं। एकांकी की संक्षिप्त और प्रभावोत्पक संरचना का लाभ उठाते हुए लेखकों ने इसके माध्यम से अनेक राजनीतिक-आर्थिक समस्याएँ, जीवन-दर्शन, नैतिक मानदण्ड और वैचारिक मान्यताओं का प्रतिपादन किया है। उदाहरण के लिए जगदीश चन्द्र माथुर का 'रीढ़ की हड्डी' देहैज-प्रथा पर चोट करता है, उपन्द्रनाथ 'अश्क' का 'सूखी डाली संयुक्त परिवार' के टूटने की प्रक्रिया बतलाता है।

(ऊ) भाषा शैलीः

प्रसंगानुकूल, पात्रानुकूल और समयानुकूल भाषा एकांकी को सफल बनाने के लिए आवश्यक है। एक सुशिक्षित और एक अशिक्षित व्यक्ति की भाषा में अन्तर होगा, राजसभा में प्रयुक्त भाषा और घर के सदस्यों की आपसी बादचीत की भाषा में अंतर होगा ही। इसी को ध्यान में रखते हुए संस्कृत नाटकों में राजा, सेनापति, मंत्री आदि ऊँचे दर्जे के पात्रों से संस्कृत बुलवाई जाती थी, और स्त्री पात्रों दास-दासियों से उस समय की लोक भाषा प्राकृत बुलवाई जाती थी,क्योंकि इस समय के यथार्थ जीवन में भी ऐसा ही होता था। आज भी पढ़े लिखे पात्रों की भाषा के बीच में अंग्रेज़ी के शब्दों का प्रयोग या अनपढ़ स्त्री-पुरुषों की भाषा में बोलियों का प्रयोग करवा कर स्वाभाविकता पैदा की जाती है।

(ऋ) अभिनयएवं रंगमंच-निर्देशः

एकांकी मुख्यतः अभिनय के लिए लिखे जाते हैं। अंग्रेज़ी में तो एकांकी का जन्म ही ऐसी अभिनेय लघु नाटिका के रूप में हुआ जो मुख्य नाटक के पहले दर्शकों को एकत्र करने के लिए दिखाई जाती थी और जिसे पटोत्थापक (कर्टनरेज़र) कहा जाता था। अभिनय व रंगमंच की दृष्टि से एकांकीकार आवश्यक निर्देश लिख देते हैं। फिर भी एकांकी की अभिनेयता उसके निर्देशक और अभिनेताओं पर अधिक निर्भर है।

स्वपरीक्षणार्थ प्रश्नः-

(1) एकांकी से अभिप्राय क्या है?
(2) आज के जीवन-क्रम की दृष्टि सेएकांकी क्यों लोकप्रिय है?
(3) एकांकी के तत्वों में कौन-सा तत्व आपको सर्वाधिक महत्वपूर्ण लगता है, और क्यों?
(4) किसी एकांकी की सफलता का श्रेय एकांकीकार को दिया जाना चाहिए या निर्देशक को- विचार कीजिए।

10.3.3 एकांकी के प्रकार

विषय-वस्तु, शिल्प और प्रस्तुतीकरण की दृष्टि से एकांकी के अनेक प्रकार हैं। संस्कृत साहित्य में एकांकियों के ग्यारह भेद बताये गए हैं। ये हैं- व्यायोग, गोपठी अंक, भाण, उल्लास, प्रेखण, श्रीगदित, विलासिका, इल्लीश, वीथी, नाट्यरासक और प्रहसन। आधुनिक एकांकियों को अलग-अलग आधारों पर अलग-अलग प्रकारों में बाँटा जा सकता है। जैसे- विषयवस्तु के अनुसार सामाजिक, ऐतिहासिक, मनोवैज्ञानिक। उद्देश्य के आधार पर समस्यामूलक, हास्य व्यंग्यात्मक आदि। शिल्प के आधार पर इसके चार भेद हैं- दृश्य एकांकी इसे रंगमंचीय एकांकी भी कहा जाता है, इसकी रचना मुख्यतः अभिनय के लिए होती है। रेडियो एकांकी, इसे ध्वनि-रूपक भी कहा जाता है। इससे ध्वनि द्वारा प्रस्तुतीकरण होती है। एकपात्रीय एकांकी या मोनोलॉग, और पद्य एकांकी जिसके अन्तर्गत 'फैण्टेसी', गीतिनाट्य आदि आते हैं।

BRAOU

10.3.4 हिन्दी एकांकी का विकास

एकांकी का मूल संस्कृत साहित्य में है, लेकिन उसके आधुनिक रूप-निर्माण पर अंग्रेज़ी का प्रभाव है। इसके अतिरिक्त आज के युग में एकांकी-नाटक के अपूर्व विकास का श्रेय आज के व्यस्त जीवन, औद्योगिक साधनों और कम समय में श्रेष्ठ व सोद्देश्य मनोरंजन चाहने वाले दर्शक वर्ग को जाता है। स्वयं यूरोप में एकांकी का विकास पटोत्थापक या 'कर्टेन रेज़र' के रूप में हुआ। कहा जाता हैकि सन् 1903 में डब्ल्यू.डब्ल्यू. जेकब की लिखी 'बन्दर का पंजा' (मंकी ज़ पॉ) नामक लघु नाटिका कर्टेन रेज़र के रूप में दिखाई गई तो कई दर्शक इस से इतना प्रभावित हुए कि मुख्य नाटक देखे बिना ही प्रेक्षागृह से उठकर चले गए। उसके बाद से पटोत्थापक दिखाना बंद कर दिया गया, लेकिन यहीं से स्वतंत्र एकांकी नाटकों का जन्म हुआ।

संस्कृत साहित्य में तो एकांकी नाटक की अपनी उपयोगिता और अपनी पहचान है। हिन्दी में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने 'नीलदेवी', 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' आदि कई एकांकी नाटक व प्रहसन लिखे। आधुनिक शिल्प की दृष्टि से ये एकांकी बहुत पिछड़े हुए। दिखाई देते हैं। इस लिए कुछ आलोचक जयशंकर प्रसाद लिखित 'एक घूँट' को हिन्दी का प्रथम एकांकी मानते है, तो कुछ के मतानुसार रामकुमार वर्मा के 'बाद की मृत्यु' को यह श्रेय जाना चाहिए। भारतेन्दु-युगीन एकांकी आधुनिक शिल्प की दृष्टि से कमज़ोर होने के बावजूद विषय-वस्तु और उद्देश्य की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। हिन्दी एकांकी-साहित्य का आरम्भ भारतेन्दु और उनके साथी लेखकों ने ही किया। इसके बाद द्विवेदी-युग में सुदर्शन, रामनरेश त्रिपाठी, पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' का नाम उल्लेखनीय है। जयशंकर प्रसाद ने 'एक घूँट' की रचना की, जिसमें आधुनिक एकांकी के सारे तत्व मौजूद है। इसके उपरान्त डॉ. रामकुमार वर्मा, भुवनेश्वर, उपेन्द्रनाथ अश्क, जगदीशचन्द्र माथुर आदि की पीढ़ी आई। तब तक रंगमंच की आवश्यकता बढ़ चुकी थी और अभिनय तथा रेडियो पर प्रस्तुत करने के लिए एकांकी-साहित्य की मांग ज़ोर पकड़ चुकी थी। लेकिन इसके साथ हिन्दी के एकांकीकारों ने साहित्यिक गुणवत्ता का भी ध्यान रखा। यही कारण है कि इनकी एकांकी-रचनायें पठनीय भी है और अभिनेय भी। भुवनेश्वर का लिखा 'कारवाँ' तीखे व्यंग्य से भरा पश्चिमी शैली पर लिखा आलोचनात्मक एकांकी है। सेठ गोविन्ददास, गोविन्द वल्लभ पंत, उदय शंकर भट्ट विष्णु प्रभाकर, भगवती चरण वर्मा, लक्ष्मी नारायण लाल, विनोद रस्तोगी, सत्येन्द्र शरत, मोहन राकेश आदि आज के प्रमुख एकांकी-नाटक कार हैं। प्रवृत्तियों की दृष्टि से हिन्दी एकांकी मुख्यतः सामाजिक, राजनीतिक, मनोवैज्ञानिक, समस्यामूलक और व्यंग्यात्मक रही है। आज रंगमंच और प्रस्तुतीकरण की भी दृष्टि से एकांकी के क्षेत्र में नए प्रयोग हो रहे हैं। इस के अनुसार विषय-वस्तु भी बदल रही है। आज 'ओपेन थियेटर' या खुला रंगमंच अधिक लोकप्रिय है। नुक्कड़ नाटक के रूप में भी एकांकी आज के जनजीवन के साथ अधिक से अधिकजुड़ रहा है।

BRAOU

स्वपरीक्षणार्थ प्रश्नः-

(1) सस्कृत में एकांकी के कितने भेद किए गए है?
(2) यूरोप में एकांकी का जन्म कैसे हुआ?
(3) हिन्दी एकांकी के विकास के कारण क्या है?
(4) हिन्दी एकांकी की मुख्य प्रवृत्तियाँ बतलाइए।
(5) 'खुला रंगमंच' से क्या आशय है?

10.3.5 श्रव्य रूपक की परिभाषा

श्रव्य-रूपक या ध्वनि रूपक या रेडियो-रूपक हिन्दी नाटक-साहित्य की आधुनिक उपलब्धि है। आकाशवाणी (रेडियो) के विस्तार के साथ-साथ और उसके निमित्त ही हिन्दी में श्रव्य-रूपक का विकास हुआ। वैसे, संस्कृत में काव्य (साहित्य) के दो प्रकार माने गए-दृश्य और श्रव्य। नाटक व एकांकी को दृश्य काव्य और कविता को श्रव्य काव्य के अन्तर्गत माना गया। लेकिन आधुनिक युग में श्रव्य काव्य का स्वरूप ही बदल गया है। अब इसका संबंध रेडियो के साथ जुड़ गया है। रेडियो-रूपक के लिए विद्वानों ने अलग-अलग नामों का प्रयोग किया है, जैसे डॉ. रामकुमार वर्मा इसे 'ध्वनि नाटक'

कहते हैं, डॉ. दशरथ ओझा 'रेडियो रूपक' तो डॉ. चन्द्रशेखर ने इसे 'अनाटक' कहा है, क्योंकि उनके मतानुसार नाटक तो केवल मंचपर प्रस्तुत किया जाता है, और रेड़ियों में मंच नहीं होता, इसलिए यह 'अनाटक' है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि रेडियों-रूपक रचना-विधान की दृष्टि से नाटक साहित्य का ही एक रूप है जिसे संवादों व ध्वनियों के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है।

10.3.6 श्रव्य-रूपक (रेडियो रूपक) के तत्व

रेडियो रूपक का विकास यद्यपि अधिक समय नहीं हुआ, किन्तु एक स्वतंत्र विधा के रूप में यह प्रतिष्ठित हो चुका है। केवल ध्वनि पर आश्रित होने के कारण रेडियों-रूपक की एक विशिष्ट संरचना होती है। यह वास्तव में संकेतों की कला है, जिसमें शब्दों, ध्वनि प्रभावों और संगीत के द्वारा श्रोताओं की कल्पना में चित्रों का निर्माण किया जाता है, अर्थात रेडियो रूपक कार के पास दो ही माध्यम होते हैं- संवाद और ध्वनि-प्रभाव। इसलिए रेड़ियों-रूपक के तत्वों पर विचार करना आवश्यक है। ये तत्व पाँच हैं

(क) कथावस्तु :

एकांकी की तरह रेडियों-रूपक का आधार है - कथावस्तु। इस तत्व को लेकर एकांकी और रेडियो रूपक में विशेष अंतर नहीं है। सिर्फ यह ध्यान रखा जाता है कि कथावस्तु का आरम्भ पर्याप्त आकर्षक हो ताकि श्रोता पूरा रूपक सुनने के लिए उत्सुक हो उठे। इसके लिए संगीत और ध्वनि-प्रभावों का उपयोग किया जाता है। कथावस्तु को आकर्षक बनाने के लिए डॉ. रामकुमार वर्मा का सुझाव है कि "रेडियो नाटक के पात्रों या घटनाओं में जितना विरोध या संघर्ष उपस्थित किया जा सकेगा।" इसलिए कथानक का मध्य भाग अधिक महत्वपूर्ण है। डॉ. वर्मा के विचार में "रेडियो नाटक में घटनाओं की प्रमुखता होनी चाहिए।" लेकिन यह अनिवार्य शर्त नहीं है। बिना घटनाओं, केवल पात्रों के विचारों का संघर्ष दिखला कर भी कथावस्तु को गतिशील बनाया जा सकता है। रेडियों-रूपक में संकलन-त्रय का बंधन नहीं होता। यह एक सुविधा है। लेकिन प्रभाव की अन्विति का ध्यान अवश्य रखना होता है।

(ख) पात्र एवं चरित्र-चित्रणः

रेडियो-रूपक में रंगमंचीय प्रस्तुति का बंधन न होने के कारण पात्रों की वेशभूषा, मंच की सज्जा आदि की आवश्यकता नहीं होती। इसमें पशु-पक्षी, अलौकिक तत्वोंऔर प्रतीकात्मक पात्रों को बड़ी सरलता से प्रस्तुत किया जा सकता है। पात्रों का चरित्र उनके संवादों से झलकता है और अभिनय-क्षमता उनके स्वर-परिवर्तन पर ही आश्रित होती है।

BRAOU

(ग) संवादः

यह रेडियो-रूपक का प्राण-तत्व है। संवाद जितने संक्षिप्त, मार्मिक और उनके कहने की शैली भावपूर्ण हो उतना ही रेडियों-रूपक सफल होता है। नीचे एक उदाहरण से यह देखा जा सकता है कि एक ही संवाद 'पठित' और 'श्रव्य' रूप में कैसे अलग रूप धारण करता है। संवाद है 'अम्बपाली' नाटक का -

1. मूल पठित रूपः

कहीं अजीब देश में पहुँच गई हैं, जहाँ चारों ओर फूल ही फूल हैं। जिन्हें हम रूलर-जीकड़-पीपल कहते हैं, उनमें भी फूल लगे हैं- चम्पाके, गुलाब के, पारिजात के। जमीन पर घासफूस की जगह फूलों की पंखुड़ियाँ बिधी हैं और धूल की जगह पीत-पराग बिखरा है।"

2. रेडियो-रूपक के अनुसार बदला गया रूपः

कितना सुन्दर देश है यह! फूलों का देश! राशि-राशि के फूल! चारों ओर-फूल ही फूल-चम्पा के, गुलाब के, पारिजात के। धरती पर फूलों की पंखुड़ियाँ, धूल के बदले पीत-पराग!"

दोनों संवादों में अंतर स्पष्ट है। दूसरे संवाद में केवल ध्वनित शब्दों के सहारे वातावरण का चित्र श्रोताओं के आगे साकार करने की कोशिश की गई है। रेडियो रूपक में कथोपकथन का प्रयोग तीन उद्देश्यों से किया जाता है- एक, वातावरण-निर्माण के लिए, जिसका उदाहरण ऊपर दिया गया है। दूसरा एक उदाहरण देखिए। यह 'कबीर' नामक रेडियो-रूपक से लिया गया है और इसमें कबीर की पत्नी लोई द्वारा वातावरण की सूचना इस संवाद में दी गई है-

लोई- आप देखते नहीं यह भयावती रात। चारों ओर-घोर अंधकार। प्रकृति उत्पात मचा रही है, आंधी चल रही है, तूफान उठ रहा हैं, प्रलय के बादल उमड़े चले आरहे हैं, वर्षा हो रही है- घनघोर-वर्षा।"

इस संवाद के साथ आवश्यक ध्वनि-प्रभाव से वातावरण को साकार किया जाता है।

कथोपकथन का दूसरा उद्देश्य पात्रों की क्रियाये, मुख के भाव और व्यवहार बताने के लिए भी किया जाता है। जैसे, "विषाद की छाया" नामक रेड़ियो-रूपक का यह संवाद लिया जा सकता है-

शंकर- क्या देख रहे हो, सुरेश।

सुरेश- मैं देख रहा हूँ तुम्हारा मुख, तुम्हरे मुख की रेखायें, तुम्हारी आँखें। शंकर, तुम्हारे मुख पर विषाद की छाया घिरी हुई हैं, विषाद की गहरी छाया।"

कथोपकथन का तीसरा उपयोग वाचन (नैरेशन) के रूप में होता हैं। जिन घटनाओं और क्रिया-व्यापारों को दो पात्रों के बीच बातचीत से प्रकट नहीं किया जा सकता, उनके लिए वाचन की सहायता ली जाती है। जिन घटनाओं को प्रस्तुत करने की आवश्यकता नहीं होती, वाचक उनके बारे में श्रोताओं को सूचना दे देता है। इससे कतावस्तु गतिशील बन जाती है।

(घ) ध्वनि- भाषा, प्रभाव और संगीतः

चूँकि रेडियो-रूपक पूर्णतः ध्वनि पर आश्रित होता है, इसलिए ध्वनि का तीन रूपों में बहुत सावधानीपूर्वक और आवश्यकतानुसार प्रयोग किया जाता है। पहला रूप है- भाषा। शब्दों का सावधानीपूर्वक पात्रानुकूल चयन इसमें आवश्यक है। दूसरा रूप है- ध्वनि-प्रभाव, जैसे टेलीफोन की घंटी, बादलों का गर्जन, करूणा या प्रसन्नता जगाने वाली ध्वनियाँ, कदमों की आहट आदि। तीसरा रूप है- संगीत। संगीत में विविध भावों को प्रदर्शित करने की अद्भुत क्षमता होती हैं, करुणा, हर्ष, भय, शोक, उत्साह आदि सभी भाव संगीत की विभिन्न धुनों से व्यक्त किये जाते हैं।

(ड) उद्देश्यः

रेडियो-रूपक केवल मनोरंजन के लिए नहीं, बल्कि सामाजिक-राजनैतिक ज्वलंत समस्याओं को प्रस्तुत करना होता है। उदाहरण के लिए मोहन राकेश का लिखा रेडियो रूपक 'रात बीतने तक' समस्या प्रधान है।

10.3.7 रेडियो रूपक के प्रकार

रेडियो-रूपक के प्रमुखतः आठ भेद हैं- रेडियो नाटक, फैण्टसी, मोनोलॅग, या एकपात्री नाटक, झलकी, धारावाहिक रेडियो नाटक, रेडियो कार्टून, काव्य-नाटक और रेडियो रूपक।

10.3.8 हिन्दी में रेडियो रूपक का विकास

रेडियो-रूपक का विकास रेडियो से जड़ा हुआ है, लेकिन हिन्दी में रेडियो रूपक सन् 1947 के बाद ही विकसित हुआ। इसका एक कारण तो यह कि हिन्दी भाषी क्षेत्र का पहला रेड़ियो-स्टेशन सन् 1936 में दिल्ली में स्थपित हुआ। सन 36 ही में बंगला से अनूदित पहला हिन्दी रेडियो नाटक प्रसारित हुआ। हिन्दी का मौलिक नाटक सन् 1937 में आल इण्डिया रेडियो से प्रसारित हुआ, वह था चतुरसेन शास्त्री का 'राधाकृष्ण'। इसके बाद उर्दू, अंग्रेज़ी व बंगला के अनूदित नाटक ही प्रसारित होते रहे। स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद राष्ट्रभाषा हिन्दी का पूरा सम्बन्ध रेडियो से जुड़ा। रेडियो के

BRAOU

लिए स्वतंत्र रूप से रूपक लिखने का प्रयास उदयशंकर भट्ट, चिरंजीव, राजाराम शास्त्री, विष्णु प्रभाकर और लक्ष्मीकांत वर्मा ने किया। डॉ. रामकुमार वर्मा, उपेन्द्र नाथ अस्क आदि के नाटकों व एकांकियों में रंगमंचीय दृष्टि अधिक है, हालांकि कुछ परिवर्तन के साथ रेडियो के लिए इनका खूब प्रयोग हुआ। आज रेडियो-रूपक एक स्वतंत्र साहित्यिक विधा के रूप में सामने आया है, जिसे बढ़ाने में सुरेन्द्रगुप्त, मुद्राराक्षस जैसे रचनाकारो का योगदान है। रेडियो-रूपक पर आलोचनात्मक पुस्तकें भी लिखी गई हैं। ऐसे ही एक ग्रंथकार और रेडियों रूपक के रचयिता सिद्धनाथ कुमार की तो मान्यता है कि "हिन्दी नाटक के विकास में जितना योग रेडियो ने दिया है, उतना सम्भवतः और किसी साधन ने नहीं।"

10.3.9 संकलन

इस विवेचन से स्पष्ट है कि गद्य-विधाओं के विकास में विशेषकर एकांकी और रेडियो-रूपक एकदम आधुनिक युग की चेतना से युक्त होकर, और आधुनिक युग की आवश्यकताओं की परिपूर्ति के लिए ही विकसित हुए हैं। कुछ मूल तत्वों- जैसे कथावस्तु, पात्र उद्धेश्य और भाषाशैली की दृष्टि से एकांकी और श्रव्य-रूपक में समानता है। अन्तर केवल इतना है कि एकांकी में दृश्य-काव्य या रंगमंचीय प्रस्तुतीकरण का ध्यान रखा जाता है और श्रव्य-रूपक में श्रव्यकाव्य या ध्वनि के माध्यम से प्रसारण पर ध्यान दिया जाता है।

10.4 पाठ का सारांश

एकांकी और श्रव्य-रूपक आधुनिक हिन्दी नाटक साहित्य के ही अंग हैं जिनका विकास आधुनिक युग की व्यस्त और जटिल मानसिकता तथा रेडियों जैसे आधुनिक उपकरणों के साथ जुड़ा हुआ है। एकांकी का अर्थ है- कम दृश्यों और सीमित अवधि में प्रस्तुत करने योग्य लघुनाटिका। एकांकी के तत्व सात है- कथावस्तु चरित्र-चित्रण, कथोपकथन, देशकाल और वातावरण, उद्देश्य, भाषा शैली और अभिनय व रंगमंच-निर्देश। एकांकी का मूल रूप संस्कृत साहित्य में 'उपरूपक' के अन्तर्गत मिलता है, पर इसका आधुनिक रूप पश्चिम के प्रभाव से निर्मित हुआ। हिन्दी में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के समय से एकांकी-लेखन आरंभ हो गया था, पर पहला एकांकी जयशंकर प्रसाद के 'एक घूँट' को माना जाता है। युगीन परिस्थितियों में परिवर्तन के साथ-साथ एकांकी की विषय-वस्तु, शिल्प और मंचीय प्रस्तुतीकरण में विकास होता चला गया। आज 'नुक्कड नाटक' और 'ओपन थियेटर' के रूप में भी एकांकी का प्रस्तुती करण हो रहा है। मनोरंजन के साथ-साथ जीवन के यथार्थ का चित्रण एकांकी का उद्देश्य रहा है।

BRAOU

रेड़ियो से प्रसारित होने वाले पूर्णतया ध्वनि पर आधारित नाटकों व एकांकियों के रूप में रेडियो रूपक का विकास हुआ। मूल तत्वों की दृष्टि से एकांकीय रेडियो रूपक में विशेष अंतर नहीं है। एकांकी रंगमंच पर प्रस्तुत होने वाली दृश्यात्मक विधा है तो रेडियो रूपक ध्वनि-व्यवस्था पर आधारित श्रव्यात्मक विधा है। हिन्दी में स्वतंत्र रेडियों-रूपक लेखन का विकास स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद ही हुआ। आज एक सोद्देश्य व स्वतंत्र साहित्यिक विधा के रूप में रेडियों-रूपक को स्थान मिल चुका है।

10.5 पारिभाषिक शब्द-अर्थ

श्रव्य	=	सुनने-योग्य
विधा	=	रूप, प्रकार, सहित्यिकविधा अर्थात साहित्यिक रूप या प्रकार जैसे कविता, नाटक आदि।
परिचायक	=	परिचय देने वाला
चरम सीमा	=	'क्लाइमेक्स', वह बिन्दु जहाँ कथावस्तु या घटना-प्रवाह एक निर्णायक स्थिति को पहुँच जाता है।
संकलन-त्रव	=	स्थान, काल और क्रियाकी अन्विति। इसका प्रयोग नाटक-साहित्य के संदर्भ में होता है।

10.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

10.6.1 'अ' श्रेणी के प्रश्न

निम्न लिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 250 शब्दों में दीजिए -

1. एकांकी के तत्वों का परिचय दीजिए।
2. हिन्दी एकांकी के विकास का विवेचन कीजिए।
3. रेड़ियो रूपक के तत्वों का परिचय देते हुए बतलाइए कि ये एकांकि से किस तरह अलग हैं?
4. हिन्दी में रेडियों-रूपक के विकास पर प्रकाश डालिए।

10.6.2 'ब' श्रेणी के प्रश्न

निम्न लिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 125 शब्दों में दीजिए-

1. एकांकी की परिभाषा दीजिए।
2. एकांकी के प्रकारों का परिचय दीजिए।
3. एकांकी और रेडियो-रूपक में रचना-विधान की दृष्टि से क्या अंतर है, विशेषकर संवादों की दृष्टि से- सोदाहरण बदलाइए।
4. रेडियो-रूपक के विकास के कारणों का विवेचन दीजिए।

10.7 नमूने के प्रश्नोत्तर

10.7.1 'अ' श्रेणी के प्रश्न

प्रश्नः रेडियो-रूपक के तत्वों का परिचय देते हुए बदलाइए कि ये एकांकी से किस तरह अलग हैं?
उत्तरः रेडियो रूपक एक आधुनिक विधा है और रेडियो के प्रचार के साथ ही इसका जन्म और विकास जुड़ हुआ है। यह ध्वनि पर आश्रित विधा है। इसके प्रमुख तत्व हैं कथावस्तु, पात्र, संवाद ध्वनि और उद्देश्य। कथावस्तु इसका आधार है। पात्र भी रेडियो रूपक का महत्वपूर्ण तत्व है, लेकिन सबसे अधिक महत्वपूर्ण हैं संवाद और ध्वनि। श्रव्य होने के कारण रेडियो रूपक का प्राण संवाद हैं। ये जितने अधिक प्रभावपूर्ण और सजीव होंगे उतना ही रेडियो-रूपक सफल माना जाएगा। ध्वनि रेडियो रूपक के प्रस्तुतीकरण का माध्यम है। ध्वनि-संकेतों, प्रभावों और संगीत के द्वारा रेडियो-रूपक प्रस्तुत किया जाता है। अंतिम तत्व है- उद्देश्य।

BRAOU

एकांकी और रेडियो-रूपक में सबसे बड़ा अंतर यही है कि पहला दृश्यात्मक है और दूसरा श्रव्यात्मक। इस अंतर के कारण दोनों के रचना-विधान अलग हो जाते हैं। एकांकी में रंगमंच-सज्जा, पात्रों के हाव-भाव और दृश्य-परिवर्तन-व्यवस्था पर ध्यान दिया जाता है, जब कि रेडियो-रूपक में ध्वनि और संगीत से यह काम लिया जाता है। रेडियो-रूपक के प्रस्तुतकर्ता कलाकारों को अपने स्वर के उतार चढ़ाव से भावों को अभिव्यक्त करना होता है। संवाद इस तरह लिखे जाते हैं कि वे शब्दों के माध्यम ही से भाव को साकार कर दें। इसमें ध्वनि-प्रभाव और संगीत की सहायता ली जाती है। रेडियो-रूपक श्रव्य होने के कारण रंगमंच और प्रदर्शन के समय के बंधन में नहीं है, लेकिन एकांकी के साथ ये बंधन हैं। इन्हें तेड़ने के लिए ही आजकल खुले रंगमंच और नुक्कड़ नाटकों का प्रयोग किया ज रहा है। रेडियो-रूपक में संकल-त्रय का बंधन भी नहीं है। संक्षेप में, दोनों विधायें रचना में एक होकर भी प्रस्तुति में अलग हैं। कुछ परिवर्तन से दोनों एक दूसरे में बदली जा सकती हैं।

10.7.2 'ब' श्रेणी के प्रश्नोत्तर

प्रश्नः एकांकी के प्रकारों का परिचय दीजिए।

उत्तरः एक अंक वाले नाटक को एकांकी कहते हैं। संस्कृत में इसे 'रूपक' कहा गया, और इसके ग्यारह भेद बतायें गए हैं। ये भेद हैं- व्यायोग गोष्ठी अंक, भाण, उल्लाप्य, प्रेरणा, श्रीगदित, विलासिका, हल्लीश, वीथी, नाट्यरासक और प्रहसन। आधुनिक हिन्दी एकांकी का विकास पाश्चात्य परम्परा के कारण हुआ, इसलिए इसमें संस्कृत साहित्य में दिए गए वर्गों के लक्षण नहीं के बराबर हैं। उदाहरण के लिए भारतेन्दु युग में प्रहसन, नाट्यरासक, भाण और व्यायोग का उपयोग हुआ। लेकिन अपने स्वतंत्र विकास के क्रम में हिन्दी एकांकी ने अन्य कई आधुनिक-धारण किए। इसलिए आज मुख्यतः विष्यवस्तु, उद्देश्य और शिल्प के आधार पर एकांकियों को वर्गीकृत किया जाता है। विषयवस्तु के आधार पर एकांकी के प्रकार हैं- सामाजिक, ऐतिहासिक, मनोवैज्ञानिक आदि। उद्देश्य के आधार पर समस्यामूलक, हास्य-एकांकी आदि। शिलप के आधार पर रेडियो एकांकी, दृश्य एकांकी, एकपात्रीय और पद्य एकांकी।

10.8 पठनीय पुस्तकें

1. रेडियों नाट्य-शिल्प : डॉ. सिद्धनाथ कुमार, ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली।
2. हिन्दी साहित्य का वृहद् इतिहास-भाग 14, काशी नागरी प्रचारिणी सभा

BRAOU

इकाई-1ः भारतीय सामाजिक जीवन और संस्कृति (पूर्व आधुनिक काल)

1.0 विषय प्रवेश
1.1 पाठ का उद्देश्य
1.2 पाठ का परिचय
1.3 मूल पाठ
  1.3.1 भारतीय सामाजिक व्यवस्थाः सामंतवाद के परिप्रेक्ष्य में
  1.3.2 भारतीय संस्कृतिः विकास के संदर्भ में
  1.3.3 मूल्यांकन
1.4 पाठ का परिचय
1.5 पारिभाषिक शब्द-अर्थ
1.6 अभ्यासार्थ प्रश्न
  1.6.1 'अ' श्रेणी के प्रश्न
  1.6.2 'ब' श्रेणी के प्रश्न
1.7 नमूने के प्रश्नोत्तर
  1.7.1 'अ' श्रेणी के प्रश्नोत्तर
  1.7.2 'ब' श्रेणी के प्रश्नोत्तर
1.8 पठनीय पुस्तकें

BRAOU

1.0 विषय प्रवेश

समाज, संस्कृति और साहित्य- इन तीनों का सम्बन्ध अन्योन्योश्रित है। हिन्दी साहित्य की मध्ययुगीन प्रवृत्तियों को समझने के लिए उस काल की और उसके पूर्वकालिक सामाजिक-सांस्कृतिक परम्पराओं से परिचित होना आवश्यक है।

1.1 पाठ का उद्देश्य

इस पाठ में भारतीय समाज की व्यवस्था और सांस्कृतिक मूल्यों का इस दृष्टि से परिचय दिया जा रहा है कि आप मध्यकाल की साहित्यिक प्रवृतियों को अधिक स्पष्टता के साथ समझ सकें।

1.2 पाठ परिचय

पूर्व-आधुनिक भारतीय सामाजिक संरचना और उसके सांस्कृतिक तत्वों को समझने के लिए हमें उस सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था से परिचित होना पड़ेगा, जिसे सामान्तवाद कहते हैं और जिसके कारण भारतीय समाज में जाति-प्रथा के रूप में वह विशेष तत्व आया जो संसार-भर में केवल भारत में प्रचलित रहा। इसके साथही भारतीय संस्कृति की विशिष्ट आध्यात्मिक सुझान को भी समझा जा सकेगा।

1.3 मूलपाठ

भारतीय संस्कृति एक निरंतर विकासशील प्रवाह है जिसने अनेक विदेशी प्रभावों को अपने भीतर ग्रहण करते हुए अपना विशेष स्वरूप बनाये रखा। इसके साथ यह भी हम जानते है कि भारत में संयुक्त परिवार-प्रथा, जातिप्रथा, और अस्पृश्यता आदि तत्व है जो उसे अन्य जातियों की तुलना में विशिष्ट बनाते हैं। इन तत्वों की आलोचना से पूर्व उस ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य को समझना आव्शयक है जिसके अन्तर्गत ये तत्व उत्पन्न हुए। अतएवं सबसे पहले इसी परिप्रेक्ष्य की चर्चा, उसके बाद सामाजिक परिवर्तन के कारणों और फिरभारतीय संस्कृति की मूल भूत विशेषताओं की चर्चा की जाएगी।

1.3.1 भारतीय सामाजिक व्यवस्थाः सामंतवाद के परिप्रेक्ष्य में

अब इस बात पर विद्वान लगभग सहमत हो चुके हैं। कि आर्य भारत में बाहरसे आए और भारत की भूमि पर बस कर वे कृषि करने वाली और पशुपालन करने वाली जाति के रूप में विकास करने लगे। नई भूमियों की खोज में, नई जातियों को विजित करते चलने की उनकी प्रवृत्ति अब एक स्थाई, सुखोपभोगी सभ्याता में परिणित होने लगी। विदेशी आक्रमणकारी भी आकर इस भूमि पर बसने और इस संस्कृति में मिश्रित होने लगे। इस दृष्टि से सबसे बड़ा प्रभाव भारतीय सामाजिक संरचना ने इस्लामी संस्कृति को भी जगह दी, क्योंकि ये दोनों संस्कृतियाँ सामंती व्यवस्था से पोषित हो रही थीं। अतएव प्रश्न है कि सामंतवाद क्या है?

सामंतवादी व्यवस्था अर्थात कृषि पर आधारित, भूमि को सम्पत्ति मानकर चलने वाली वह सामाजिक और आर्थिक व्वस्था, जिसके अन्तर्ग भूस्वामी और कृषक के बीच संबन्ध बनते हैं। अर्थात् सामंत भूमि का मालिक और किसान उस भूमि को जोतकर, उस पर खेती कर मालिक को बदले में लगान देने वाला। भारत में कृषि-सभ्यता का विकास सामंती व्यवस्था की छत्रछाया में हुआ। मध्ययुग तक आते-आते यह सामंती-व्यवस्था सबल हो गई। उसका कारण बताते हुए प्रसिद्ध इतिहासकार डॉ. रामशरण शर्मा लिखते हैं कि गुप्तकालीन भारत में राजा के द्वारा ब्राह्मणों को भूमि दान देने की परम्परा आरंभ हुई। इसके अन्तर्गत केवल भूमि नहीं बल्कि उस पर बसने वाले किसानों से कर वसूलने और उनपर शासन करने का अधिकार-भी दे दिया जाता था। धीरे-धीरे राजा और श्रामिक जनता के बीच ये छोटे-छोटे सामंत उभर आये। भुमि पर पैतृक अधिकार ने इस व्यवस्था को मजबूत किया। सामंतवाद केवल अर्थिक व्यवस्था नहीं है, इसका प्रभाव सामाजिक सम्बन्धों और परिवार की संरचना पर भी पड़ता है, जिसके फलस्वरूप संस्कृतिक मूल्य भी बदलते हैं। सामंती व्यवस्था में एक ओर होता है बिना परिश्रम किये जीवन का सुख भोगने वाला सामंत वर्ग और दूसरी ओर असंख्य जनता। सामंती व्यवस्था में धार्मिक पुरोहित सामंत के ही हितों का पोषण करते हैं। मध्ययुग तक आते-आते भारतीय सामाजिक जीवन में जो परिवर्तन घटित हुए उन्हें हम निम्न लिखित तीन उपशीर्षकों में बॉट कर देख सकते हैं।

(अ) वर्ण से जाति में रूपान्तरणः

भारतीय सभ्यता के इतिहास में वर्ण व्यवस्था का उदय एक क्रान्तिकारी घटना थी, क्योकि यह श्रम के आधार पर किया गया विभाजन था। किन्तु मध्ययुग तक आते-आते कर्म पर आधारित यह वर्ण व्यवस्था धीरे-धीरे जाति प्रथा में बंदलती चली गई। जाति प्रथा पूरी तरह जन्म पर आधारित हो गयी। जाति प्रथा को प्रसिद्ध समाजशास्त्री डॉ. एम.एन. श्रीनिवासन ने- "हिन्दू धर्म का लौह ढाँचा" कहा है। विवाह-संबन्ध एक जाति के ही सदस्यों तक सीमित हो गए। जातियों के आपसी सम्बन्धों में खाने-पीने और अन्य व्यवहारों पर भी अनेक प्रतिबन्ध लग गए। इसी के अन्तर्गत कुछ निम्न कोटि जातियों को अस्पृश्य कह कर उन्हें समाज से बाहर घृणित जीवन जीने के लिए विवश किया जाने लगा। अस्पृश्यता का कोई उल्लेख वेदों में नहीं मिलता, और नहीं वर्ण-व्यवस्था में शूद्र को अछूत माना गया है। यह भारतीय सामाजिक संरचना में मध्यकाल में आया हुआ विकार है।

BRAOU

(आ) पारिवारिक संरचना और स्त्रीः

भारत की प्रचीन सामाजिक व्यवस्था में स्त्री का स्थान बहुत ऊँचा था। स्त्री परिवार की धुरी समझी जाती थी और हर तरह से रक्षणीय और पूजनीय थी। लेकिन मध्य युग तक आते-आते स्त्री की स्थिति खराब हो गई। परिवार में स्त्री और पुरुष के सम्बन्ध अब स्वामी और सेवक के हो गए। वैसे भी पितृ स्तात्मक समाज में पुरुष ही परिवार का मुखिया होता है और उसी से वंश चलता है। लेकिन मध्ययुग में आकर स्त्री पूरी तरह से घर की सीमा में कैद हो गई। पर्दाप्रथा, दहेज प्रथा, और सबसे अधिक अमानवीय सती प्रथा का इस काल में ज़ोर बढ़ गया। स्त्री के प्रति दोहरा दृष्टिकोण मिलता है, एक तो उसे वैराग्य और मोक्ष के मार्ग में बाधा मानने का, और दूसरे उसे भोगविलास का उपकरण मानने का। हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल में पहले और आदिकाल व रीतिकाल में दूसरे दृष्टिकोण का परिचय मिलता है।

(इ) धर्म का रूढ़िबद्ध रूपः

भारतीय समाज के आरंभिक काल में 'धर्म' की धारणा बहुत ऊँची थी। 'धर्म' अर्थात 'कर्तव्य'। धीरे-धीरे धर्म का अर्थ बदल कर केवल एक सम्प्रदाय या दर्शन से जुड़ गया। मध्य युग में धर्म का यह रूप भी और अधिक संकीर्ण हो गया। अब धर्म का मतलब हुआ एक विशेष प्रकार से की गई उपासना। स्पष्ट ही धर्म की ऐसी परिभाषा में पुरोहितों का महत्व बढ़ा, बाह्य कर्मकाण्ड प्रमुख हो गए, और उपासना की जगह दिखावा होने लगा। धर्म मनुष्य और मनुष्य के बीच भेदभाव पैदा करने लगा। धर्म के इसी रूढ़ि बद्ध रूप के विरोध में भक्ति-आन्दोलन हुआ, और भक्त कवियों ने धर्म ही नहीं, जातिपाति, छुआछूत आदि सभी ऐसे भेदभावों का विरोध किया जो मनुष्य-मनुष्य के बीच दीवारें खड़ी करते हैं। लेकिन रीतिकालीन सामाजिक परिस्थितियों में क्रान्ति की यह आवाज़ उठाने वाला कोई प्रखर व्यक्तित्व नहीं था। यही कारण है कि भारत में ब्रिटिश राज के जमने से पूर्व तक भारतीय समाज अनेक प्रकार की रूढ़ियों से ग्रस्त, सीमित और संकीर्ण विचारों, कुरीतियों और अंधविश्वासों से भरा हुआ, 'कूपमण्डूक' की स्थिति में आ चुका था।

1.3.2 भारतीय संस्कृतिः विकास के संदर्भ मेंः

BRAOU

संस्कृति किसी देश, जाति या सभ्यता के मूल्यों, मानदण्डों, विश्वासों और नियमों का वह समन्वित रूप है जो उसने अपनी सुदीर्घ जीवन-यात्रा में संचित किए हैं। भारतीय संस्कृति भारतीय समाज की ही उपलब्धि है, इसलिए स्पष्ट है कि सामाजिक व्यवस्था में आए बदलाव सांस्कृति मूल्यों पर भी प्रभाव डालेंगे। श्री रामधारी सिंह धिनकर ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक संस्कृति के चार अध्याय में भारतीय संस्कृति के जिस सबसे बड़े गुण की प्रशंसा की है, वह है उसकी आत्मसात करने की क्षमता। भारत पर अनेक विदेशी आक्रमण हुए। यहाँ अनेक विदेशी जातियाँ आई, यहाँ बस गई, और धीरे धीरे यहाँ की सभ्यता में इस प्रकार घुलमिल गई कि भारतीय संस्कृति का ही अंग बन गई। भारतीय संस्कृति की पाचनशक्ति इतनी प्रबल है और अनेक बाहरी तत्व भी इसमें मिल कर ऐसे एकाकार हो गए हैं कि आज यह बताना असंभव है कि इसमें कौन सा तत्व आर्य है, कौन सा अनार्थ, कौन सा यूनानी या कौन सा मुगल।

भारतीय संस्कृति की दूसरी विशेषता है इसकी परिवर्तनशीलता। आर्य-पूर्व, आर्य और अन्य जातियोंकी मिली जुली सामाजिक संरचना के अनुरूप परिवर्तन को इसने स्वीकार किया। भारतीय संस्कृति में भारतीय समाज के उत्थान-पतन का इतिहास स्पष्ट देखा जा सकता है। रामधारी सिंह दिनकर ने अपनी पुस्तक 'संस्कृति के चार अध्याय' में बताया है कि भारतीय संस्कृति में चार बार क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए, एक आर्यों, अनार्यों के सम्मिलन में, दूसरे वैदिक रूढिबद्ध चिन्तन के विरूद्ध बौद्ध और जैन धर्मों के विद्रोह में, तीसरे भक्ति आन्दोलन में और चौथे में अंग्रेज़ों के आगमन के बाद नवजागरण के रूप में। हर बार अपने को बदलती हुई, नए तत्वों को समन्वित करती हुई संस्कृति की यह धारा अक्षुण्ण रही है।

भारतीय संस्कृति की तीसरी विशेषता है इसका अन्तर्विरोधात्मतक रूप। इसके भीतर परस्पर विरोधी विचार-धाराओं का विकास हुआ। द्वैतवाद और अद्वैतवाद, सगुण-निर्गुण, एकेश्वरवाद-बहुदेववाद, नास्तिकता-आस्तिकता, रागात्मक भक्ति और निष्काम कर्म योग- ये सब इसके भीतर उपस्थित हैं। इसलिए यह सच्चे अर्थों में विकासशील है क्योंकि यह विरोधी तत्वों का दमन या बहिष्कार नहीं करती, बल्कि अपने भीतर उन्हें जगह देकर विकास का मार्ग प्रशस्त करती है।

समग्रता में भारतीय संस्कृति की दृष्टि आध्यात्मिक और आदर्शवादी है। यह आनन्दवादी है, और इसका आनन्द भौतिक साधनों से या ऐन्द्रिक सुखों में नहीं मिलता, बल्कि परमार्थ और पारलौकिक लक्ष्य से मिलता है। इसी कारण हर भारतीय कला व साहित्य का चरम लक्ष्य 'आनन्द' की प्राप्ति है।

स्वपरीक्षणार्थ प्रश्नः-

(1) सामंतवाद क्या है?
(2) वर्ण और जाति में क्या अन्तर हैं?
(3) भारतीय समाज में 'अस्पृश्यता' की प्रवृत्ति कब आई?
(4) यह कैसे कहा जा सकता है कि भारतीय संस्कृति समन्वयात्मक है?
(5) भारतीय संस्कृति में 'आनन्द' की परिभाषा क्या है?
(6) मध्ययुगीन रूढ़ियों के प्रति भक्त कवियों का क्या दृष्टिकोण था?
(7) मध्ययुगीन रूढ़ियों के प्रति रीतिकालीन कवियों का क्या दृष्टिकोण था?

1.3.3 मूल्यांकन

संस्कृति और समाज का विकास समानान्तर होता है। भारत में यह एक विकास एक लम्बे समय में अनेक विजातीय और विरोधी तत्वों से संघर्ष के क्रम में हुआ। भारत की सामाजिक रचना वर्ण व्यवस्था के रूप में श्रम को प्रतिष्ठा देती थी और श्रम व कर्म के आधार पर समाज में विभिन्न वर्गों का स्थान-निर्धारण करती थी। आरंभ काल की इस सामाजिक संरचना के अनुरूप ही सांस्कृतिक क्षेत्र में बुद्धिवाद और वैचारिक सहिष्णुता की प्रवृत्ति थी। स्त्रियों के प्रति आदर-भाव, विरोधी विचारों को भी समझने-ग्रहण करने की क्षमता इस संस्कृति का गुण था। लेकिन, मध्ययुग तक आते-आते सामंतवाद की जकड़ मजबूत हो गई। समाज में स्त्रियों, शूद्रों और अछूत मानी जाने वाली जातियों के प्रति घृणा और अनादर की प्रवृत्ति पैदा हो गई। धर्म अंध विश्वास का रूप लेने लगा। इसके अनुरूप सांस्कृतिक क्षेत्र में भी वैचरिक असहिष्णुता, बुद्धिवाद का विरोध आदि प्रवृत्तियाँ उत्पन्न हो गई। लेकिन, इसके साथ यह भी ध्यान रखा जाना चाहिए कि संस्कृति, साहित्य, कला आदि का एक रूप जहाँ यथास्थिति का पोषक होता है, वहाँ उसका दूसरा रूप इसका विरोध भी करता है। रीतिकाल और भक्तिकाल इसके उदाहरण है। रीतिकालीन साहित्य जहा मध्ययुगीन भोगवादी दृष्टि और रूढ़िबद्ध जीवन को स्वीकार कर लेता है और उसी की अभिव्यक्ति करता है, वहाँ भक्तिकालीन साहित्य इसका विरोध करता है। आधुनिक युगीन नवचेतना के उदय से पूर्व रीतिकालीन समाज और संस्कृति का जो जड़ रूप बन चुका था, आधुनिक बुद्धिवादी नवजागरण ने उसमें परिवर्तन उपस्थित किया। इसी बिन्दु से मध्ययुग समाप्त हुआ और आधुनिक युग आरम्भ हुआ।

1.4 पाठ का सारांश

प्रस्तुत पाठ का लक्ष्य है भारतीय समाज और संस्कृति में प्राचीन और मध्यकाल में आए परिवर्तनों को हिन्दी साहित्य के संदर्भ में विवेचित करना। भारतीय संस्कृति भारतीय सामाजिक संरचना पर आश्रित है। भारतीय समाज में सामंतवादी कृषि-प्रधान व्यवस्था मध्यकाल में आकर मजबूत हुई। इस व्यवस्था में भूमि का मालिक सामंत होता है जो किसान को ज़मीन जोतने का अधिकार देकर बदले में लगान बसूल करता है। धीरे-धीरे श्रम नहीं करके भी जीवन की सुख-सुविधा भोगनेवाले और दिनरात परिश्रम करके भी भूखे पेट रहने वालों के बीच अन्तर बढ़ता जाता है। सामंती व्यवस्था के अनुरूप सामाजिक

संरचना में भी परिवर्तन हुए। एक प्राचीन वर्णव्यवस्था जो श्रम पर आधारित थी, अब जन्म पर आधारित जाति-व्यवस्था में बदल गई। दूसरे, स्त्रियों के प्रति भोगवादी या वैराग्यवादी दृष्टिकोण अपनाया गया। तीसरे, धर्म के क्षेत्र में अंधविश्वास, कुरीति, प्रदर्शन और बाह्याडम्बरों का अधिकार हो गया। संस्कृति के क्षेत्र में दो प्रकार की प्रतिक्रिया हुई- इस अन्यायपूर्ण स्थिति का विरोध, और, दूसरे इसका समर्थन। पहली भूमिका भक्तिकाव्य ने सम्पन्न की,- और दूसरी रीतिकाव्य ने।

1.5 पारिभाषिक शब्द-अर्थ

अस्पृश्यता = किसी जाति या वर्ग के मनुष्यों को छूने से भी अपवित्र हो जाने की मान्यता। यह व्यवहार हिन्दू जाति व्यवस्था में ऊँची जातियों द्वारा 'शूद्र' वर्ण की कुछ निम्न जातियों के प्रति किया गया। भारतीय संविधान में यह अपराध माना गया है।

संयुक्त परिवार = वह पारिवारिक व्यवस्था जिसमें दो से अधिक पीढ़ी के लोग मिलकर रहते हैं।

निष्कामकर्म योग = गीता में दिया गया उपदेश जिसके अनुसार मनुष्य को बिना फल की इच्छा या आशा रखे कर्म करना चाहिए।

1.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

1.6.1 'अ' श्रेणी के प्रश्न

निम्न लिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 250 शब्दों में दीजिए।

1. सामंतवाद किसे कहते हैं? भारत में इसने सामाजिक संरचना को किस प्रकार प्रभावित किया?
2. भारतीय संस्कृति की प्रमुख विशेषताएँ बतलाइए।

1.6.2 'ब' श्रेणी के प्रश्न

निम्न लिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 125 शब्दों में लिखिए।

1. सामंती व्यवस्था के प्रति भक्ति काव्य का कैसा दृष्टिकोण था?
2. रीतिकालीन काव्य में सामंती व्यवस्था का कैसा रूप मिलता है?

BRAOU

1.7 नमूने के प्रश्न

1.7.1 'अ' श्रेणी के प्रश्नोत्तर

प्रश्नः सामंतवाद किसे कहते हैं? भारत में इसने सामाजिक संरचना को किस प्रकार प्रभावित किया?

उत्तरः सामंतवाद अर्थात वह अर्थिक व्यवस्था जिसमें खेती प्रमुख उत्पादन का साधन होती है, और भूमि का मालिक सामंत किसानों के खेती के लिए भुमि देकर उनसे लगान वसूल करता है। भारत में कृषि-सभ्यता के विकास के साथ-साथ सामंती व्यवस्था का विकास हुआ। राजा, सामंत और किसान ये इस व्यवस्था की तीन कड़ियाँ थीं। सामंती व्यवस्था ने भारत की सामाजिक संरचना पर प्रभाव डाला। वैदिक युग में श्रम पर आधारित वर्ण व्यवस्था धीरे-धीरे जाति-व्यवस्था में परिणत होती चली गई। यह जन्म पर आधारित थी। इस व्यवस्था में निम्न श्रेणी की जातियों के प्रति घृणा का भाव पनपा। उन्हें अस्पृश्य समझा जाने लगा। समाज में कई प्रकार की कुरीतियाँ पैदा हुईं। पितृ सत्तात्मक पारिवारिक व्यवस्था में स्त्री सम्पत्ति समझी जाने लगी, उसके प्रति भोगवादी दृष्टिकोण बढ़ा। सती-प्रथा, दहेज-प्रथा, पर्दा-प्रथा, बालविवाह और बहुपत्नी प्रथा आदि कुरीतियाँ बढ़ीं। धर्म भी रुढ़िग्रस्त हो गया। पुरोहित-वर्ग सामंतों के हितों का संरक्षण करता था। धर्म में कर्मकाण्ड, प्रदर्शन और अंधविश्वास बढ़ा। मध्ययुग की

सामंती व्यवस्था का पतनोन्मुख स्वरूप भारता में ब्रिटिश राज के स्थापित होने का कारण बना। भारत में इस्लाम के प्रवेश ने इस सामंती व्यवस्था को व्यापक रूप दिया। हिन्दू सामंतों के साथ मुस्लिम नवाब, जागीरदार आदि इस व्यवस्था की उच्चतम सीढ़ी पर जम गए। नीचे की सीढ़ी में गरीब दस्तकारी और खेती से जुड़ी जातियाँ थीं जिनमें मुसलमान भी शामिल थे। व्यापर में मुद्रा के प्रयोग के कारण पूँजीवादी व्यवस्था के आरंभिक तत्व पैदा हो गए, लेकिन भारतीय समाज की मुख्य चेतना सामंती ही रही। ब्रिटिश राज की स्थापना से जो औद्योगिक परिवर्तन हुए उनके फलस्वरूप हीं सामंती व्यवस्था टूट सकी, क्योंकि नए आर्थिक सम्बन्धों में जीति नहीं वर्ग प्रमुख होने लगा।

1.7.2 'ब' श्रेणी के प्रश्नोत्तर

प्रश्नः सामंती व्यवस्था के प्रति भक्तिकालीन काव्य का कैसा दृष्टिकोण था?
उत्तरः सामंती व्यवस्था की कुछ कुरीतियों के प्रति भाक्ति-कालीन काव्य में विद्रोह का स्वर मिलता है। यद्यपि भक्तिकाव्य स्वयं सामंती व्यवस्था की उपज था, पर इसके पतनशील तत्वों का इसने खुलकर विरोध किया। इनमें सबसे प्रबल था संत काव्य जिसके कवि कबीर, रैदास, दादूदयाल निम्न जातियों के थे। इन्होंने ऊँची जातियों के अहंकार, जाति-पांति के भेदभाव, पुरोहित वर्ग, धार्मिक कर्म काण्ड हिन्दू-मुसलमानों की धर्मान्धता का विरोध किया। प्रेममार्गी सुफीकाव्य में भी सब मनुष्यों की समानता का प्रतिपादन है। सगुणमार्गी कवियों ने भक्ति के क्षेत्र में सब मनुष्यों को समान माना। स्त्री को भक्ति के मार्ग में बाधक मानकर भी इन कवियों ने माँ और पत्नी के रुपमें उसकी प्रतिष्ठा की। मीराबाई जैसी भक्त-कवयित्रियाँ भी हुई। कृष्ण भक्ति काव्य में राजमहलों के विसाल की जगह ब्रज जैसे ग्रामीण, प्रेमपूर्ण, सरल जीवन की प्रतिष्ठा और रामभक्तिकाव्य में राम के प्रजापालक रूप और निषाद, बानर, केवट जैसी जातियों को प्रेम पूर्वक अपनाना भी इसी सामंत-विरोधी प्रवृत्ति का परिचायक है।

1.8 पठनीय पुस्तकें

1. संस्कृति के चार अध्याय : रामधारी सिंह 'दिनकर'
2. भारतीय चिन्तन परम्परा : के. दामोदरन
3. भारतीय जीवन और संस्कृति : डॉ. शम्भुनाथ पाण्डेय

BRAOU

इकाई-2: आधुनिक भारतीय जीवनः सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ

2.0 विषय प्रवेश
2.1 उद्देश्य
2.2 पाठ परिचय
2.3 मूल पाठ
- 2.3.1 भारतीय सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन का विकास
- 2.3.2 मध्ययुगीन भारतीय सामाजिक जीवन एवं संस्कृति
- 2.3.3 आधुनिक भारतीय सामाजिक जीवन एवं संस्कृति
- 2.3.4 नई शिक्षा के दुष्परिणाम
- 2.3.5 भारतीय संस्कृति का नवोत्थान
- 2.3.6 धार्मिक सुधार
- 2.3.7 समाज सुधार
- 2.3.8 नवीनआध्यात्मिक-सांस्कृतिक चेतना का विकास
- 2.3.9 आधुनिक भारत की नवीन सामाजिक सांस्कृतिक चेतना

2.4 सारांश
2.5 शब्दार्थ
2.6 अभ्यास
- 2.6.1 'अ' श्रेणी के प्रश्न
- 2.6.2 'ब' श्रेणी के प्रश्न

2.7 नमूने के प्रश्नोत्तर
- 2.7.1 'अ' श्रेणी के प्रश्नोत्तर
- 2.7.2 'ब' श्रेणी के प्रश्नोत्तर

2.8 पठनीय पुस्तकें

BRAOU

2.1 उद्देश्य

प्रस्तुत पाठ में भारतीय सामाजिक सास्कृतिक जीवन के संदर्भ में विचार किया गया है। इस पाठ के अध्ययन से आपः

- प्राचीन भारतीय सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन पर प्रकास डाल सकेंगें
- मध्यकालीन भारतीय सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन पर विचार कर सकेंगे
- आधुनिक भारतीय सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन का विवेचन कर सकेंगे
- आधुनिक युग में धार्मिक सुधार के प्रयत्नों का विवरण प्रस्तुत कर सकेंगे
- आधुनिक युग में समाज सुधार की दिशाओं का निर्देश दे सकेंगे
- भारतीय संस्कृति के इतिहास के विकास की दिशा स्पष्ट कर सकेंगे
- आधुनिक युग में नारी जीवन और उसकी समस्याओं का विश्लेषण कर सकेंगे
- आधुनिक काल में विकसित नवीन मानवतावादी दृष्टिकोण पर प्रकाश डाल सकेंगे।

2.0 पाठ परिचय

संस्कृति का प्रश्न एक बहुत बडा प्रश्न है। किसी भी देश की सभ्यता एवं उसके अस्तित्व का आधार संस्कृति है। देश रूपी वृक्ष की जड संस्कृति है। अतः अपने देश के विषय में पूर्ण ज्ञान के लिए उसकी संस्कृति का ज्ञान आवश्यक है। देश के प्रति श्रृद्धा, विश्वास और प्रेम को बनाए रखने के लिए भी देश की संस्कृति का ज्ञान आवश्यक है। हमारी भारतीय संस्कृति अत्यंत प्राचीन है तथा इसका स्वरूप भी विभिन्न संस्कृतियों के मेल से विविधवर्णी है। इसके विविध आयामों में से गुजरता हुआ भारतीय समाज आज किस स्थिति पर पहुंच सका है- "हम क्या थे?" क्या हैं? और क्या हो सकते हैं? "कुछ यही भूल भूत प्रश्न चिह्नों पर यह पाठ आधारित है। भारत के प्रत्येक नागरिक को अपने सांस्कृतिक इतिहास का बोध होना चाहिए। इस दृष्टिकोण से यह पाठ लिखा गया है। आशा है विद्यार्थी लाभान्वित होंगे।

2.3 मूल पाठ

2.3.1 भारतीय सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन का विकास

सभ्यता एवं संस्कृति में बहुत गहरा संबंध है। सभ्यता यदि शरीर है तो संस्कृति आत्मा है। अंग्रेजी में कहावत है कि सभ्यता चीज है जो हमारे पास है, संस्कृति वह गुण है जो हम में व्याप्त है।

भारतीय संस्कृति अत्यंत प्राचीन है तथा इसका विश्लेषण करने पर हमें इसमें विभिन्न संस्कृतियों का मेल दिखाई देता है। इसके विषय में हमारे स्वर्गीय प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू ने कहा है- भारतीय जनता की संस्कृति का रूप सामाजिक है और उसका विकास धीरे-धीरे हुआ है। एक ओर तो इस संस्कृति का मूल आर्यों से पूर्व, मोहन-जो-दडों आदि की सभ्यता तथा द्रविड़ों की महान सभ्यता तक पहुंचता है, दूसरी ओर इस संस्कृति पर आर्यों की बहुत गहरी छाप है, जो भारत में मध्य एशिया से आये थे। पीछे चलकर यह संस्कृति उत्तर-पश्चिम से आनेवाले तथा फिर समुद्र की राह से पश्चिम से आनेवाले लोगों से बार-बार प्रभावित हुई। इस प्रकार हमारी राष्ट्रिय संस्कृति ने, धीरे-धीरे बढ़कर अपना आकार ग्रहण किया।

संस्कृति के इस विकासशील परिवर्तन की अखंड श्रृंखला ने भारतीय सामाजिक जीवन को सदैव प्रभावित किया है। इसके परिवर्तन का प्रभाव प्रत्येक युग के सामाजिक जीवन पर स्पष्ट रूप से दृष्टि गोचर होता है। इस परिवर्तन के आधार पर हम भारतीय सामाजिक जीवन एवं संस्कृति का अध्ययन तीन भागों में कर सकते हैं:

1. प्राचीन भारतीय जीवन और संस्कृति
2. मध्य युगीन भारतीय जीवन और संस्कृति तथा
3. आधुनिक भारतीय जीवन और संस्कृति

इस विषय पर विद्वानों का विचार है कि भारत में सर्वप्रथम निग्रो आए, उनके बाद इस विषय में विद्वानों का विचार है कि भारत में सांस्कृतिक समन्वय हुआ।

नीग्रो जाति के विषय में विद्वानों का मत है कि यह जाति भारत में पश्चिम की ओर से आयी थी और संभवतः अफ्रीका से आई थी। इसकी एक शाखा भारत से निकलकर आस्ट्रेलिया पहुँची। वहाँ इनके वंशज अभी भी उपस्थित हैं। भारत से आस्ट्रेलिया जाते समय रास्तें में इंडोनेशिया, पोलीनेशिया और मलेशिया में भी इस जाति के कुछ लोग रह गए। मलाया, फिलिपाईन न्यूमिनी और अंडमान में जो नाग्रों हैं वे भारत से ही वहाँ गएहैं। भारत में तो नीग्रों लगभग समाप्त हो चुके हैं। अनुमान

BRAOU

है कि या तो ये नीग्रो अपने बाद आनेवाले औष्ट्रिक लोगों द्वारा मारे डाले गए या उनमें ही मिल गए। इनका अस्तित्व अलग नहीं रह पाया। अब भारत में इनकी संख्या बहुत कम है। दक्षिण भारत की आदिम जातियों अथवा असम की नागा जाति में ही इनके अवशेष हैं। नीग्रों लोग खाद्य-सामग्री का संचय करते थे। उन्हें उपजाते नहीं थें। नीग्रो लोगों की भाषा का नमूना अब अंडमान में ही शेष है।

भारत में आनेवाली दूसरी जाति औष्ट्रिय या आग्नेय जाति है। इनका यह नाम इसलिए पड़ा कि ये भारत और यूरोप के अग्निकोण में पाए जाते हैं। इस वंश के लोग मादागास्कर और विंध्य मेखला से लेकर प्रशांत महासागर से ईस्टर द्वीप तक फैले थे। इस जाति के लोग पूर्व और पश्चिम की ओर से होकर भारत में से कई बार गुजरे। इनका संबंध यहाँ नीग्रो एवं मंगोल जातियों के साथ हुआ। भारत के कोलऔर मुंडा जाति के लोग, असम, वर्मा और हिन्दु-चीन की मौर-रव्मेर जाति, निकोबार द्वीप के निकोबारी इसी औष्ट्रिक जाति की मिश्रित संतान हैं। भारत में कोल और मुंडा भाषा को औष्ट्रिक परिवार का माना जाता है। अर्यों के भारत आगमन के समय ये लोग सिंधु की तराई में भी विद्यमान थे। आर्यों ने इन्हें निषाद कहा तथा इनके काले रंग तथा चपटी नाक का उपहास भी किया। ईसा से लगभग 1500 वर्ष पूर्व बहुत से औष्ट्रिक आर्य हो गए। बौद्ध काल में चांडालों की बस्ती और उनकी स्वतंत्र भाषा के जीवित होने का प्रमाण मिलता है। चार-पाँच हजार वर्णों के मिश्रण एवं संस्कृतिक समन्वय के बाद भी हमारे देश में जो बनवासी जातियाँ हैं उन्हें औष्ट्रिक खानदान का ही माना गया है। उनकी भाषा का स्वरूप भी औष्ट्रिक भाषा समूह से कुछ मेल खाता है।

औष्ट्रिक के उपरांत हमारे देश में दूसरा प्रमुख आगमन द्रविड़ जाति का हुआ। द्रविडों के पूर्वज रूप सागर (मेडिटेरेनियन) के किनारे रहते थे। वहाँ से ये लोग तीन झुंडों में भारत आएं। इन लोगों के मस्तक लंबे थे और ये द्रविडी भाषा बोलते थे। जब वे भारत में आए, उस समय उनकी सभ्यता खूब विकसित थी। यहाँ आकार उन्होंने उसका और विकास किया। ये औष्ट्रिकों की भांति कृषि जीवी एवं ग्रामीण नहीं थे। ये नगर-सभ्यता के प्रेमी और अंतरराष्ट्रीय व्यापार में दक्ष थे। इन्होंने आते ही सारे देश को जीत लिया। द्राविड़ जाति विश्व की एक अत्यंत सुसभ्य जाति थी।

इसके पश्चात् भारत में अर्यों का आगमन हुआ। यहां आने पर उनके द्वारा दो जातियों से युद्ध करने का वर्णन मिलता है- निषाद एवं दस्यु या दास। ये दोनों क्रमशः औष्ट्रिक एवं द्रविड़ जातियाँ थी। आर्यों की जाति अत्यंत पराक्रमी थी। उनमें मेधा, एवं विचार शक्ति कूट-कूट कर भरी थी। द्राविड़ एवं औष्ट्रिकों को पराजित कर उन्होंने एक ऐसे समाज की स्थापना की जिसमें विभिन्न जातियों को अपना-अपना स्थान प्राप्त हुआ। अर्यों के नेतृत्व में हमारे देश में सांस्कृतिक समन्वय का अभूतपूर्व कार्य हुआ और यहीं से हमारी संस्कृति की आधारशिला रखी गई। भारतीय संस्कृति इस देश में आकर बसनेवाली अनेक जातियों की संस्कृतियों के मेल से तैयार हुई है। किन्तु आर्य इस संस्कृति के स्थापक थे अतः उनका प्रभाव अधिक दिखाई देता है। आर्यों ने अनेक जाति के लोगों का संगठन करके हिन्दु समाज की स्थापना की तथा उसे चार प्रमुख जातियों में बाँटा। इन चार प्रमुख वर्णों की श्रेणी में उन्होंने विविध जातियों के संपूर्ण समाज को समेटकर हिन्दु समाज का संगठन किया। अतः आर्यों का यह जाति-व्यवस्था का निर्माण विभिन्न जातियों को एक व्यवस्था के अंतर्गत रखकर भारतीय संस्कृति को संगठित करने का प्रथम प्रयास था।

जाति संगठन व्यवस्था के प्रभाव स्वरूप संस्कृतियों में भी समन्वय हुआ। हमारी धार्मिक मान्यताएं, आचार-व्यवहार आदि सभी संस्कृतियों का मिश्रित परिणाम हैं। सबके धर्म एक दूसरे को प्रभावित करते हे हैं। इस प्रभाव से आर्य भी नही बच पाये। आर्यों के सिद्धांत केवल पुस्तकों और पंडितों तक सीमित रह गए। समाज में वे बातें व्यवहार में आई जो द्रविड़ या औष्ट्रिक एवं अन्य संस्कृतियों आई थीं। यही कारण है कि हमारी संस्कृति में प्रधानता उन बातों की नहीं है जिसका उल्लेख ः में किया गया है। जिन बातों -का उल्लेख ऋग्वेद में नहीं मिलता उसे विद्वानों ने आर्येतर ों का प्रभाव माना है। आर्य प्रकृतिपूजक थे किन्तु हमारी संस्कृति वैदिक देवता, अग्नि, इन्द्र,

BRAOU

वरुण, पूषण, सोम, उषा और पर्जन्य तक ही सीमित न रही, हमारे प्रमुख देवता विष्णु तथा शिव हो गए तथा तैतीस करोड़ देवताओं को स्थान मिल गया। पुराणों की कहानियों में द्रीविड़, औष्ट्रिक एवं नीग्रो समाज की दंत कथाए मिश्रित हैं।

यह समन्वय कैसे संभव हुआ, इसके कई कारण है। प्रथम कारण तो यह है कि एक ही समाज के सदस्य हो जाने पर लोगों के रीतिरिवाज आपस में एक दूसरे को प्रभावित करने लगे। इसके साथ ही आर्यों का उद्देश्य अन्य जीतियों से बचना नहीं अपितु उनके समाज में आर्य संस्कृति का प्रचार करना था। आर्य इस संमिश्रण को तोडना या रोकना भी चाहते तो यह संभव नहीं था, क्योंकि शादी-विवाह के द्वारा आर्येतर स्त्रियाँ आर्यों के घर पहुंच गए। धीरे-धीरे आर्य-द्राविड़ संघर्ष समाप्त हो जाने से आर्य एवं द्रविड राजा एवं पंडित भी एकमत हो गए। आर्य स्त्रियों के द्राविड घरों में प्रवेश से आर्य संस्कृति द्राविड़ संस्कृति में प्रविष्ट हुई। समय के साथ-साथ यह परिवर्तन इस सीमा तक पहुँच गया कि आर्य और द्राविड़ एक से दिखाई देने लगे, उनका साहित्य, संस्कृति, इतिहास-पुराण, रस्मरिवाज आदि सभी कुछ समान हो गए। इस सम्मिश्रण से उस समाज का प्रादुर्भाव हुआ जिसे हम हिन्दु समाज कहते है। यह समन्वय दस, बीस या सौ साल में नहीं हुआ है। इसमें हजारों वर्ष लगे। इस परिपाक के बाद हिन्दु संस्कृति का जो रूप सामने आया है उसमें आर्य या आर्येतर संस्कृति को अलग करके देखना असंभव है। यद्यपि विंध्य पर्वत के उत्तर में आर्य संस्कृति एवं दक्षिण में द्राविड़ का नारा अब भी लगता है किन्तु यह सारहीन है। आज शिव और विष्णु उत्तर भारत के वैसे ही अपने देवता बन चुके है जैसे वे दक्षिण के थे। रामायण, पुरान, महाभारत, वेद, उपनिषद आदि पर दक्षिण में भी वही आस्था है जैसा कि उत्तर में। भारत में बोली जाने वाली प्रत्येक भाषा, तेलुगु, तमिल, गुजराती, आसामी बंगाली या मलयालम के साहित्य में इसी इतिहास पुराण, रामायण आदि के आदर्शों पर आधारित कहानियाँ हैं। प्रत्येक भाषा के साहित्य में एक ही संस्कृति की गूंज है और वह है भारतीय संस्कृति। हमारा संपूर्ण सामाजिक जीवन इस सांस्कृतिक चेतना पर ही आधारित है। अतः भारतीय समाज एवं संस्कृति का प्राचीन युग विभिन्न संस्कृतियों की समन्वय शील प्रवृत्ति के फलस्वरूप एक हिन्दु-संस्कृति एवं हिन्दु समाज के संघठन का युग था।

2.3.2 मध्य युगीन भारतीय सामाजिक जीवन एवं संस्कृति

प्रत्येक संस्कृति के दो गुण होते हैं। एक गुण तो होता है विकास की दिशा में परिवर्तन शीलता और दूसरा गुण होता है आत्मरक्षा हेतु अपने आपको दूसरे से अलग रखने की प्रवृत्ति भारतीय संस्कृति में ये दोनों गुण पाए जाते हैं। इन दोनों गुणों का स्वरूप हमें मध्ययुग में दिखलाई पड़ता है। प्राचीन काल में विभिन्न संस्कृतियों के समन्वित संगठन से हिन्दु-समाज एवं संस्कृति की स्थापना हुई। सीमा पार से विदेशी आगमन समाप्त नहीं हुए थे। साथ हिन्दु-धर्म के विरोध में जैन एवं बौद्ध धर्म का भी उदय हुआ। हिन्दु धर्म या सनातन हिन्दु धर्म में प्रवृत्ति एवं निवृत्ति क्रमशः सांसारिक एवं आध्यात्मिक यात्रा के सोपान हैं। व्यक्ति सांसारिक कर्तव्यों के पालन में प्रवृत्त होता है किन्तु विषय वासनाओं से निवृत्त होकर अध्यात्म ज्ञान के श्रत्र में प्रवेश करता है।

जैन एवं बौद्ध धर्मों ने भारतीय आध्यात्म ज्ञान की टुकडे टुकडे में व्याख्या कर उसका स्वरूप विकृत किया तथा समाज में भी धार्मिक विश्वासों के प्रति अविश्वास उत्पन्न किया। निवृत्ति सिखा सिखा कर लोगों के मन में जीवन और जगत् के प्रति घृणा उत्पन्न की। लोग जीवन से एवं अपने कर्तव्यों से उदासीन होने लगे। जीवन के विषय में सोचना छोड़कर मृत्यु के बाद की बात सोचने लगे। इससे देश की मानसिक शक्ति का ह्रास् हुआ। हमारी सुदृढ़ संस्कृति में विचारों की क्रंतिमयी आंधी आई। उसने हमारे विचारों में अज्ञानजन्य संदेह उत्पन्न किया।

गौतम बुद्ध ने जाति प्रथा का भी विरोध किया। अब तक हमारी संस्कृति जाति व्यवस्था आधार पर संगठित थी। इसके विचलन से हमारी संस्कृति में भी विघटन प्रारंभ हुआ। जाति का भेद भाव मिटाने का यह प्रयास हमारे सामाजिक जीवन में इस तरह प्रविष्ट हुआ कि बु बाद कबीर आदि निर्गुनिया संतों से होती हुई गांधी आदि आधुनिक विचारकों तक आई है।

BPRAOU

बौद्ध एवं जैन धर्म के हिन्दु धर्म एवं अध्यात्मज्ञान पर प्रहार को रोकने का कार्य जगद्गुरू, शंकराचार्य तथा उनके पश्चात् रामानुजाचार्य, निंबार्क, मध्वाचार्य एवं वल्लभाचार्य आदि ने किया। सामाजिक जीवन में जातिवाद के नाम पर विघटन का क्रम जारी रहा। हम इन संघर्षशील परिस्थितियों से गुजर ही रहे थे कि हमारे देश में पुनः विदेशीयों का आगमन प्रारंभ हो गया। इनमें सबसे महत्वपूर्ण प्रभाव मुसलमानों के आगमन से हुआ।

मुसलमानों के आगमन के साथ ही इस्लाम ने भारत में प्रवेश किया। हिन्दु धर्म एवं इस्लाम पास-पास आए। किन्तु उनका प्रथम मिलन मैत्रीपूर्ण नहीं था। क्योंकि इस्लाम आक्रमणकारी का धर्म बनकर आया था।

भाव से ईश्वर के निर्गुण रूप का प्रचार हुआ। मूर्ति पूजा का विरोध हुआ। मंदिर
ता... बड़े-बड़े ग्रंथालय जला डाले गए। इस तरह इस्लाम हमारी संस्कृति में विध्वंसकारी
आँधी के ... उपस्थित हुआ। इसकी भारतीय संस्कृति एवं जीवन पर दो तरह से प्रतिक्रिया हुई। एक प्रतिक्रिया ने इस्लाम को हमारी संस्कृति में प्रविष्ट कराया तो दूसरी ने इस्लाम के प्रभाव से बचे रहने के लिए अपने आपको धार्मिक एवं प्राचीन सामाजिक रूढ़ियों में बाँध लिया।

प्रथम प्रतिक्रिया का कारण यह था कि एक तो अब तक समाज में व्यक्ति केवल सामाजिक जीवन जीने का आदी था। राजा उसका पालक होता था। अतः शौर्य के होने पर भी राजनैतिक चेतना का अभाव था। जाति-प्रथा एवं वर्ण-व्यवस्था भी रूढि ग्रस्त होकर समाज में लोगों को त्रस्त कर रही थी। ऐसी दशा में अपने धर्म का त्याग कर लोगों का ईस्लाम की शरण में जाना स्वाभाविक ही था। आक्रमणकारी एवं राजा का धर्म होने के कारण इस्लाम हिन्दु धर्म एवं संस्कृति पर बलपूर्वक भी आरोपित हुआ और दुर्बल समाज ने चाहे अनचाहे उसे स्वीकार किया।

समाज के सबल वर्ग ने इस्लाम के प्रभाव को स्वीकार नहीं किया। किन्तु शक्ति शाली राजा का धर्म होने के कारण उससे विद्रोह करना आसान नहीं था। अतः समाज के इस वर्ग ने अपने आपको अपनी सांस्कृतिक सीमाओं में समेट लिया। धर्म को जीवित रखने के लिए एवं उसके प्रचार के लिए बाह्याडंबरों का विकास हुआ। जाति प्रथा अधिक कठोर हो गई। स्त्रियों के सम्मान की रक्षा के लिये समाज में पर्दा प्रथा तथा बाल विवाह प्रचलित हुए। इस सब से हमारा सामाजिक जीवन कलह, संघर्ष, आतंक तथा भय से आक्रंत जीवन बन गया। समाज के जिस वर्ग ने मुगल बादशाह की गुलामी स्वीकार कर ली थी उसके जीवन में कोई उद्देश्य नहीं था, अपने कोई आदर्श नहीं थे तथा कोई संघर्ष भी नहीं था। ऐसा वर्ग अपने जीवन में सुख एवं ऐश्वर्य के कीचड़ में डूबा हुआ सुरा और सुंदरी के आकर्षण में उलझा।

BRAOU

समाज का जागरूक वर्ग अपने जीवन की तत्कालीन परिस्थितियों से समझौता न कर सका। अतः संघर्ष करता हुआ अपने ईश्वर की शरण में गया तथा अपनी संस्कृति की रक्षा के लिए भक्ति का पुनः प्रचार एवं प्रसार किया। देश को ऐसी स्थिति से बचाने हेतु दक्षिण के आलवार संत, रामानुजाचार्य, वल्लभ, रामानंद तथा इनकी परंपरा में सूर, तुलसी, कबीर मीरा आदि ने डूबती भारतीय संस्कृति एवं समाज के लिए समन्वय एवं संगठन का रूप दिया वहीं मध्य युग संघर्ष एवं नये विकास का युग बना।

2.3.3 आधुनिक भारतीय सामाजिक जीवन एवं संस्कृति

भारतीय संस्कृति का तृतीय उत्थान अंग्रेजों के भारत आगमन से प्रारंभ होता है। अंग्रेजों से पहले डच एवं पुर्तगीज़ भारत आए किन्तु हमारे समाज को वे विशेष प्रभावित न कर सके। आधुनिक युग या तृतीय उत्थान काल में मुख्य प्रभाव अंग्रेजों की संस्कृति, सभ्यता एवं इसाई धर्म का था। मुसलमानों के भारत में प्रवेश एवं अंग्रेजों के आगमन में एक अंतर था। मुसलमान हमारे देश में आक्रमणकारी बनकर आए तथा शक्ति के सहारे हमारे देश के राजा बने। अंग्रेजों ने शक्ति के स्थान पर नीति से काम लिया। वे व्यापारी के रूप में भारत में प्रविष्ट हुए और धीरे-धीरे हमारे देश की सत्ता

का ही व्यापार कर डाला। उन्होंने तीन स्तरों पर कार्य करना प्रारंभ किया। प्रथम तो यहां के समाज में आपसी फूट डालकर हमें दुर्बल बनाया जिससे हममें संघर्ष की क्षमता न रहे। दूसरा समाज के बुद्धिवादी वर्ग को पाश्चात्य विचारधारा से प्रभावित कर अपने वशीभूत किया तथा धनिकों को अपने धनोपार्जन का आधार बनाकर धन लाभ कराया। समाज के शक्तिशाली वर्ग जैसे राजा, जागीरदार आदि के द्वारा समाज से धन एकत्रित करके सरकारी खजाने में एकत्र करवाया और इसके बदले उन्हें भी धन-ऐश्वर्य प्रदान किया। इस तरह भारत की बुद्धि एवं धन का शोषण कर समाज का मेरूदंड ही तोड़ दिया। जिससे हम संघर्ष या क्रांति की कल्पना न कर सकें। अंग्रेजों का तीसरा प्रयास समाज के दुःखी, पीड़ित, शोषित लोगों की सहानुभूति प्राप्त करनी थी। इसाई मिशनरियों के द्वारा उन्होंने दुःखी गरीब जनता को सहानुभूति, प्रेम और जीवन की भौतिक सुविधाएं देकर अपने वश में कर लिया। इससे हमारी कमर ही टूट गई। प्रथम प्रयास में हमारी भूजाएं कटी। हम आपसी मतभेद में पड़कर दुर्बल हो गए। दूसरे प्रयास से अंग्रेजों ने हमारी बुद्धि एवं धन की शक्ति पर अधिकार जमाया। और तीसरे प्रहार से हमारे जनमत को अपनी झोली में डाल लिया। यह सब इतनी निपुणता से किया गया कि जब तक हम सचेत हुए यह अजगर हमारी संस्कृति का अधिकांश निगल चुका था। इस भयावह परिस्थिति का वर्णन करते हुए श्रीमती महादेवी वर्मा ने कहा कि "इस्लाम हमारे देश में भाले की नोक पर आया किन्तु, इसाई धर्म इंजेक्शन की महीन सुइयों में घुसकर हमारे शरीर में प्रविष्ट हो गा, और उसका असर हम तब जान सकें जब उसका प्रभाव हमारी रंगों में फैल चुका था।"

अस्तु! भारतीय संस्कृति का सूर्य इतने शीघ्र डूब जाता, यह संभव नहीं था। एक कहावत है कि समुद्र में बड़ी मछली छोटी मछली को खाकर जीवित रहती है। यही बात हमारी संस्कृति के विषय में भी सत्य है। जब दो संस्कृतियों का मेल होता है तो दुर्बल संस्कृति का विलय होता है, किन्तु सबल संस्कृति दूसरे के गुणों को आत्मसात कर सबलतर बनती है। यही कुछ हमारे साथ भी हुआ। अंग्रेज अपने लाखों प्रयत्नों द्वारा भी हमरी बुद्धि को खोखली नहीं कर पाए, राजाराम मोहन राय, स्वामी दयानंद सरस्वती, विवेकानंद, तिलक, गोखले एवं गाँधी जैसे भारत रत्नों ने पुनः हमारी शक्ति को संगठित करके अपने देश को स्वतंत्र कराया। इसके साथ ही साथ पाश्चात्य शिक्षा, धर्म, दर्शन, समाज, साहित्य, विज्ञान एवं जीवन-दर्शन की अच्छी बातों को ग्रहण कर हमने पुनः अपने देश का पुनर्गठन किया।

2.3.4 नई शिक्षा के दुष्परिणाम।

BRAOU

शिक्षा के क्षेत्र में भारत सदा विश्व का मार्ग दर्शन करता रहा है। किन्तु मध्य एवं आधुनिक युगों के संघर्ष ने हमें अपने ज्ञान के भंडार से दूर कर दिया है। गुलामी के बंधन में जकड़े हमारे समाज में अशिक्षा का प्राबल्य था। उस समय अंग्रेजी भाषा का ज्ञान कराने के लिए शिक्षा संस्थाओं का निर्माण किया तथा उसमें नवीन शिक्षा पद्धती लागू की जिसे देखकर डॉ. मेकाले ने कहा था कि "थोडी सी पाश्चात्य शिक्षा से ही बंगाल में मूर्ति पूजनेवाला कोई नहीं रहेगा।" तथा डॉ. डफ ने घोषणा की- "जिस जिस दिशा में पाश्चात्य शिक्षा प्रगति करेगी, उस उस दिशा में हिन्दुत्व के अंग टूटते जाएंगे। और अंत में जाकर ऐसा होगा कि हिन्दुत्व का कोई भी अंग साबित न रहेगा। लार्ड शाफट्सवरी ने कहा था कि "जो भी हिन्दु इसाई परमात्मा का ध्यान करेगा वह ब्रह्मा और विष्णु को स्वयमेव भूल जाएगा।" उस समय की हमारी दशा का वर्णन करते हुए श्री रामधारी सिंह दिनकर ने ककहा कि "अंग्रेजी शिक्षा से जो प्रकाश निकला उससे हिन्दु युवकों सभी दिशाओं से मुडकर केवल दोष-ही दोष दिखायी देने लगे। उनका मस्तिष्क बुद्धिवादी तर्कों से भरा हुआ था। ये युवक बडी निर्ममता से हिन्दुत्व की निंदा उसी तरह करने लगे जैसे इसाई मिशनरी करता था। ये नौजवान प्रतिभा भंजक क्रांतिकारी थे। उन्होंने सचमुच ही मूर्तियों पर हाथ तो नहीं उठाया, किन्तु अपने पूर्वजों के धार्मिक और नैतिक भावनाओं पर उन्हें कोई श्रद्धा नहीं रह गई थी"।

"घर घर में विवाद छिड गया कि ईश्वर निर्गुण है या सगुण? मंदिर जाना चाहिए या नहीं। जाति की प्रथा दूषित और सारा हिन्दू धर्म ही कलंकित और दोषपूर्ण क्यों नहीं माना जाय? उनका

निश्चित मत हो गया कि पुराण की कथाएँ गद्यों के अंबार है और यज्ञोपवीत, चंदन, कंठीमाला और शिखा ये फालतू चीजें हैं।"

"कुछ जोशीले नौजवानों ने मदिरापान कर अपने पिता, चाचा और बांधवों को दिखाने लगे कि हम तुमसे सर्वथा भिन्न है"। मंदिरों में गोमांस और गाय की हड्डी फेंक देना आम बात हो गई। इस स्थिति पर विलाप करते हुए स्वामी विवेकानंद ने कहा था कि बच्चा जब भी पढ़ने को स्कूल भेजा जाता है, पहली बात यह सीखता है कि, उसका बाप बेवकूफ है। दूसरी बात यह है कि उसका दादा दीवाना है, तीसरी बात यह है कि उसके सभी गुरू पाखंडी है और चौथी यह कि सारे-के-सारे धर्म-ग्रंथ झूठे और बेकार है।

तत्कालीन समाज में धर्म के प्रति आविश्वास घृणा की सीमा तक पहुँच गया था। इसके साथ ही साथ पाश्चात्य साहित्य में अंकित उद्दाम प्रेम की ज्वाला का प्रभाव भी नवयुवकों पर पडा। अपने धर्म में प्रबल सामाजिक अनुशासन, पर्दे की प्रथा एवं नैतिक नियमों से घबराकर वे हिन्दु धर्म का त्याग कर अपने उद्दाम प्रेम की प्राप्ति के लिए इसाई धर्म में दीक्षित होने लगे।

इतना सब होते हुए भी भारतीय संस्कृति की प्रबल परंपरा को अधिक समय तक दबाए रखना आसान न था। सूर्य मेघों के बीच हमेशा के लिए तो नहीं छिप सकता। भारतीय गहन ज्ञान के प्रकाश के सामने ये अधूरे बुद्धिवादी युवक मेघों की तरह ही थे। समय पर इनका अधिक प्रभाव न पड सका। लोग उन्हें घृणा की दृष्टि से देखने लगे। संस्कृति पर इस वज्रधात को देखकर भारत में सोई हुई प्रतिभा ने करवट बदली और नवोत्थान का युग आया।

2.3.5 भारतीय संस्कृति का नवोत्थान

गीता में भगवान कृष्ण ने कहा -

"यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानम धर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।"

BRAOU

अर्थात् समाज में जब धर्म और नैतिकता का विनाश होता है, अधर्म और अत्याचार बढ़ता है तब कुछ महापुरुष जन्म लेते हैं जो डूबती हुई संस्कृति एवं समाज का उद्धार करते हैं। आधुकि संकटग्रस्त युग में भी कुछ ऐसे ही महापुरुष हुए जिन्होंने डूबती हुई हमारी संस्कृति को बचाने का प्रयास किया।

उन्नीसवीं सदी से पहले या मध्ययुग में जो सुधारक संत हुए उनका एकमात्र विषय धर्म था, क्योंकि तत्कालीन समाज की सांस्कृतिक चेतना का वह केन्द्र था। उस समय राजनैतिक और सामाजिक चेतना उतनी अधिक विकसित नहीं हुई थी। किन्तु आधुनिक युग में केवल धर्म नहीं, अपितु समाज भी तुलनात्मक आलोचना का विषय बना। लोगों को समझाया जाने लगा कि इसाई धर्म अच्छा हो या न हो किन्तु इसाई समाज हिन्दु और मुस्लिम समाजों से अधिक जागृत, अधिक कर्मठ और अधिक उन्नत और उदार है। भारत को डर यूरोप से आनेवाले धर्म से नहीं, अपितु वहाँ के विज्ञान, बुद्धिवादिता, साहस और कर्मठता से है। अतः आधुनिक युग के नवोत्थान आंदोलन का लक्ष्य अपने धर्म, अपनी परंपरा एवं अपने विश्वासों का त्याग करना नहीं था, अपितु यूरोप की विशिष्टताओं के साथ उनका सामंजस्य बैठाना था, ताकि पश्चिम के मोह से ग्रस्त बुद्धिवादी वर्ग को पुनः सत्य का ज्ञान कराया जा सके।

इस प्रायस के अंतर्गत नवोत्थान वादियों का प्रमुख लक्ष्य था कि अधिभौतिक के जाल में उलझे हुए पाश्चात्य मोह को दूर करने के लिए यह देखा जाय कि जो कुछ पाश्चात्य विचारधारा की विशिष्टताएं हैं वे अपने धर्म में है कि नहीं। इसने धर्म को नया स्वरूप दिया और उसकी अधिभौतिक व्याख्या की। भारत ने अपने प्राचीन ज्ञान को नवीन भाषा में लोगों तक पहुंचाने लगा। इस युग के सुधार

वादियों को दो तरफा प्रयास करना था तथा दूसरी ओर हमारे धार्मिक आध्यात्मिक एवं नैतिक सिद्धांतों की पुनर्स्थापना करनी थी। इससे बुद्धिवादी वर्ग को पथभ्रष्ट होने से बचाया जा सकता था। इसके साथ ही समाज में व्याप्त अत्याचार एवं दूषित प्रथाओं को हटाकर जन सामान्य में अपने धर्म तथा अपनी संस्कृति में पुनः आस्था उत्पन्न करनी थी।

2.3.6 धार्मिक सुधार

राजा राम मोहन रायः

भारतीय संस्कृति के नवजागरण के अध्याय में सर्वप्रथम नाम श्री राजा राम मोहन राय का आता है। वे अपने समय के एक गंभीर विचारक एवं समाज सुधारक थे। विभिन्न धर्मों के गंभीर अध्ययन तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण के फलस्वरूप उनकी बुद्धि विकसित थी। उन्होंने विश्ववाद को प्रश्रय दिया। फ्रांस के वैदेशिक मंत्री को सन् 1831 ई. में पत्र लिखते हुए उन्होंने कहा था "केवल धर्म से ही नहीं, प्रत्युत अदूषित सामान्य बुद्धि एवं विज्ञान से भी यही ज्ञात होता है कि सारी मनुष्य जाति एक परिवार है तथा जो अनेक जातियाँ और राष्ट्र हैं वे उसी परिवार की शाखाएं हैं। "भारत की तत्कालीन परिस्थिति को देखकर वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे थे कि भारत के प्राचीनतम सत्यों का यूरोप के सिद्धांतों के साथ सामंजस्य बिठाए बिना भारत का कल्याण नहीं है। उनकी जीवनी लेखिका मिस कालेट ने लिखा है कि "इतिहास में राममोहन का स्थान उस महासेतु के समान है जिसपर चढ़कर भारतवर्ष अपने अथाह अतीत से अज्ञात भविष्य में प्रवेश करता है। प्राचीन जाति प्रथा और नवीन मानवता के बीच जो खाई है, अंध-विश्वास और विज्ञान के बीच जो दूरी है, स्वेच्छाचारी राज्य और जनतंत्र के बीच जो अंतराल है तथा बहुदेव वाद एवं शुद्ध ईश्वरवाद के बीच जो भेद है उन सारी खाइयों पर पुल बांधकर भारत को प्राचीन से नवीन की ओर भेजनेवाले महापुरुष राजा राम मोहन राय है।

20 अगस्त सन् 1820 में उन्होंने ब्रम्ह-समाज की स्थापना कलकत्ते में की। ब्रम्ह-समाज सभी धर्मों के प्रति उदार एवं सहिष्णु था। इसमें सभी धर्मों के लगों के बीच एकता एवं सद्भाव या निर्जीव वस्तु की निंदा वर्जित थी। राममोहन राय ने धार्मिक सुधारों की चर्चा की। उसके माध्यम से एक ओर तो उन्होंने इसाई धर्म के कुप्रभावों को रोखने का प्रयास किया तो उसके साथ ही साथ हिन्दु धर्म में व्याप्त कुरीतियों का भी खंडन किया। उनके प्रयासों का परिणाम यह हुआ कि अट्ठारवीं सदी में जहां यूरोप नवोत्थान के नाम पर धर्म से दूर जा रहा था वहां उन्नीसवीं सदी में भारत में जो नवोत्थान हुआ उसका आधार धर्म था। विश्व मानवता की बात युरोप में भी होती थी, किन्तु यूरोपीय विश्व मानवता में युरोप एवं अमेरिका ही आते थे। पूर्वी देशों का उसमें कहीं स्थान न था। राम मोहन राय ने विश्वमानवता में संपूर्ण विश्व को सम्मिलित किया। आज भी हम विश्व मानवता के उसी आदर्श अपनाएं हुए हैं।

BRAOU

2.3.7 समाज सुधार

बंगाल के ब्रम्ह समाज के बाद महाराष्ट्र में प्रार्थना समाज की स्थापना हुई। उन्नीसवीं सदी के नवोत्थान की धारा फलतः सामाजिक आधारशिला पर निर्मित हुई थी। बंगाल में ब्रम्ह समाज का स्वरूप कुछ धार्मिक अवश्य था किन्तु महाराष्ट्र में वह पूर्ण रूपेण सामाजिक ही रहा। इसके मुख्य उद्देश्य चार थेः-

1. जाति-प्रथा का विरोध।
2. विधवा-विवाह का समर्थन
3. स्त्री-शिक्षा का प्रचार।
4. बाल-विवाह का विरोध।

हिन्दु समाज एवं संस्कृति के ये चार ऐसे पक्ष थे जिनकी आलोचना बाहरी तत्व कर रहे थे या स्वयं भारतीय समाज इनसे प्रसन्न नहीं था। अतः समाज सुधारक प्रार्थना समाज के संस्थापक श्री गणेश महादेव रानाडे एवं उनके सहयोगियों ने इन्हीं बातों पर अपना ध्यान केन्द्रित किया। महाराष्ट्र में स्थान-स्थान

पर प्रार्थना समाज खोले गए। महाराष्ट्र के संत ज्ञानदेव, एकनाथ, तुकाराम, रामदास और जनार्दन पंत ने धर्म के बाह्य आचारों की आलोचना की एवं जाति-प्रथा का विरोध किया। इन लोगों ने समाज में व्याप्त विषमता को मिटाने का प्रयास किया। बाद में लोकमान्य तिलक ने राष्ट्रीय भावना की पावन-धारा प्रवाहित की।

2.3.8 नवीन आध्यात्मिक सांस्कृतिक चेतना का विकास

इसके पश्चात् आर्य समाज का उदय हुआ। आर्य समाज के प्रवर्तक माहिर्षि दयानंद थे। उन्होंने भारतीय संस्कृति में सुधार आवश्यक समझा। केवल समाज या धर्म के नाम पर किये गए सुधार उन्हें अपूर्ण प्रतीत हुए। उन्होंने धार्मिक विसंगतियों को उत्पन्न करने के आधार पुराणों का अतिक्रमण कर वैदिक ज्ञान से ओत-प्रोत धर्म के शुद्ध स्वरूप को सामने रखा। साथ ही हिन्दुत्व में व्याप्त आत्महीनता को दूर करने के लिए उन्होंने ईसाई एवं मुस्लिम धर्म ग्रंथों में भी वैसे ही दोष दिखाए जिनका आरोपण मुसलमान एवं ईसाई हिन्दु धर्म पर कर रहे थे। इसके दो परिणाम निकले। एक ओर तो जब हिन्दु जनता ने देखा कि उनके धर्म में बताए जानेवाले दोष ईसाई धर्म और इस्लाम में भी है। तो उनकी आत्महीनता की भावना कम हुई। धर्म के मूल रूप का ज्ञान होने पर उनमें अपने धर्म के प्रति आस्था एवं गोरव का भाव जागृत हुआ। महर्षि दयानंद के प्रयासों से भारतीय संस्कृति एवं हिन्दुत्व की रक्षा तो हुई है किन्तु उससे भारतीय संस्कृति को एक आघात भी पहुँचा। इस्लाम एवं ईसाई धर्म के आक्षेप पूर्ण कंटकों से हिन्दु धर्म को मुक्त करने के अतिप्रयास में उनकी दृष्टि एकांगी हो गई एवं उस महान विचारक की एकांगिता के कारण हिन्दु के स्थान पर आर्य शब्द का प्रचार हुआ। भारतीय संस्कृति जो कि विश्व में सबसे प्राचीन एवं हिन्दू जाति प्रथम मानव के रूप में मानी जाती थी उसकी परिकल्पना में परिवर्तन हुआ। आर्यों की उत्पत्ति भारत से दूर मानी गई। भारत में उनका आगमन बताया गया। आर्य एवं आर्येत्तर संस्कृतियों के संयोग को ही हिन्दु संस्कृति का पर्याय मान लिया गया। इससे एक ओर तो भारतीय संस्कृति अपने प्राचीनतम होने का गौरव खो बैठीहै, वहीं दूसरी ओर आर्य-आर्येत्तर मिलन की विभाजक रेखा ने भारतीय संस्कृति के कलेवर को विभक्त कर विकलांग बना दिया।

आर्यसमाज के बाद थियोसोफिकल सोसायटी या ब्रह्म विद्या समाज की स्थापना हुई। इसके प्रमुख आधार स्तंभ श्रीमती एनी बेसेंट एवं मैक्समूलर महोदय है। यूरोप ने भारतीय संस्कृति को खंडित करने का बीड़ा उठाया था किन्तु इन दोनों महान यूरोपियों ने भारतीय संस्कृति को विस्मृति के गर्त से निकालकर गौरव प्रदान किया। इन लोगों ने अखंड हिन्दुत्व का समर्थन किया। श्रीमती एनी बेसेंट ने केवल वेद, उपनिषद, एवं गीता ही नहीं, अपितु स्मृति, पुराण, धर्मशास्त्र, साहित्य इन सभी का आधार ग्रहण कर हिन्दुत्व के प्रचलित समग्र रूप का समर्थन किया। उनके विषय में दिनकर जी लिखते हैः- उनके (एनी बेसेंट के) मुख से पुनर्जन्म, अवतार, देवता योगऔर अनुष्ठान तथा चौरासी लाख योनियों की बातें सुनकर ऊँघते हुए हिन्दु भी •अचकचाकर बैठ गए और उनमें से कितनों का हिलता हुआ विश्वास फिर से स्थिर हो गया। एनी बेसेंट ने हिन्दुत्व का समर्थन किसी भावावेश में नहीं किया था। उन्होंने स्पष्ट ही कहा है कि चालीस वर्षों के-सुगंभीर चिंतन के बाद में यह कह रही हूँ कि विश्व के सभी धर्मों में हिन्दु-धर्म से बढ़कर पूर्ण वैज्ञानिक दर्शन युक्त एवं आध्यात्तिकता से परिपूर्ण धर्म दूसरा और कोई नहीं है।"

आधुनिक भारतीय जीवन को प्रभावित करने और नये रूप में डालनेवाले अंशों में महात्मा गांधी जी के नेतृत्व में राष्ट्रीय आंदोलन या स्वतंत्रता संग्राम की भूमिका विशेष उल्लेखनीय है। उसने राष्ट्रीय भावना का विकास करते हुए राजिनीतिक चेतना का विकास किया। इतना ही नहीं, सामाजिक, मानवीय और आध्यात्मिक चेतना के विकास में भी उसका महत्वपूर्ण योगदान रहा। वह भारतीय जीवन के सभी पहलुओं में परिवर्तन, नया स्पंदन और जागृति ले आनेवाला सर्वतोमुखी आंदोलन था। राष्ट्रीय आंदोलन में जहाँ नरम दल के नेताओं ने सुधारवादी दृष्टि को अपनाया, उग्रवादियों ने क्रांति का आवाहन किया। मार्क्सवाद और मार्क्सवादी दल ने सामाजिक क्रांति की भावना को पुष्ट किया तथा सामाजिक शोषण के विरुद्ध आवाज उठायी।

BRAOU

आधुनिक सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन के प्रेरणासूत्रों और विचारधाराओं का इस तरह विश्लेषण कर सकते हैं- (1) राष्ट्रीय आंदोलन के द्वारा राष्ट्रीय भावना और एकता का विकास (2) धार्मिक सामाजिक सुधारवादी आंदोलनों के द्वारा रूढ़ विश्वासों से मुक्त मानवतावादी दृष्टि का विकास (3) सांस्कृतिक-साहित्यिक आंदोलनों के द्वारा उपनिषदिक विचारधारा का विकास करते हुए नवीन आध्यात्मिक सांस्कृतिक चेतना का प्रसार (4) पाश्चात्य प्रभाव और शिक्षा प्रसार के माध्यम से प्रजातंत्रात्मक भावना व्यक्ति-स्वातंत्र और व्यक्तिवादी मूल्यों का प्रचार। (5) मार्क्सवाद की प्रेरणा से आर्थिक वर्गभेदों और शोषण को समाप्त करके समसमाज की परिकल्पना और (6) वैज्ञानिक दृष्टि, तकनीकी शिक्षा और औद्योगीकरण के परिणाम स्वरूप आधुनिक दृष्टि का ग्रहण। आधुनिक भारतीय जीवन के ऐतिहासिक विकास को ध्यान में रखते हुए सामाजिक-सास्कृतिक विकास के प्रेरक दृष्टिकोणों को सुधारवादी पुनरुत्थानवादी, सांस्कृतिक नवजागरण संबंधी, मार्क्सवादी या क्रंतिकारी, वैज्ञानिक और नवीन मानवतावादी रूप में विभाजित कर सकते हैं। इन वैचारिक बिन्दुओं से भारतीय जीवन और साहित्य दोनों समान रूप से प्रभावित हुए हैं।

2.3.9 आधुनिक भारत की नवीन सामाजिक-सांस्कृतिक चेतना

सवामी रामकृष्ण परमहंस, विवेकानंद एवं गाँधी जी के अथक प्रयासों से आज भारतीय जीवनधारा का एक सुसंस्कृत रूप हमारे सामने हैं। गाँधी, नेहरू एवं श्रीमती इंदिरागांधी के कर्मठ जीवनदर्शन ने आज भारत का जो ढाँचा तैयार किया है वह अतीत से सर्वथा भिन्न है। आज हम परंपरागत अंधविश्वास एवं रूढ़ियों से मुक्त हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति के साथ ही साथ भारतीय प्रजातंत्र में मानव का आधार धर्म नहीं, मनुष्य है। समाज का कलेवर ब्राम्हण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शुद्र के चार वर्ण पर खडा नहीं हैं, अपितु देश का हर नागरिक उसका आधार है। रहन-सहन, जीवन-शैली, व्यवसाय, नौकरी या राजसत्ता की आकांक्षा जाति के आधार पर नहीं,बल्कि मानव के व्यक्तिगत गुणों एवं उसकी क्षमता पर आधारित है। हमारा सबसे बड़ा धर्म मानव धर्म एवं जाति, मनुन्य जाति है। आज की हमारी सामाजिक व्यवस्था में संविधान ने प्रत्येक जाति एवं धर्म के माननेवाले को समान अधिकार प्रदान किए हैं। यह समानता जाति या धर्म की स्वतंत्रता की रक्षा करते हुए व्यक्ति में समाज एवं समाजतंत्र में समान अधिकार का समभागी मानतीहै। आज हर व्यक्ति को अपनी आकांक्षाओं के अनुरूप पूर्णविकास करने की स्वतंत्रता है। मानव के विकास के विचार से अब तो मानव-विकास संसाधन मंत्रालयम की स्थापना भी हो गई है।

जाति प्रथा एवं धार्मिक संकीर्णता के बाद हमारी दूसरी प्रमुख समस्या नारी समस्या थी। आधुनिक काल के प्रारंभ से ही नारी-समस्या को हल करने के प्रयास प्रारंभ हो गए थे। उस समय यह कार्य दुष्कर था किन्तु असंभव नहीं था। आज हमारे प्रबुद्ध विचारकों के अथक प्रयास से हमने उस समस्या को भी हल कर लिया है। हमारे देश में स्त्री जाति के उद्धार के लिए नियम एवं कानून बने हैं। शिक्षा एवं नौकरी में नारी को समानाधिकार प्राप्त हैं। आज वह डाक्टर है, इंजीनीयर है, गुरू हैं, नेता भी हैं। आज वह देवतुल्य मातृगीरमा को प्राप्त कर चुकी है। बाल विवाह एवं सती प्रथा के विरुद्ध कानून बना दिए गए हैं। नारी को अपने पर किए जानेवाले अत्याचार के विरुद्ध आवाज उठाने की स्वतंत्रता है तथा उसके अधिकारों की रक्षा के लिए सरकारी कानून भी बने हैं। दहेज की प्रथा कभी कभी बुझी हुई चिता की अग्नि की चिनगारी के रूप में दहक उठती हैं, किन्तु हमारी सरकार उसके प्रति पूर्ण जागरूक तथा सक्रिय है। आज नारी वीर गाथाकाल के क्षत्रिय राजाओं की भोग्या नारी नहीं हैं,भक्तिकाल की 'शुद्र पशु नारी' नहीं, रीतिकाल की विलास की सामग्री नहीं। आज वह समाज की इकाई है। अव समाज रूपी रथ के दोनों पहिए स्त्री और पुरुष समान रूप से प्रगति पथ पर चल रहे हैं।

आर्थिक दृष्टि से जहाँ पहले राजा एवं प्रजा में समाज का विभाजन था अंग्रेजों ने जमींदार और दास बनाया। समाज के दुखी वर्ग में कर्जदार और साहूकार है। वैज्ञानिक एवं तकनीकी विकास हुआ है। मिल मालिक एवं मजदूर तो अभी भी है, किन्तु अब मजदूर एक विवश एवं मौन दास नहीं। वह एक व्यक्ति है। देश में उसके अधिकारों की सुरक्षा की व्यवस्था है। आज वह भी अपना जीवन सुख-सुविधाओं से पूर्ण बनाता है। समाज आर्थिक दृष्टि से उच्च वर्ग, मध्य एवं निम्न वर्ग में अवश्य

BRAOU

बँटा हुआ है। किन्तु मध्य एवं निम्न वर्ग को भारतीय संविधान में उतने ही अधिकार प्राप्त हैं जितने उच्च वर्ग को। मध्य एवं निम्न वर्ग के सहायतार्थ बैंकों की सुविधाएँ उपलब्ध हैं। अतः हम अब समाज में आर्थिक विषमता की ज्वाला से आक्रांत नहीं हैं। शहरों का विकास हुआ है। वैज्ञानिक प्रसाधनों से बिजली, गैस, कल-कारखाने आदि की सुविधा प्राप्त है। शहर, धनी एवं समृद्ध होते जा रहे हैं। किन्तु ग्राम ही देश की प्रगति की आधार शिला है। अतः अब हमारी सरकार ग्रामों में भी बिजली, पानी, स्वास्थ्य रक्षा, आवास, शिक्षा एवं मनोरंजन की सुविधा उपलब्ध कराने में संलग्न है

सर्वतोमुखी विकास की दिशा में विज्ञान ने हमारी बहुत सेवा की है। आज देश में प्रगति की हर संभावना है, किन्तु हमारी सभ्यता एवं संस्कृति के पौधे में पुष्प के साथ कुछ काँटे हैं। आज हम विज्ञान के माध्यम से पूरी विश्व संस्कृति से जुड़ गए हैं। आवागमन के साधनों ने विश्व की विशालता को कम कर दिया है। आज पृथ्वी कुन्दुक की भाँति हमारी पहुँच के भीतर है। विश्व संस्कृति के मेले में हमने बहुत कुछ पाया है तो कुछ खोया भी है। विविध संस्कृतियों के मेले से विभूषित हमारी संस्कृति आज अपनी उदारता की चरमसीमा पर पहुँचकर उथली होती जा रही है। वह अपनी उदारता की चरमसीमा पर पहुँचकर उथली होती जा रही है। वह अपनी गंभीरता एवं गरिमा को भी भूलती जा रही है। विश्व की विविधरंगी सभ्यता एवं विभिन्न विचारधाराओं के प्रवाह में असंतुलित गति से प्रवाहमान युवा पीढ़ी अपनी भारतीय संस्कृति को भूलती जा रही है। किसी भी देश की संस्कृति, उसके युग-युग के संस्कार होते है जो भौगोलिक एवं प्राकृतिक परिवेशों में निर्मित होते हैं। जाति का निर्माण उसी संस्कृति के आधार पर होता है। कोई भी जाति तभी तक जीवित रहती है जब तक अपनी संस्कृति से उसका संबंध बना रहता है। भारत को भारत बने रहने के लिए भारतीय संस्कृति की रक्षा अत्यंत आवश्यक है। आज हम अपने सांस्कृतिक मूल्यों को भूलते जा रहे हैं। उसका दुष्परिणाम हमें राष्ट्रीय, सामाजिक तथा व्यक्तिगत सभी क्षेत्रों में दृष्टि गोचर होता है। इसका मूल कारण समाजवादी मानवतावाद की अतिप्रबल विचार धारा है जिसने व्यक्ति के अहं को विकृति की सीमा तक जगा दिया है। उसका अहं केवल अपनी आकांक्षाओं की पूर्ति चाहता है। मानव अधिकार व्यक्तिगत स्वार्थों के पर्याय मात्र बनकर रह गए है। इन स्वार्थों के वशीभूत होकर हम देश भक्ति एवं राष्ट्रीयता को भूलते जा रहे है। समाज में दूसरों के अधिकारों का दमन करके हम अपने स्वार्थमय अधिकारों की सुरक्षा चाहते है। "वसुधैव कुटुम्बकम्" के आदर्श पर चलने वाली भारतीय संस्कृति में अब वसुधा की बात ही नहीं, वह तो अब परिवार को भी संयुक्त रखने में असमर्थ है। स्त्री और पुरुष गृहस्थी रूपी रथा के दो चक्र थे। दोनों का व्यक्तित्व द्विदल की भांति जुडकर ही परिवार की संरचना करता था। आज व्यक्तिवादी अहं भावना ने उस मिलन रेखा को स्वार्थ की ज्वाली में जला दिया है। पति-पत्नी एक दूसरे के परिपूरक नहीं शोषक बनकर आगे बढ़ना चाहते हैं। संयुक्त परिवार टूटे अब पति-पत्नी का अटूट संबंध भी एक भीषण ज्वलामुखी बन चुका है।

यही अहंवादी विभेदक दीवार राष्ट्रीय स्तर पर भी दृष्टिगोचर हो रही है। भारत एक विशाल देश है। विविधता में एकता ही हमारी संस्कृति का प्राण है। हमारे देश में कश्मीर से कन्याकुमारी एवं गुजरात से आसाम तक में भौगोलिक विविधता है। कहीं वन, कही पर्वत, कहीं मैदान,कहीं हरियाली और कही मरूस्थल है। इन विभिन्नताओं में हमारा रहन-सहन, भोजन एवं आवश्यकताएं भिन्न प्रतीत होती हैं। किन्तु इन विविधताओं में पलता हुआ हमारा जीवन एक है। हम विविध भाषा-भाषी हैं। किन्तु प्रत्येक भाषा में लिखित साहित्य की आत्मा एक ही है। हमारी भक्ति-भावना कृष्ण की मधुर बांसुरी की गूँज और राम का मर्यादा पुरुषोत्तम आदर्श सभी भाषाओं के साहित्य में समान है। जीवन में सुखों की आकांक्षा एवं दुःखों के प्रति आक्रोश हर भाषा के साहित्य में समानहै। अशिक्षा की समस्या, गरीबी, भूख, बालकों की समस्या, नारी समस्या, गरीबों की समस्या सभी की साहित्य में समान अभिव्यक्ति है। प्रेम अनुराग संगीत एवं अन्य कलाओं से प्रेम, हृदय के कोमल भाव एवं बुद्धि का संघर्ष, अहं की छटपटाहट सभी भाषाओं के भंडार अर्थात साहित्य में समान है। तबहम कहां अलग हैं? हम क्यों अलग है और कैसे अलग हैं? हमारी बुद्धि की यह कुंठा हमें कहां ले जायेगी? आज हमें सोचना चाहिए कि कहीं अपनी कुंठा में हम विकास की प्राकृतिक लीला का अपने अज्ञान के कारण वरण तो नहीं कर दे रहे हैं?

BRAOU

कहाँ है भारत? कहाँ है भारतीय? कौन है हम?

आज ऐसी नवीन चेतना की जागृति आवश्यक है जो शखनाद करके हमारी चेतना से स्वार्थपरक अहं के अंधकार को मिटाकर राष्ट्रीय एकता के ज्ञान का प्रकाश देकर हमें देश प्रेम का सरस अमृत पिला सके। हम भारतीय अमृत पुत्र हैं। अतः हम मिटेंगे नहीं। इतिहास साक्षी है, हम नहीं मिटते, मिट नहीं सकते। जीवन में नया विधान आएगा।

2.4 सारांश

"जिसके तीनों और महादधि रत्नाकर है।
उत्तर में हिमराशि रूप सर्वोच्च शिखर है॥
जिसमें प्रकृति विकास रम्य ऋतु-क्रम उत्तम है।
जीव-जंतु फल-फूल शस्य अद्‌भुत अनुपम है॥
पृथ्वी पर कोई देश भी इसके नहीं समान है।
इस दिव्य देश में जन्म का हमें बहुत अभिमान है॥

प्रस्तुत गीत कवि के हृदय का भावुक उद्‌गार मात्र नहीं है यह हमारे भारतका यथार्थ चित्र है। भारत की एक सभ्यता है, एक संस्कृति है, एक जीवन दर्शन है। सृष्टि के पुरातन काल से जीवन एवं अध्यात्म संबंधी ज्ञान का प्रकाश विश्व में फैलाने वाले हमारे इस देश की संस्कृति इतनी अधिक प्राचीन है कि आज उसका पूरा ज्ञान प्राप्त कर पाना असंभव है। आज हमारे आधुनिक समाज में व्याप्त अपनी संस्कृति को देखने से लगता है कि इसमें कई संस्कृतियों का सम्मिश्रिण हैं। कई विद्वानों ने इस संस्कृति के मूल को खोजने का प्रयास किया हैं। वे अधिक से आर्यों के भारत आगमन तक ही पहुँच पाए हैं। इस दिशा में कई विद्वानों ने कार्य किया है, किन्तु सभी तथ्य संभावनाओं के रूप में ही है। इस दिशा में प्राप्त सामग्री के आधार पर इस विषय को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता हैः-

1. प्राचीन काल
2. मध्यकाल एवं
3. आधुनिक काल

(1) प्राचीन कालः

प्राचीन काल में भारतीय संस्कृति का विकास नीग्रो, औष्ट्रिक, द्रविड़ एवं आर्य संस्कृति के सामंजस्य एवं संगठित स्वरूप से माना गया है। इनमें अंतिम दो का प्रभाव अधिक लक्षित होता है। हमारी संस्कृति में व्याप्त धर्म-भावना देववाद, रीति-रिवाज़ समाज में जाति-व्यवस्था आदि सभी में आर्य एवं द्रविड़ संस्कृति का सम्मिलित स्वरूप दृष्टिगोचर होता है। इससे उस समय की सामाजिक व्यवस्था का कुछ आभास मिलता है।

(2) मध्य युगः

भारत में मुसलमानी आक्रमण एवं मुगल सत्ता का युग था। भारतीय संस्कृति एवं इस्लाम के मिले जुले प्रभाव में देश एवं समाज की दशा में काफी परिवर्तन हुए। लेकिन सामाजिक सांस्कृतिक जीवन में भारतीय आत्मा की अस्मिता बनी रही और उसे सशक्त बनाने के प्रयत्न भी हुए।

(3) आधुनिक युगः

भारत में यूरोपीय प्रभाव का युग है। अंग्रेज़ों के आगमन से एक ओर देश की क्षति हुई। हमारेधर्म, अध्यात्म, योग एवं दर्शन पर कटाक्ष किए गए है। किन्तु साथ ही पाश्चात्य विचारधारा और दर्शन से हमने बहुत कुछ सीखा। धर्म के क्षेत्र में कोरी आध्यात्मिक व्याख्या जो कि धर्म को जीवन से बहुतदूर ले जाती थी, उसकी अधिभौतिक व्याख्या करके जीवन एवं अध्यात्म में सामंजस्य बैठाने

BRAOU

का प्रयास हुए जो प्रस्तुत युग की एक बड़ी उपलब्दि है। इस युग में अनेक सामाजिक परिवर्तन हुए। मध्ययुगीन पारंपरिक रूढ़ियों को तोड़कर हमने व्यक्तिगत स्वातंत्र्य एवं विकास की भावनाओं को आगे बढ़ाया। देश में शिक्षा एवं स्वास्थ्य के स्तर में सुधार हुए। देश की वैज्ञानिक तकनीकी एवं आर्थिक उन्नति हुई। अशिक्षा, बालविवाह, विधवाविवाह आदि समस्याओं को हल करते हुए नारी स्वातंत्र्य की ओर कदम उठाया गया।

सर्वतोमुखी विकास के बाद भी आज हमारे सामने अनेक समस्याएं हैं। इनमें सबसे बड़ी समस्या हमारे आपसी मतभेद है। हमने अपने आपको छोटी-छोटी सीमाओं में बांध रखा है। ये विवाद कहीं सीमा को लेकर है, कहीं धर्म को लेकर और कहीं भाषा को लेकर। आज हमें अपनी संस्कृति की गरिमा को पहचान कर इन छोटे-छोटे मतभेदों से ऊपर उठना चाहिए। संपूर्ण देश में भावात्मक एकता की स्थापना करने से हीआज आसनन्न संकटों से हम अपने देश की रक्षा कर, अपना जीवन सुखमय बना पाएंगे।

2.6 अभ्यसार्थ प्रश्न

2.6.1 अ श्रेणी के प्रश्न

निम्न लिखित प्रश्नों का उत्तर लगभग 250 शब्दों में दीजिएः

1. भारतीय संस्कृति विभिन्न संस्कृतियों का मेल है। स्पष्ट कीजिए।
2. मध्यकालीन सामाजिक जीवन और संस्कृति का परिचय दीजिए।
3. आधुनिक भारतीय संस्कृति के नवीन विकास पर विचार कीजिए।
4. आधुनिक युग में धार्मिक सुधार के प्रयत्नों का विवरण प्रस्तुत कीजिए।
5. आधुनिक काल में समाज सुधार की दिशाओं का निर्देश कीजिए।
6. भारतीय संस्कृति के इतिहास को ध्यान में रखकर उसके विकास की स्वस्थ दिशा स्पष्ट कीजिए।

BRAOU

2.6.2 'ब' श्रेणी के प्रश्न

निम्न लिखित प्रश्नों का उत्तर लगभग 125 शब्दों में दीजिएः

1. आधुनिक काल में पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति के कारण भारतीय जीवन में क्या दुष्परिणाम लक्षित हुए?
2. थियोसोफिकल सोसायटी के कार्य का मूल्यांकन कीजिए।
3. आधुनिक काल में नारी जीवन और उस की समस्याओं का विश्लेषण कीजिए।
4. आधुनिक काल में विकसित नवीन मानवतावादी दृष्टिकोण की व्याख्या कीजिए।
5. भारतयि संस्कृति के निर्माण में आर्य और द्रविड़ संस्कृतियों का योगदान स्पष्ट कीजिए।
6. ब्रह्म-समाज की मान्यताओं का परिचय दीजिए।
7. महाराष्ट्र में प्रार्थना-समाज की स्थापना के क्या लक्ष्य थे?
8. भारतीय जीवन पर आर्य समाज का क्या प्रभाव पड़ा?
9. भारतीय संस्कृति की एकता में बाधा देनेवाले विवाद कौन कौन हैं?

2.7 नमूने के उत्तर

2.7.1 'अ' श्रेणी के प्रश्नोत्तर (250 शब्दों में)

प्रश्नः भारतीय संस्कृति के इतिहास को ध्यान में रखकर उसके स्वस्थ विकास की दिशामें स्पष्ट कीजिए।
उत्तरः संस्कृति ही सभ्यता की आत्मा है, समाज का गुण है। किसी भी देश का समाज जब तक अपनी संस्कृति से जुड़ा रहेगा तभी तक वह विकास कर सकता है। वृक्ष की जड़ धरती में जितनी भीतर

रहेगी वृक्ष उतना ही हरा भरा होगा। उसी तरह कोई जाति या कोई समाज जब तक अपनी संस्कृति से जुडा रहेगा तभी तक समाज विकास कर सकता है और तभी तक समाज में सुख एवं शांति की स्थापनी हो सकती है। भारतीय सामाजिक जीवन के इतिहास में ऐसी दो बड़ी दुर्घटनाएं हैं जिनमें हमें ज्ञात होता है कि अपनी संस्कृति से दूर हटने का अर्थ है अपना विनाश। पहली दुर्घटना भारत पर इस्लाम के दुष्प्रभाव की गाथा है और दूसरी घटना इसाई धर्म कुप्रभाव से उत्पन्न हमारी संस्कृति की कुंठा है, जिसका कुछ-कुछ कुप्रभाव हम आज भी अपने विकास पथ पर अनुभव कर रहे हैं। ऐसी अवस्था में हमें अपनी विवेक बुद्धि से काम लेते हुए अपने विकास पथ में आनेवाली बाधाओं का मूल कारण समझने का प्रयास करना चाहिए। अपनी संस्कृति की रक्षा करनी चाहिए। अपनी संस्कृति में नवीन समाज की आवश्यकताओं के आधार पर विकसित विचारधाराओं का समावेश कर उसे जीवन के विकास का माध्यम बनने योग्य बनाना चाहिए तथा अपनी नई पीढ़ी को इस ज्ञान से अवगत कराना चाहिए। आज सांस्कृतिक एकता की भावना से ही देशकी रक्षा की जा सकती है। देश का विकास करके तथा देश को समृद्ध बनाकर ही हम अपने लिए सुखी समाज का निर्माण कर सकते हैं।

2.7.2 'ब' श्रेणी के प्रश्नोत्तर (125 शब्दों में)

प्रश्नः आधुनिक काल मेंम नारी-जीवन और उसकी समस्याओं का विश्लेषण कीजिए।
उत्तरः प्राचीनकाल में भारतीय समाज में नारी का सम्मान पूर्ण स्थान था। घर के अतिरिक्त सामाजिक जीवन में भीवह सक्रिय भाग लेती थी। मध्य युग में आकर भारतीय सामाजिक जीवन रूढ़ और हासोन्मुख हो गया। नारी का कार्य क्षेत्र परिवार तक सीमित हो गया। मुसलिम सभ्यता और संस्कृति के प्रभाव से वह पर्दे के पीछे चली गई और केवल पुरुष के भोग की वस्तु रही। आधुनिक काल में उसकी स्थिति को सुधारने और उसकी समस्याओं को हल करने के प्रयत्न होने लगे।

शिक्षा के प्रसार में नारी की शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया गया। अशिक्षा और उससे उत्पन्न अंधविश्वासों से वह मुक्त हुई। नारी शिक्षा के लिए अलग पाठशालाओ, महाविद्यालयों और विश्व विद्यालयों की स्थापना की गई। बाल-विवाह और सती-प्रथा का विरोध हुआ और सरकार ने उनके विरुद्ध कानून बनाये। नारी सामाजिक जीवन के सभी क्षेत्रों में आगे बढ़ी। राजनीतिक क्षेत्र में नेतृत्व ग्रहण करके राष्ट्रीय आंदोलनों और समाज सेवा में भाग लिया। शिक्षित होकर विविध क्षेत्रों में उच्च पदों पर उत्तर दायित्व पूर्ण व्यवहार में अपनी बुद्धि-कुशलता और दक्षता का परिचय देने लगी। घर से बाहर आने पर व्यावसायिक जीवन के संदर्भ में जो सामाजिक समस्याएँ उत्पन्न हुई उनका सफलता पूर्वक सामना किया। समाज में पुरुष के साथ उसे समान अधिकार प्राप्त हुए। उसका व्यक्तित्व और प्रौढ़ हो गया।

आधुनिक काल में नारी जीवन को सुधारने वालों में राजा राम मोहन राय, महात्मा गाँधी आदि के नाम अविस्मरणीय हैं।

2.8 पठनीय पुस्तकें

1. विश्व कोष-कासी नागरी प्रचारिणी सभा, वारणासी
2. हमारी सांस्कृतिक एकता - रामधारी सिंह दिनकर
3. संस्कृति के चार अध्याय - रामधारी सिंह दिनकर

BRAOU

इकाई-3: समसामयिक संदर्भः सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश और चिंतन

3.0 विषय प्रवेश
3.1 पाठ का उद्देश्य
3.2 पाठ-परिचय
3.3 मूलपाठ
 3.3.1 समसामयिकताः अर्थ और परिधि
 3.3.2 नया युग
 3.3.3 नया परिवेश
 3.3.4 विकृत आधुनिकता
 3.3.5 नवीन चिंतन
 3.3.6 समसामयिक चिंतन और साहित्य
3.4 पाठ का सारांश
3.5 शब्दार्थ
3.6 अभ्यासार्थ प्रश्न
 3.6.1 'अ' श्रेणी के प्रश्न
 3.6.2 'ब' श्रेणी के प्रश्न
3.7 नमूने के प्रश्नोत्तर
 3.7.1 'अ' श्रेणी के प्रश्नोत्तर
 3.7.2 'ब' श्रेणी के प्रश्नोत्तर
3.8 पठनीय पुस्तकें

3.1 उद्देश्य

BRAOU

इस पाठ में समसामयिक सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश और चिंतन पर प्रकाश डाला गया है। इसके अध्ययन से आपः

- आधुनिक जीवन में भ्रष्टाचारिता और चरित्रहीनता पर प्रकाश डाल सकेंगे।
- समसामयिक आर्थिक परिवेश पर विचार कर सकेंगे।
- आधुनिक काल में पारिवारिक जीवन और समाज की गतिविधि पर प्रकाश डाल सकेंगे।
- साहित्य में समसामयिकता और शाश्वता के प्रश्न पर विचार कर सकेंगे।
- समसामयिक सांस्कृतिक समस्याओं का विश्लेषण कर सकेंगे।

3.2 पाठ-परिचय

प्रस्तुत पाठ में हिन्दी की नवीनतम साहित्यिक प्रवृत्तियों की पृष्ठभूमि के रूप में समसामयिक परिवेश के आकलन का प्रयत्न किया गया है। स्वतंत्रता के बाद राजनीतिक सामाजिक और पारिवारिक परिस्थितियां ह्रासोन्मुख होती गई। उनमें अनेक विकृतियां आ गई। सांस्कृतिक विकास रूक गया। उसके सामने नये प्रश्न चिह्न लगे। मनोविज्ञान, विज्ञान, मार्क्सवाद, अस्तित्ववाद, मानव वाद आदि के द्वारा मानव जीवन का नया आख्यान होने लगा। मानवता के विकास के लिए नये मूल्यों का अन्वेषण होने लगा। समसामयिक साहित्य में जहां एक ओर ह्रासोन्मुख परिस्थितियों की प्रतिक्रिया व्यक्त हुई, दूसरी ओर नवीन चिंतन धाराओं का ग्रहण भी हुआ। समसामयिक जीवन और साहित्य दोनों संकट और संक्रांति की स्थितियों से गुजर रहे हैं।

3.3 मूलपाठ

3.3.1 समसामयिकताः अर्थ और परिधि

भारत में आधुनिक युग का अवतरण उन्नीसवीं शती के मध्य में हुआ। समसामयिक काल सन् 1947 से आरंभ हुआ। समसामयिकता के पूर्व आधुनिक युग, नवजागरण, सुधारवाद, स्वच्छंदतावाद और प्रगतिवाद की स्थितियों से गुजर चुका था। 1947 के बाद देश के सामाजिक आंदोलन ने नया रूप लिया। स्वातंत्र्योत्तर यथार्थबोध ने नयी चेतना को जन्म दिया। भारत विश्व की आर्थिक क्रांति से जुड़ा। प्रजातांत्रिक समाजवाद, विश्व शांति, पंचशील, धर्मनिरपेक्षता, निः शस्त्रीकरण, पंचवर्षीय योजनाएँ, आदि दृष्टियाँ और जीवन मूल्य समसामयिक भारत में उभरे।

समसामयिक युग के तीन लक्षणों की ओर संकेत किया जा सकता है, रोमांसवाद के प्रति बौद्धिक और यथार्थवादी प्रतिक्रिया, विज्ञान के बढ़ते चरण और नये वादों और सिद्धांतों का उदय।

भारत की आज़ादी एक बहुत महत्वपूर्ण घटना है। उसके साथ विदेशीदासता का एक लंबा युग बीत गया। आर्थिक और सांस्कृतिक नव निर्माण का युग आरंभ हुआ। आज़ादी की लड़ाई के दौरान संजोए गए सपनों के साकार होने का समय आया। यथार्थ जीवन नए प्रश्न लेकर उपस्थित हुआ। नये जीवन के निर्माण की आशा उमंगी। राष्ट्रीय चेतना धीरे-धीरे सामाजिक चेतना में बदलने लगी। अनेक बाहरी संघर्षों और समस्याओं से संघर्ष करती हुई यह चेतना, नवीन संस्कार करने लगी। जीवन की दृष्टि में आधारभूत परिवर्तन की मांग सुनाई पड़ने लगी। परिस्थितिजन्य वैविध्यों के बीच से गुज़रकर भारतीय जीवन अपने चतुर्मुखी विकास का प्रयास करने लगा।

इतिहास में ऐसी ही परिस्थितियों में जीवन विकसित होता आया है। ऐसे ही ऐतिहासिक कालखंडों में जीवन मूल्य भी विकसित होते हैं। बदले हुए जीवन मूल्य ही व्यक्ति और राष्ट्र के चरित्र और उसकी सभ्यता एवं संस्कृति के मेरुदंड बनते हैं। जितनी तेज़ी से परिवर्तन इस युग में होने लगे, इतनी तेज़ी से शायद कभी नहीं हुए थे। वैयक्तिक और सामूहिक जीवन राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक घात-प्रतिघातों का अनुभव करने लगा।

BRAOU

जहां समसामयिक मानविकता देश की आजादी से जुड़ती है, वहीं द्वितीय विश्व युद्ध से भी। दूसरा विश्वयुद्ध युरोप में 8 मई, 1945 को और प्रशांत महासागर क्षेत्रों में 2 सितंबर को समाप्त हुआ। यह युद्ध कभी न भुलाई जानेवाली स्मृतियां छोड़ गया – योजनाबद्ध सामूहिक हत्याएँ। बड़ी संख्या में नष्ट होते हुए और जलते हुए नगर। ऐसे शिविर जहां लोगों की छोटी-मोटी भीड़ों को मौत के घाट उतारा गया। मनुष्यों की जीवंत मान्यताओं पर आघात हुआ। मानवीय जीवन मूल्यों की व्यापक अवहेलना हुई। इससे पहले मनुष्य में दूसरों को नष्ट करने की इतनी अधिक क्षमता नहीं थी। सन् 1945 के बाद कई क्षेत्रीय युद्ध हुए जिनमें बहुसंख्यक लोगों की जानें गईं। शस्त्रों के निर्माण और प्रयोग की अंधी होड़ और तेज हो गई। इस सबसे युद्ध से आक्रांत भविष्य की आशंका बढ़ी: मानव जाति का भविष्य खतरे में पड़ता गया।

रह-रह कर मनुष्य के सामने एक प्रश्न उपस्थित हुआ — युद्ध क्यों? इसके साथ लगा हुआ दूसरा प्रश्न उगा— शांति कैसे? दूसरे प्रश्न के उत्तर में मनुष्य ने देखा युद्ध के दौरान जहां मानवीय मूल्य टूटे हैं वहां उनके प्रति अटूट आस्था भी प्रकट हुई है। मानव की स्वतंत्रता की रक्षा के लिए बलिदान भी हुए हैं। इसी प्रश्न का उचित उत्तर देने के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ और यूनेस्को की स्थापना हुई। एक दूसरे को समझने की क्षमता का भी विकास हुआ। विश्व की स्थायी शांति के लिए विश्व की जनता की शांति कामना बढ़ी है और वह एक चुनौती बनती जा रहा है। यह विश्वास भी दृढ़ हुआ कि स्थायी शांति, व्यक्ति के अधिकारों के प्रति सम्मान पर आधारित है। राष्ट्रों की स्वतंत्रता, न्याय और सर्वभौमिक प्रगति के लिए विश्व शांति आवश्यक है।

द्वितीय विश्व युद्ध ने समस्त अंतर्राष्ट्रीय संबंधों को बदला। फासिज़्म विरोधी लड़ाई, सैनिक कारवाई या विजय प्राप्ति तक सीमित नहीं रही, बल्कि शक्ति, उपनिवेशवाद, असमानता और गुलामी पर आधारित अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के संशोधन तक फैल गई। इसमें सबसे प्रमुख उपनिवेश विरोधी क्रांति महत्वपूर्ण है। एक ऐसी चेतना जगी जो विश्व-युद्ध से पहले की जैसी स्थितियों में फिर रहना अस्वीकार करती है। इसलिए स्वतंत्रता के लिए चलनेवाला संघर्ष बहुत तेज़ होता था। राष्ट्र-पिता गांधीजी ने उपनिवेशवाद के विरोध का अहिंसात्मक तरीका अपनाया। उस तरीके से भारत 1947 में आज़ाद हुआ।

3.3.2 नया युग

अज़ादी के बाद नेहरू युग घटित हुआ। उस युग से विकास के लिए कुछ महत्व पूर्ण कदम उठाए गए। पहली उल्लेखनीय घटना है— एटामिक एनर्जी कमीशन का गठन (1948) दुनिया को ताज्जुब हुआ कि अभी हाल में जन्में भारत ने अणु युग में प्रवेश करने की उतनी जल्दी दिखाई। धीरे-धीरे यह आयोग अपनी क्षमता और संभावना को प्रमाणित करने लगा। सन् 1947 में बहु आयामी लदी भारी योजनाओं का सिलसिला शुरू हुआ। इस प्रकार ऊर्जा उत्पादन की नई तकनीकों का योजना बद्ध विकास हुआ और कृषि पर आधारित अर्थ व्यवस्था के नये युग का शुरूआत हुआ। देश की आंखों में भविष्य का एक झिलमिल सपना तैर गया। 1951 में जमींदारी प्रथा का अंत हुआ। गांवों के पथराये हुए अंचलों ने पहली बार एक कृषि क्रांति का अनुभव किया।

सन् 1951 में आम चुनाव हुआ। एक विशाल जनतंत्र का अस्तित्व साकार हुआ जिसमें अधिकांश जनता अनपढ़ और निरक्षर थी। संसार के जनतंत्रों ने अपने परिवार के इस बृहत्तम सदस्य को मिश्रित दृष्टि से देखा। 1952 में राष्ट्रीय प्रसार योजनाओं का आरंभ हुआ। चकबंदी हुआ-कृषि आंदोलन का एक और अग्रगामी कदम। भारत खाद्यान्न की दृष्टि से आत्मनिर्भर होता चला गया। देश के सपने और सज गये।

इसी समय कुछ ऐसी घटनाएं भी घटी जिन्होंने जनता के सपनों को चिथड़े-चिथड़े कर दिया। नेहरू का सम्मोहन यथार्थ को भूल-भुलैयों में डाल देता था, फिर भी कड़वाहट बढ़ती गई। देश की जनता ने गांधीजी की निर्मम हत्या को देखा — हे राम। इसमें एक संकीर्ण दृष्टि थी जो आगे फैलकर जनता के हाहाकार में बदलने लगी। यही जनता के मोहभंग की स्थिति है।

BRAOU

मोहभंग लेखक के मानस का एक महत्वपूर्ण अंग बन गया। इसका प्रभाव राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और पारिवारिक सभी क्षेत्रों में अनुभव किया जाने लगा। आज़ादी के तुरंत पहले तक का काल रुढ़ियों के टूटने का काल था। सामंतवादी पद्धति भी टूटने लगी थी। आज़ादी के बाद ये रुढ़ियां कड़कड़ा कर टूट गई। किंतु इस सबका कोई समर्थ विकल्प उत्पन्न नहीं हुआ।

3.3.3 नया परिवेश

भारत का स्वाधीन होना भारत की दृष्टि से ही नहीं, विश्व-इतिहास की दृष्टि से भी यह एक युगांतरकारी घटना थी। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद, यह साम्राज्यवाद के लिए एक धक्का था। साम्राज्यवाद की औपनिवेशिक जंजीरों में तीन महाद्वीपों (एशीया, अफ्रिकी और लटिनी अमेरिका) के लगभग सौ देश बंधे हुए थे। ये जंजीरें टूटने लगीं। इन देशों के राष्ट्रीय आंदोलनों को इस घटना से बल मिला। उपनिवेशवाद की सबसे बड़ी-कड़ी टूट कर अलग हो गई।

जहां के लोगों ने "भाग्यवाद" का सहारा लेकर सदियों तक गुलामी, शोषण और दमन की यातनाएं झेली थीं और जैसे-तैसे अपने सांस्कृतिक वैशिष्ट्य और भविष्य में अपनी आस्था की रक्षा की थी, अब वे अपने "भाग्य" बदलने के उल्लास से भर उठे। नवोदित राष्ट्र में यह विश्वास दृढ़ हो गया कि अपनी सुरक्षा विश्व शांति और समाजवाद का मार्ग पकड़ कर ही की जा सकती है। जवाहरलाल नेहरू की विदेश नीति में यही विश्वास केंद्र है। तीसरा सूत्र सैनिक गुटों से अलग रहने का है।

यह परिवेश की रुपरेखा है, संपूर्ण चित्र नहीं। हमारा जो परिवेश हमको आज घेरे हुए हैं, वह आज से पहले के संसार से भिन्न है। आज का कलाकार अपने परिवेश के प्रति बहुत सजग है- शायद इससे पहले इतना कभी नहीं था। हम हर स्थिति के संबंध में प्रश्नशील हो उठे हैं। इसलिए अनुभूति और बौद्धिकता के बीच एक नया रिश्ता कायम हुआ है। इसी से समसामयिक परिवेश की स्थितियों की गहरी समझ और पहचान होती है।

राजनीतिक परिवेशः

प्रजातंत्र में प्रतिक्रियावादी तत्वः

भारत की राजनीतिक स्वतंत्रता और सन् 1950 में प्रजातंत्रीय राज्य की स्थापना, भारतीय इतिहास के बहुत महत्वपूर्ण मोड़ थे। इसने आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक उन्नति के लिए पूर्व-परिस्थितियाँ पैदा कर दीं। किंतु पूंजीवादी व्यवस्था ज्यों की त्यों बनी थी। सामंती, अवशेष अभी खत्म नहीं हुए थे। देश-विभाजन के फलस्वरूप उत्पादक शक्तियों का विस्थापन हुआ। इससे परिस्थिति और बिगड़ी। मुद्रास्फीति, दैनिक आवश्यकता की चीज़ों का अभाव, बेरोज़गारी तथा अकाल के खतरे ने, जनता में असंतोष पैदा किया।

सत्तारूढ़ दल में पूंजीवादी तत्व बने हुए थे। ये तत्व देश के राजनीतिक, सामाजिक तथा आर्थिक तंत्र को अपनी दृष्टि से प्रभावित करने लगे। आवश्यकता इस बात की थी कि एक श्रेष्ठतम समाज व्यवस्था की स्थापना हो। पर यह नहीं हो सका। व्यवस्था में कोई अंतर नहीं आया। देश के आर्थिक प्रश्न यों ही बने रहे।

यह भी नहीं भूलना चाहिए कि सामंती अवशेषों तथा पूंजीवादियों से जूझनेवाली ताकतों की शक्ति भी बढ़ी है। देशों के धनी लोगों का शहरीकरण हुआ है। मज़दूर वर्ग पहले से अधिक संगठित है/उसमें राजनीति की चेतना बढ़ी है।

BRAOU

राजनीति की विकृतियांः

राजनीति आज हमारे समग्र जीवन को आक्रांत कर रही हैं। वाम, दक्षिण जैसे विभिन्न दलों में राजनीति विभाजित है। बुद्धिजीवी कलाकार के सामने प्रश्न है, किसका चयन करें। आज के अधिकांश साहित्यकार वामपंथ की ओर झुके हैं। दक्षिणपंथी विचारधाराओं के प्रति वे अपने को प्रतिबद्ध नहीं कर पाते। वर्तमान राजनीतिक स्थिति बड़ी क्रूर है। यह आम आदमी को तोड़े दे रही है।

राजनीति के क्षेत्र में भिन्न-भिन्न शिविर हैं, विभिन्न विचारधाराएं हैं। राजनीतिक नेता अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए विचारधाराओं को आवरण के रूप में ओढ़ते हैं। स्वार्थसिद्धि की लड़ाई में आदमी ही खत्म होता है। राजनेता के इरादे पर सारा देश चल रहा है। साधारण जन की स्थिति बिगड़ती जा रही है किन्तु नेता और सेठ बनते जा रहे हैं। क्या इन दोनों स्थितियों में कोई संबंध है? यह संबंध शोषक और शोषित का ही है।

भ्रष्टाचार-चरित्रहीनताः

भारतीय स्वतंत्रता के पीछे देशभक्त नेताओं तथा जनता के बलिदानों की एक गौरव-पूर्ण परंपरा है। गांधीजी के नेतृत्व में जो आंदोलन चले, उनमें नेताओं का अपूर्व त्याग, आत्मसंयम और अदम्य राष्ट्रीय चेतना का परिचय मिलता रहा। सारा संसार चकित होकर यह सब देख रहा था। किन्तु जो नेता 15 अगस्त, 1947 तक त्याग और बलिदान की प्रतिमूर्ति थे, वे कुछ अपवादों को छोड़कर, भ्रष्ट हो गये। जनता ने देखा और अनुभव किया कि भ्रष्ट नेता वर्ग, पुलिस, नेताशाही और पूंजीवादियों से साठ-गांठ करके, नया शोषक वर्ग बना है। यह परिवर्तन देखकर जनता चकित रह गई।

इस प्रकार गांधीजी और नेहरू के पीछे खद्दरवादी नेताओं की जो सेना थी, वह राष्ट्रीय कटुता और स्वप्नभंग के लिए सबसे अधिक उत्तरदायी बनी। स्वार्थ, शोषणवृत्ति, एकाधिकार, पुरानी नौकरशाही

के साथ गठ–जोड़, सत्ता–लिप्सा, क्षतिपूर्ति का नंगा आयोजन और न जानी विकृतियां इन नेताओं के चरित्र में आ गईं, जिनसे जनता की आस्था उखड़ गई। नेता ने जमींदारों और सामंतों से भी शर्मनाक गठबंधन किया। दूसरी ओर वह पूंजीपति से भी मिल गया। आम आदमी यह सब देखकर आवाक रह गया।

आज़ादी के बाद एक राष्ट्रीय चरित्र विकसित होना चाहिए था जो राट्रीय एकता और अखंडता का समानार्थी होता। पर उलटा ही हुआ। परस्पर जातिवाद, संप्रदायवाद, गुटबंदी में देश का भविष्य उलझकर रह गया। अब लक्ष्य राष्ट्र नहीं रहा — लक्ष्य बन गया — अपनी जाति, अपना परिवार, अपना गांव और स्वार्थ। समाज–व्यावस्था में भिन्नता, अनेकता, विभाजन और अलगाव के तत्व घर कर गये। राजनीति केवल चुनाव और कुर्सी की राजनीति हो गई। आजादी के बाद जिस देश में कोई राष्ट्रीय चरित्र उदबुद्ध नहीं होता उस देश को जोखिम उठानी ही पड़ती है।

राष्ट्रीय चरित्र के पतन की एक तस्वीर बनी। आपात्काल आया। किसी लोकनायक ने एक जनता पार्टी संगठित करदीं। ,इस पार्टी के अंदरूनी कारनामें पूरी बेशर्मी के साथ नंगे हो गये। कुर्सी के लिए जो कुछ किया गया, वह सब बहुत घिनौना था। प्रजातंत्र का एक मखौल ही उड़या गया।

एक दिशाहीन, धुरीहीन राजनीति और रीढ़हीन राष्ट्रीय चरित्र, देश के भाविष्य के प्रति बिलकुल बेखबर हो गया। सृजन से संबद्ध पीढ़ियों को यह देखना और समझाना था।

भारतीय प्रतिक्रियावाद, जो राष्ट्रीय आंदोलन के दौर में दबा रहा अब राष्ट्रवादी नक़ाब पहन कर देश की प्रगतिशील शक्तियों का इस प्रकार विरोध करने लगा कि नगरों की तरुण पीढ़ी सांप्रदायिक द्वेष भावना से संकीर्ण होने लगी। जिन प्रगतिशील शक्तियों नें राष्ट्रीय संघर्ष में योग दिया था, वे अपने मतभेदों में उलझ गये और देश के विकास में कोई सहयोग नहीं दे सके। हर राजनीतिक पार्टी के भीतर सत्ता या नेतृत्व पाने के लिए व्यक्ति केंद्रित दलबंदियाँ और आपाधापी शुरू हो गई। जिस राजनीति और राजनेता को जनता झेल रही है, उनके प्रति साहित्यकार की कई प्रतिक्रियाएँ हुई हैं: उनमें से एक "व्यंग्य" की प्रतिक्रिया। कवि का वर्तमान राजनीतिक स्थिति के प्रति व्यंग्यात्मक स्वर उसकी विचारशीलता का परिचायक है। व्यंग्य में कवि की साहसिकता प्रकट होती है। व्यंग्य क्रंति की भावना को उत्तेजित भी करता है। प्रजातंत्र पर एक व्यंग्य देखिए:-

ओह। प्रजातंत्र की बात कहते हो?
लेकिन तुम्हारा आश्वासन क्या था?
वह चिल्लाता - पुलिस। पुलिस।
गुंडा है पकड़ लो, यह सुतस्वीर बिगाडता है।

BRAOU

समाज, अंतर्राष्ट्रीयता, राजनीति, सार्वजनिक आचरण, सामाजिक विडंबना और रूढ़िवादिता पर प्रहारात्मक व्यंग्य किया जा रहा है। आज सामाजिक व्यंग्य और विडंबना की कविता ही आधुनिक कहलाती है।

जातिवादः वर्गवाद

दुर्भाग्य से आज यहाँ से वहाँ तक दीवारें ही दीवारें दिखलाई पड़ती हैं और नई दीवारें बनती जा रही हैं- कभी धर्म के नाम पर और कभी जाति के नाम पर। सांस्कृतिक सेतु जो सारे देश को जोड़ रहे थे, वे टूटे नहीं हैं, पर उनको उपेक्षित किया जा रहा है। समाज अनेकानेक वर्गों में, जातियों में, वर्णों में, संप्रदायों में बंटा है और बंटता जा रहा है। राजनीतिक और आर्थिक स्वार्थ, अनेकता, विघटन और अलगाव की प्रवृत्तियों को बहुत से लोग तेज ढंग से बढ़ा रहे हैं। इस समय अखंड और संपूर्ण भारत की बात कुछ अजनबी सी लगती है। एक ओर अखंड भारती की बात करना एक साहस कार्य हो गया है। साहित्यकार यदि अपने आपके प्रति और समाज के पति सच्चा है, तो उसे अखंडता और एकता के मानवतावादी और सांस्कृतिक आधारों को नये सौंदर्यबोध की नींव में रखना होगा।

यह विघटन और अलगाव इसलिए दानवीय रूप ग्रहण करने जा रहे हैं कि समाज का जो आर्थिक चौखटा बना है, वह मनुष्य के द्वारा मनुष्य के शोषण पर आधरित है। जो वैज्ञानिक-भौतिक प्रगति हुई है,उस पर प्रभुत्व और एकाधिकार की प्रवृत्ति प्रबल होती गई है। उस को व्यापक समाजहित में न लगाकर, उसे हथिया लेने की चेष्टाएं ही अधिक हुई हैं। उनका उपयोग वर्गीय स्वार्थों से प्रेरित है।

सांप्रदायिक दंगेः धर्म की विकृतिः

देश को आज़ादी मिली। इस के साथ ही देश का विभाजन भी हुआ। जिस सांप्रदायिक वैमनस्य का बीज अंग्रेजों ने बोया था, आज़ादी के बाद उसने भयंकर रूप ग्रहण किया। पाकिस्तान और हिन्दुस्तान में सांप्रदायिक वैमनस्य के फलस्वरूप अभूतपूर्व नर संहार हुआ। शरणार्थियों की भीड़ की भीड़ भारत में आई। एक प्रकार से इतिहास में नेहरू युग का आरंभ ही सांप्रदायिक विद्वेष से हुआ। उस समय संप्रदाय के नाम पर जो कुछ हुआ, वह तो हुआ, किन्तु इस प्रवृत्ति की परंपरा आज तक बनी हुई हैं।

सांप्रदायिक रक्तपात के निर्मम दौर ने, देश के उस एतिहासिक घटना को रक्तरंजित कर दिया, जौ सदियों की प्रतीक्षा के बाद घटित हुआ था। यह भी इतिहास का एक पन्ना था जो उलट गया। अब पन्ने कुछ जल्दी-जल्दी पलटने लगे। आज़ादी के बाद कई घटनाएँ राष्ट्रीय विकास से संबंधित घटीं। सांप्रदायिक दंगों तथा देश के विभाजन ने उत्पादक शक्तियों का विस्थापन किया।

वास्तविक बात यह है कि प्रतिक्रियावादी तत्वों का प्रभाव समाज पर अब भी बना हुआ है। ये तत्व पृथकतावादी प्रवृत्तियों तथा धार्मिक, सांप्रदायिक और जातीय विद्वेषों को बढ़ावा देते हैं। सांप्रदायिक और धार्मिक संघठन स्वभावतः निरपेक्षता, जनतंत्र और राष्ट्रीय एकता के मार्ग में, रुकावट पैदा करते हैं। सांप्रदायिकता, और धार्मिक कट्टरता को, जाति भेदों को, जो एक धर्म निरपेक्ष तथा संयुक्त संस्कृति के स्वस्थ विकास को अवरुद्ध करती हैं, प्रोत्साहन और संरक्षण दिया जा रहा है।

सन् 1955 में नेहरू ने सांप्रदायिक खतरों की ओर संकेत करते हुए कहा था- संप्रदायवादी किसी गये-गुजरे ज़माने के अवशेष मात्र हैं। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि संप्रदायवादियों का सोचने-समझने का तरीका बहुत खतरनाक है। यह दूसरों की तरफ नफ़रत का तरीका है। यदि हम संप्रदायवाद को कायम रहने देते हैं, तो भारत वह नहीं रहेगा जो आज है। भारत के टुकड़े-टुकड़े हो जायेंगे।

BRAOU

आर्थिक परिवेश

विश्व की इन परिस्थितियों और अपनी नवोदित स्थिति से लाभ उठाकर देश ने पंचवर्षीय योजनाओं का श्रीगणेश किया। देश का अर्थतंत्र साम्राज्यवादी और सामंतवादी शिकंजे से मुक्त होने लगा। पर, यह सब पूंजीवाद के दायरे में हो रहा था। संविधान ने यह निदेश दिया था कि राज्य अपनी आर्थिक नीति को इस तरह चलायेगा जिससे धन और उसके साधनों का सर्वसाधारण के लिए अहितकर केंद्रण न हो। किन्तु इसका उल्टा ही हुआ। पूंजीवादी अर्थतंत्र अपने रूप में बना रहा। इसका फल यह हुआ कि आर्थिक योजनाओं का फल सामान्य जनता तक पूरा नहीं पहुँच पाता है।

दूसरी ओर सामंतवादी अवशेष भी सक्रिय हैं। पंचवर्षीय योजनाओं से औद्योगीकरण ने निश्चय ही उत्पादक शक्तियों में वृद्धि कीहै- देहातों में भी। आधुनिक तकनीक देहाती क्षेत्रों केचोहरे भी बदल रही है। यातायात की सुविधाओं ने गाँव और शहर की दूरी कम की है। शहरों से गाँवों का संपर्क बढ़ा है। शिक्षा की सुविधाओं, कृषि की मशीनों, ट्रैक्टरों, उर्वरकों, सिंचाई की सुविधाओं, बिजली, रेडियो, सिनेमाघरों, पुस्तकों, पुस्तकालयों ने ग्रामीण जीवन में आधुनिकता का समावेश किया है। निम्नवर्ग के युवकों को भी अच्छी नौकरियाँ मिल रही हैं। यह सब जनता की जीवन-पद्धति और चिंतन विधि को प्रभावित करने वाले कारक हैं। स्वातंत्र्य, जनतंत्र और समाजवाद जैसे नये मूल्यों से जन का संबंध हो रहा है। इस प्रकार, विज्ञान, कला, साहित्य के वरदान जनता को भी मिलने लगे हैं।

इतना सब होते हुए भी भारत का पुराना ढांचा पूरी तरह से नहीं तोड़ा जा सका। विकास का क्रम धीमा और असमान है। गाँवों और शहरों में आधुनिकता के साथ आदिम कालीन तत्व घुले-मिले हैं। भारत पुराने और नये के बीच संघर्ष के पीड़ा पूर्ण दौर से गुज़र रहा है। प्रतिक्रियावादी वर्गों का अब भी जनता पर शक्तिशाली प्रभाव है।

पूंजीवादी समाज का फैलाव नगरों में है। नगर का जीवन जैसे किसी ठहरे हुए नरक में फंस गया है। बड़े-बड़े नगरों में शोषण का तंत्र बहुत निर्भयता से चल रहा है। अपनी जड़ों से उखड़कर आये हुए लोगों का जिनमें लेखक भी शामिल हैं एकाकीपन, अजनबीपन और निरर्थकता बोध एक घने कुहासें की सृष्टि करता है। विशाल शासनतंत्र के सामने असहास व्यक्ति की स्थिति दयनीय हो गई है। सामान्य जीवन नगण्य हो गया है। पूंजीवाद के हिमायती उसे सामान्य जन की नियति बतलाकर अलग हो जाते हैं। साहित्य में यह आधुनिकता के बोध के रूप में उभरकर आया है। एकाकीपन मनुष्य की समाज से जुडने की आकंक्षा का नकारात्मक तत्व है। निरर्थकता बोध सार्थकता का विपर्यय है। नगण्यता मनुष्य के द्वारा आत्मसम्मान प्रतिष्ठित करने का संघर्ष है।

पूंजीवादी व्यवस्था में नगर के मध्यवर्ग की दशा बहुत ही शोचनीय हो गई। इसका आर्थिक स्तर गिर गया। दिखावे की प्रवृत्ति ने इस वर्ग की स्थिति को और भी विडंबनापूर्ण बना दिया। शिक्षित युवक बेकारी के शिकार हो गये। देश के औद्योगिक विकास का लाभ उच्च वर्ग और मजदूर वर्ग को ही मिला, किन्तु मध्य वर्ग इससे लाभान्वित नहीं हुआ। यह अपने अंतर्विरोधों में डूबता चला गया।

काला धन पूंजीवादी अर्थ व्यवस्था का सबसे भयावह दानव है- एक महिसासुर। वह पूंजीवादी अर्थ-व्यवस्था का एक अभिशाप है। पूंजीवादी के हाथ में यह एक शस्त्र भी है। इस धन से समाज की प्रतिक्रियावादी शक्तियों को मजबूत बनाया जाता है। राजनीतिज्ञों, पत्रों, पत्रकारों, लेखकों और कलाकारों को इससे खरीदा जाता है।

स्वातंत्र्योत्तर यथार्थः

आजादी के बाद की कुछ प्रमुख घटनाएँ इस प्रकार है— देश का विभाजन, सामंतवादी और पूंजीवादी व्यवस्थाओं का त्याग कर देश में समाजवादी समाज व्यवस्था की प्रतिष्ठा का घोषित लक्ष्य, अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में भारत का प्रवेश और विश्व के प्रश्नों के साथ उसका राजनैतिक संबंध, चीन का आक्रमण आदि। इन घटनाओं ने देश के जन-जीवन को आंदोलित कर दिया।

BRAOU

समाज को एक नया यथार्थ देनेवाली दो सामाजिक घटनाएँ भी हैं- जमींदारी उन्मूलन तथा रियासतों का विलयीकरण। दोनों ही सामंती व्यवस्था को समाप्त करनेवाली हैं। इनसे कृषक वर्ग की मुक्ति एक सामाजिक यथार्थ बनती है। सामंती अत्याचारों और अनाचारों की भूमिका में जनता की मुक्ति का यह क्षण भी साहित्य में चित्रित किया गया है।

स्वातंत्र्योत्तर युग में आर्थिक वैषम्य नये रूपों में प्रकट हुआ। निम्न-मध्यवर्ग की स्थिति संकटग्रस्त हो गई है। शिक्षित होने के कारण, इसी वर्ग-मानस में नवोदित जीवन-यथार्थ की सबसे अधिक प्रतिक्रिया घटित हो रही है। यह वर्ग मूल्यों की भयंकर संक्रांति से गुज़र रहा है। इस वर्ग में ही आज का आर्थिक संकट सबसे अधिक क्रूर है। पति-पत्नी, भाई-बहन तथा अन्य पारिवारिक संबंधों की विकृतियाँ भी इसी वर्ग में सबसे अधिक दिखलाई पड़ती हैं। सामाजिक दायित्वबोध, भ्रष्टाचार, अनैतिकता, विघटन, सामाजिक उच्छृंखलता, अहं, कुंठा आदि के प्रश्नों से भी इसी वर्ग को जूझना पड़ रहा है। वह एक ओर अपने जीवन के स्तर को ऊंचा उठाने की अदम्य लालस से पीड़ित हैः आवश्यकताएँ बढ़ती जा रही हैं। दूसरी ओर अपनी सीमित आर्थिक स्थिति के कारण अपनी विवशताओं से झटपट कर यह वर्ग कुंठा-ग्रस्त और आत्मलीन होता जा रहा है। या अपनी महत्वाकांक्षाओं के वशीभूत हो यह अनैतिक, भ्रष्टाचारी हो रहा है या फिर वैषम्य की चेतना से टूट कर बिखर जाता है। इसी परिस्थिति में इसके मानवीय संबंधों की भावात्मकता मिटी जा रही है। संबंधों में दरारें पड़ रही हैं।

स्वातंत्र्योत्तर युग में नारी संबंधी यथार्थ में विस्तार आया है। युग की चुनौतियों के प्रति नारी वर्ग भी सचेतन हुआ है और जीवन के नये यथार्थ ने उसको भी उत्तेजित किया है। नारी शिक्षा, तलाक बिल, नारी की समानता का प्रश्न, आर्थिक स्वावलंबन तथा घर की चहार-दीवारी से निकल कर विभिन्न सामाजिक दायित्वों में पुरुष के समभागी होना आदि नारी जीवन के नये यथार्थ के धरातल हैं। इन सबके फलस्वरूप नारी पुरुष के परंपरागत सहज संबंधों में सामंजस्य की समस्याएँ उत्पन्न हुई हैं। नारी मानस अपने युगों पुराने संस्कारों के बदलाव के द्वंद्व से गुज़र रहा है। एक समस्या नारी की घर और बाहर की स्थितियों में सामंजस्य की है।

नारी का चरित्र अनेक रूपों में घटित हुआ है। वह भी देश के भावी जीवन के निर्माण में सहगामिनी बनने की सामर्थ्य सिद्ध करना चाह रही है। कभी वह अपने पुराने संस्कारों के कारण से मुक्त होने के संघर्ष का प्रतिनिधित्व करती है। या तो भारतीय नारी पुराने सामंती संस्कारों में घुट रही है या कुछ अधकचरे नये संस्कारों को अपनाकर किन्तु मूलतः पुराने संस्कारों से बंधी रह कर अनेक चारित्रिक कुरूपताओं का शिकार हो रही है या उन्हें तोड़ कर नारी स्वातंत्र्य, नारी अधिकारों और नारी-पुरुष समानता के नाम पर यौन उच्छृंखलता और फैशन परस्ती में भटक गई है।

सामाजिक विकृतियाँः

जब हम समकालीन साहित्य पर विचार करते हैं, तो विकृतियों का सवाल भी उठता है। आज के सामाजिक जीवन में विकृतियाँ भर गई हैं। कुछ विकृतियाँ आर्थिक कारणों से पैदा हुई हैं और कुछ का संबंध प्रेम और काम संबंधी आचरण से। अर्थ और काम संबंधी विकृतियाँ घुटन और कुंठा से ही पैदा होती हैं। ये विकृतियाँ साहित्य में भी प्रविष्ट हुई हैं। ये विकृतियाँ जीवन की परिस्थितियों से भी जन्मी हैं और कुछ विदेशी प्रभावों से भी इनको प्रोत्साहन मिला है। सिनेमा और रेडियो से प्राप्त साहित्य भी विकृतियों के लिए उत्तरदायी है।

रेडियो सामान्य जन के सांस्कृतिक शिक्षण और रुचि संस्कार का माध्यम न बनकर विकृतियोंके प्रचार और प्रसार का ही माध्यम अधिक रहा है। सिनेमा एक व्यवसाय बन गया है जिस पर पूंजी बुरी तरह हावी हो गई है। अर्थ लोलुपता के दुष्परिणामों का यह शिकार है और इसलिए विकृत काम, हिंसा तथा निरर्थक अपराध वृत्ति को ही इससे अधिक बल मिल रहा है।

BRAOU

परिवार और पारिवारिक संबंधः

भारतीय समाज व्यवस्था का एक आधार संयुक्त परिवार था। आधुनिक युग में संयुक्त परिवार चरमराकर टूट रहा है। वह बहुत कुछ टूट चुका है। विधि की दृष्टि में संयुक्त परिवार कोई अस्तित्व ही नहीं रखता। हिन्दू कोड ने इसको स्वीकार नहीं किया। वास्तव में संयुक्त परिवार अनेक विकृतियों से भर उठता था। इसमें नारी विशेष रूप से पिस रही थी। उसका शोषण ही इसमें होता था। संयुक्त परिवार के मूल में एक धार्मिक भावना थी। इसी के आधार पर माता-पिता को देवता माना जाता था। एक सघन भावात्मकता की पृष्टभूमि में पारिवारिक संबंध पलते-पनपते थे। इन संबंधों का मार्मिक चित्रण साहित्य में मिलता था। लोक साहित्य की सरसता विशेष रूप से संबंधों की भावुकता पर आधारित थी। बुद्धिवादी ने संयुक्त परिवार की भावभूमि पर प्रहार किया। संबंध विकृत होने लगे और टूटने भी लगे। संयुक्त परिवार को बनाए रखने के प्रयत्नों का परिणाम होता था- कलह और अशांति। हिन्दी के आधुनिक साहित्य में संबंधों को तथा संयुक्त परिवार को बनाए रखने के प्रयत्न अंकित किए गए हैं। प्रेमचंद ने "बड़े घर की बेटी" में संयुक्त परिवार को बिखरने से बचने का प्रयत्न किया है। किन्तु समकालिन साहित्य परिवार की प्रतिमा के भंजन का ही निर्मम चित्रण करता है।

संयुक्त परिवार को आर्थिक दबाव भी झेलना पड़ा। इससे भी संयुक्त परिवार का मिथक टूटा। परिवार की इकाइयाँ आर्थिक कारणों से अलग होकर, अपनी स्थिति को मजबूत करना चाहती हैं। आज के युग में संतान, पोते आदि पीढ़ियों को एक साथ रहना असंभव हो गया। ज्ञानरंजन ने मनहूस बंगला में परिवार में पीढ़ियों के अंतराल को इस प्रकार दिखलाया है- "इसमें दादा, बाप, नाती-पोतों या एक पीढ़ी का दूसरी पीढ़ी से सन्नाटे भरा झगड़ा चल रहा है। लगता है, इन झगड़ों के पीछे

महज़ पारिवारिक यानी दाल-रोटी के संदर्भ में ही नहीं, वरन् सभ्यता के उपकरणों की अंगीकृति और स्वीकृति की बहुत सारी समस्याएँ हैं।"

माता-पिता की स्थिति संयुक्त परिवार में विडंबनापूर्ण हो जाती है। उनके प्रति नई पीढ़ी की ऊब प्रकट होती है। माता-पिता परिवार की मर्यादा के रक्षक माने जाते थे। उनका आसन हिल गया और संयुक्त परिवार भी हिल गया।

व्यावहारिक रूप से संयुक्त परिवार को खंडित करने में सबसे अधिक दोष स्त्री का माना जाता है। यह सही भी है। स्त्री की अस्मिता संयुक्त परिवार में खो जाती है। वह सबसे अधिक पिसती है। इसलिए उसमें संयुक्त परिवार के प्रति प्रखर प्रतिक्रिया होना स्वाभाविक है। परिवार का खंडन पहले नारियों के कलह से ही शुरू होताहै। संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि आर्थिक, बौद्धिक और सभ्यता संबंधी अनेक कारणों से संयुक्त परिवार का दुर्ग ढह गया। हिन्दी का कथा-साहित्य परिवार के टूटने और संबंधों के विकृत होने की स्थितियों का चित्रण करता है। मन्नू भंडारी ने कहा है "भारतीय परिवार आज भी मानसिक या भावनात्मक स्तर पर संयुक्त परिवार ही है। अतः हम उस अकेलेपन से भयभीत नहीं है, जो विदेशों में व्याप्त है।" किन्तु यह अर्धसत्य ही है। कुछ अवशिष्ट भावकणों के आधार पर यह कथन किया गया है। वास्तव में गति परिवार की टूटने की ओर ही है।

वास्तवविकता यह है कि मनुष्यों के आपसी संबंध आद्यंत दूषित हो चुके हैं। भाई-भाई, स्त्री-पुरुष, पिता-पुत्र के संबंध झूठे पड़ गये हैं। ऐसा लगता है कि इनको जीवित रखने वाली भावनाएँ भी लुप्त हो गई हैं। एक औपचारिकता इन को और अधिक बाँधकर नहीं रख सकती। सब जैसे कुछ चांदी के सिक्कों के संबंध में बदल गए हैं अथवा किसी-न-किसी वासना के संबंध बन गये हैं। मानवीय संवेदनाएँ सब भोंडी हो चुकी हैं। भाई-भाई के हाथ में हथकड़ी डलवा देता है। बाप की लाश पर बेटा दिखाने कि लिए एक आँख से रोता है और दूसरी आँख से पैतृक संपत्ति के अपने हिस्से पर नज़र रखता है। इन संबंधों में पति-पत्नी संबंध सामाजिक दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण है। इस पर आगे विचार किया गया है।

पति-पत्नीः

माँ-बाप और संतति का संबंध पीढ़ियों के अंतराल तथा पुराने और नये संघर्ष के कारण बदले हैं। पति-पत्नी के संबंध अनेक कारणों से बदले और टूटे हैं। यदि पत्नी से आरंभ करें तो कह सकते हैं कि पत्नी तीन भूमिकाओं में एकसाथ जी रही है। पहली भूमिका प्राकृतिक है- नारीसुलभ स्वभाव, आवश्यकताएँ और सीमाएँ। दूसरी भूमिका भारतीय है- रूढ़ संस्कार, पतिव्रत, पति के ऊपर निर्भरता और परतंत्रता का बोध। तीसरी भूमिका आधुनिक है- शिक्षिता, कर्मशीला, अर्जिका, स्वतंत्र और अपनी नई पहचान के लिए आतुर/इस रूप में वह अपनी पुरानी प्रतिभा को निर्ममता से तोड़ रही है। अर्जनशीला पत्नी में आत्म सम्मान तथा आर्थिक स्वतंत्रता का बोध जग रहा है। उसकी चेतना समान स्थिति पाने के लिए बेचैन है।

विवाह के पश्चात् उसे एक पारंपरिक पति से टकराना पड़ता है। आर्थिक रूप से स्वतंत्र पत्नी का परिवार में स्वागत है क्योंकि इसमें परिवार की उन्नति दिखलाई पड़ती है, किन्तु आचरण की दृष्टि से बंधी-बंधाई लीक को तोड़कर जब वह पुरुष की बराबरी में आना चाहती है, तब संकट उपस्थित होता है।

अर्जनशीला पत्नी को किसी दफ्तर या काम करने की दूसरी जगह जाना पड़ता है और वहीं अधिक समय बिताना पड़ता है। यहाँ उसे हर पुरुष के संपर्क में आना पड़ता है। इस स्थिति में पत्नी को भावात्मक तरलता का अनुभव हो सकता है। कुछ भी न हो तब भी पति और परिजनों में उसके प्रति एक संदेह दृष्टि पैदा हो सकती है। समाज कार्यशीला स्त्री / पत्नी को स्वीकार करता है, किन्तु उसके मन के इस यथार्थ को स्वीकार करने से कतराता है।

BRAOU

आधुनिक युग में पति-पत्नी के रिश्ते की पवित्रता और गहराई अतीत की एक कहानी बन कर रह गई है। कुंठा और अविश्वास का कीट इस संबंध की जड़ को कुतर रहा है। आर्थिक स्वतंत्रता और तलाक की कानूनी सुविधा इस संबंध को चुनौती दे रही है।

दापत्य का अर्थ है- दो केवल दो। "दो" के बीच यदि तीसरा आने लगता है, तो दांपत्य विकल होने लगता है। आज वैयक्तिक मनोविज्ञान, जैविकी और सामाजिक यथार्थ कुछ ऐसा हो गया है कि उसमें आंतरिक रूप से कुंठा या अहम् अथवा बाह्य रूप से पति का मित्र या पत्नी का प्रेमी तीसरे के रूप में घुस आया है। यह पति-पत्नी के लिए एक संकट है। तीसरे को निरस्त करने के लिए पातिव्रत, समर्पण और बलिदान के जो आदर्श पहले नारी-मन में आरोपित किये गये थे, वे आज के युग में धीरे-धीरे निरर्थक होते जा रहे हैं। नारी के मन में इन के प्रति एक प्रतिक्रिया उठ रही है। इस मुद्दे को अनेक प्रकार से समकालिन कथा-साहित्य में उभारा गया है।

इस प्रकार पति-पत्नी संबंध को विकृतियों और अंतविरोधोंने ग्रस लिया है।

3.3.4 विकृत आधुनिकता

आधुनिकता के नाम पर वह भी हो रहा है, जो विकृति का पर्याय है। कहीं वह नये फैशन और विचित्र वेश-भूषा में परिणत हो जाती है और कहीं केवल फ़फ़ाजी बन जाती है। कहीं इस के नाम पर सेक्स और क्राइम संबंधी पेपर बैक्स पढ़े जाते हैं। मनुष्य की पतित अभिरुचि और चारित्रिक गिरावट की जड़ें आदिम मानस से जोड़ना आधुनिकता मान ली जाती है। तात्पर्य यह है कि इस समय हमारा ध्यान विशेष कर नवोदित पीढ़ियों के बाह्य आचार की आधुनिकता पर जमता जा रहा है। वैचारिक आधुनिकता आ नहीं पा रही है। वास्तव में सच्ची आधुनिकता बाह्याचार से नहीं विचार और संस्कार में होती है। विचार और संस्कार की आधुनिकता का अर्थ है, मन की वह वृत्ति जो मध्य युगीन रूढ़ियों और अंधविश्वासों से नाता तोड़कर आधुनिकतम ज्ञान के प्रकाश में, तर्क और विवेक की कसौटी पर जीवन के हर व्यापार को परखती है और स्वयं अपने विवेक से सही निष्कर्षों पर पहुँचने की कोशिश करती है।

आधुनिकता के महातीर्थ के रूप में योरोप और अमरिका को मान लेना एक भूल है। वहाँ भी सब कुछ आधुनिक नहीं है, चाहे साज-सज्जा आधुनिक है। साथ ही आधुनिकता समाजवाद का पर्याय भी नहीं है। इसका अर्थ यह है कि मनुष्य अपने परिपार्श्व के संश्लिष्ट आधुनिक जीवन को नवीनतम ज्ञान-विज्ञान के आलोक में देखें और एक नये सामाजिक व्यवस्था की रचना करे। स्त्री-पुरुष तथा वर्गों के बीच समानता को स्वीकार करना आधुनिकता है। पश्चिम से बहुत कुछ ऐसा भी आता है कि जो समाज-व्यवस्था के संस्कारों को रूप और वाणी देता है। अपने समस्त शिल्पाडंबर के बावजूद भी इसको आधुनिक नहीं कहा जा सकता है।

अमरिका की न जाने कितनी फिल्में आ रहीं है और ढेर की ढेर पाकेट सिरीज वाली हलके मनोरंजन की पुस्तुकें और सेक्स और सनसनीवाली पत्रिकाएँ दूकानों में और रेल्वे स्टेशनों के स्टालों में भरी हुई हैं। इनकी नकल करके हमारे लेखक भी व्यावसायिक दृष्टि से लिखने लगे हैं। उनकी नकल पर कितनी ही बंबइयाँ फिल्में बनी हैं। इस प्रकार का कला विहीन और मूल्यहीन मनोरंजन युवामानस को गुमराह करता है। अपराध और यौन-वासना की उफनती हुई धाराएँ युवामानस को विकृतियों के दल-दल में फंसा देती है। यदि ऐसी और उच्छृंखल दुष्प्रवृत्तियाँ साठोत्तरी साहित्य में घुस रही हैं, तो समय से सावधान हो जाना चाहिए।

हमारी युवा पीढ़ी "बीट" पीढ़ी बने यह ग्राह्य नहीं होना चाहिए। इसके नाम पर नग्न वासना, हत्या, बलात्कार जैसी अवंछित चीज़ें आ रही हैं। जिन कारणों से ये प्रवृत्तियाँ विदेशों में पनप रही हैं, वे परिस्थितियाँ हूबहू हमारे देश में है नहीं।

BRAOU

3.3.5 नवीन चिंतन

राष्ट्रवादः

1857 के बाद सुधारवाद, नवजागरण और राष्ट्रवाद साहित्य की चेतना में भर गये। देशभक्ति एक साहित्यिक मूल्य बन गई। हमारे समय का साहित्य राष्ट्रवादी चेतना के साथ ही विकसित हुआ है। हमारा देश आरंभ से ही "वसुधैव कुटुंबकम्" का आदर्श मानता आया है। इसलिए राष्ट्रवाद के साथ मानवतावादी तत्व संबद्ध रहे। वास्तव में तत्कालीन पश्चिमी राष्ट्र शक्ति उदारता की नहीं बल्कि संकीर्णता की शक्ति है। भारतीय राष्ट्रीयता मानवतावादी संस्पर्श के कारण उदार बनी रही। पहला विश्वयुद्ध संकीर्ण राष्ट्रवाद का ही परिणाम था। दूसरा विश्वयुद्ध तक आते-आते राष्ट्रवाद की लहर बिखर गई। दूसरा विश्वयुद्ध पश्चिमी राष्ट्रवाद के प्रभाव का कारण बना।

राष्ट्रीयता की भावना ने सामान्य रूप से लेखक में एक दायित्व भावना उत्पन्न की। उस ने एक राष्ट्रीय उत्तरदायित्व की स्थिति में अपने को पाया। साहित्य में सोद्देशता का नये सिरे से आरंभ हुआ। जो लेखक ब्रजभाषा में लिखते रहें वे भी इन नये प्रभावों से नहीं बच सके। भारतीय सामंती परंपरा के प्रति राष्ट्रवाद ने कवि का दृष्टिपरिवर्तन किया।

मानवतावादः

भारतीय परंपरा में संस्कृति धर्म-केन्दित रही है। आधुनिक युग में यह मानवकेन्द्रित है। मानववाद ने संस्कृति को लौकिक बनाया। संस्कृति का आधार नैतिक भी हो सकता है और आर्थिक भी। मार्क्सवाद संस्कृति के आर्थिक आधार को मानकर चलता है। मानवाद मानव के विकास के आधार पर नैतिक मान्यताओं की अवधारण करता है और उसी से आर्थिक संबंधों को अनुशासित मानता है। इसके विपरित मार्क्सवाद आर्थिक संबंधों को ही मूल आधार मानता है और उसी से नैतिक आचरणों को नियंत्रित सिद्ध करता है। किन्तु दोनों ही दृष्टियाँ संस्कृति का लौकिक आधार मानकर चलती हैं। यही नव मानववाद और मार्क्सवाद में समानता है।

मानवतावादी कलाकार वे है जो अंशतः अपने युग की नैतिकता लेते हैं और अनेक अंशों में अपनी दृष्टि को, अपने विवेक को मुक्त रखते हुए, तत्कालिन नैतिकता में बँधे न रहकर, आगे की बात कहते हैं। आनेवाले युगों की नैतिकता, परिष्कृत सौंदर्यबोध और रचनात्मक समवेदना उनकी चेतना में तैरती रहती है। उनको समसामयिक दूषित प्रभावों से संघर्ष करना होता है। उनको उन शक्तियों से सचेत रहना पड़ता है जो उसके सौंदर्य बोध को श्रेणीगत संकीर्ण स्वार्थों की सीमा में बाँधना या विकृत कर देना चाहते हैं।

साहित्य को मानव-केन्द्रित होने की बात कही जाती है और वह हो जाताहे वर्ण या संप्रदाय केन्द्रित। मानवता की प्रगतिशील व्याख्या आवश्यक है। आज मानव की दुर्गति इसलिए हो रही है कि उसने जितनी भौतिक प्रगति की है, उसके अनुरूप उसका नैतिक और मानवतावादी उत्थान नहीं हुआ है। मानववादी धर्म, पशु-धर्म में बदल गया है।

सामाजिक चेतनाः समाजवाद

समकालीन साहित्य की एक और प्रवृत्ति है- सामाजिक चेतना। इसके लिए कुछ तो विदेशी विचारों का प्रभाव उत्तरदायी है, और कुछ भारत का अपना ऐतिहासिक विकास और घटना क्रम। बीसवीं सदी के आरंभ में सामाजिक चेतना, समाज सुधार और परिवर्तन से संबद्ध थी। बाद में राजनीति से यह चेतना जुड़कर चलने लगीं। राजनीतिक संघर्ष इतना बढ़ गया कि समाज सुधार की माँग दब गई, या वह राजनीतिक कार्यक्रम में सम्मिलित हो गई। राजनीतिक समस्याएँ सामाजिक जीवन को अधिक झकझोरने लग गईं। सामाजिक चेतना वर्गसंघर्ष और वर्गचेतना का ही दूसरा नाम हो गई। वर्ग-संघर्ष पर आधारितसामाजिक चेतना का साहित्यिक रूपांतरण प्रगतिशील आंदोलन में हुआ।

BRAOU

इस शताब्दी के पूर्वार्द्ध में साम्राज्यवाद ने दो-दो विश्वयुद्ध छेड़े। करोड़ों मनुष्यों के रक्त से होली खेली गई। प्रथम विश्वयुद्ध की समवर्ती घटना रूस की अक्तूबर क्रांति है। इस क्रांति ने दुनिया के छठे भाग में पुरानी पूँजीवादी दुनिया के खंडहरों पर एक नई समाजवादी दुनिया की इमारत खड़ी की। इसमें एक युगांत की संभावना सजीव हुई।

दूसरा महायुद्ध में रूस की महत्वपूर्ण भूमिका रही। अतुल रक्त बहाकर सोवियत जनता ने फ़ासिज़्म से विश्व की रक्षा की। दुनिया की एक तिहाई जनता पूंजीवादी व्यवस्था से मुक्ति पाकर, समाजवादी जीवन-निर्माण के मार्ग पर चली। इससे साम्राज्यवाद को धक्का लगा। यह इतिहास का एक बड़ा मोड़ था।

समाजवादी विचारों का सभी देशों में न्युनाधिक रूप से प्रचार हुआ। एक ओर इसने दलित और शोषित के मन में आशा जगाई, दूसरे समाज-दर्शन की एक विशेष दृष्टि और पद्धति मिली। साहित्य का क्षेत्र भी इसकेप्रभाव से अछूता नहीं रहा। द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् निर्णायक शक्ति के रूप में समाजवाद का अभ्युदय हुआ।

किन्तु इतना होने पर भी सामाजिक चेतना के उगने और फलने-फूलने के भ्रम में बाधाएँ लगाई जा रही है। आदर्शवादी दृष्टि समाजवादी दृष्टि से संघर्ष कर रही है।

आजादी के बाद नेहरू की दृष्टि समाजवादी मूल्यों पर थी। जून 1963 में अखिल भारतीय कांग्रेज कमिटी के जयपूर अधिवेशन में उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा था कि समाजवाद जनतंत्र का अपरिहार्य परिणाम है। राजनीतिक जनतंत्र में यदि आर्थिक जनतंत्र शामिल नहीं है, तो वह निरर्थक है। आर्थिक जनतंत्र समाजवाद ही है। इसके मार्ग का बाधक तत्व है हजारेदारी।

समाजवाद रक्तक्रांति के माध्यम से कुछ देशों में आया। एक नये युग की शुरूआत भी हुई। पर, इसने केवल हमारी रोटी और भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति की व्यवस्था करदी। किन्तु इसके बदले में आदमी की आज़ादी छीनली। वे चीजें शिथिल हो गई जो मनुष्य को पशु से अलग करती थीं। बोलो, वह बोलो, जो हम चाहते हैं। सारा साहित्य ऐसा हो गया जैसे किसी फैक्टरी में ढला है, या उसको मनुष्य ने नहीं कंप्यूटर ने रचा है यांत्रिक, नीरस, निष्प्राण। नवोदित समाजवादी व्यवस्था ने प्रजातंत्रीय मूल्यों की हत्या करदी। हमने प्रजातंत्र का वरण किया है और इसको समाजवादी तेवर दिये हैं। प्रजातंत्र कुछ ऐसा विकृत होता जा रहा है कि इसमें आस्था को जमाए रखना कठिन हो रहा है। वास्तव में हमें अर्धसत्य नहीं, सत्य चाहिए।

BRAOU

सत्य यह प्रतीत होता है कि समाजवादी जीवन मूल्यों को इस प्रकार अपनाना श्रेयस्कर होगा कि मनुष्य को स्वस्थ विकास के लिए प्रेरणा और अवसर मिल सके। साम्य और सहयोग के रास्ते बने। यह कोई बाध्यता हीं है कि अन्य देशों में समाजवाद का जो रूप बना है, उसे हम शिरशः स्वीकार करके चलें। सीखने को हम सभी से सीख सकते हैं पर सृष्टि करेंगे अपने अनुकूल। समाजवाद और प्रजातंत्र का इस प्रकार का संस्कार करना होगा कि दोनों मिलकर जीवन का संपूर्ण सत्य बन सकें।

अस्तित्ववादः

समाजवादी जीवन दृष्टि के साथ साहित्य अस्तित्ववादी धारा से भी प्रभावित हुआ। इसने समसामयिक भाव बोध को बहुत प्रभावित किया। कामू और सार्त्र की शब्दावली बुद्धि जीवियों में लोकप्रिय होने लगी। शायद यह आकर्षण इसलिए हुआ कि तरुण लेखक समझने लगे कि मनुष्य मशीन का एक पुरजा हो गया है। इससे उसका व्यक्तित्व खंडित और विघटित होता जा रहा है। यह एक हकीकत भी है। इस माहौल में व्यक्ति-स्वातंत्र्य की बात असरदार हो जाती है। इस प्रकार के चिंतन में बीटनिक विद्रोह या स्वच्छंद भोग विलास को स्वीकार करके नैतिकता और परम्परा का उग्र प्रतिवाद किया जाता है। इससे स्वतंत्र अस्तित्व की क्षणिक अनुभूति तो मिल जाती है किंतु इसका अंत निराशा में ही होता है। यह साहित्य में भी उतर आता है। नई कविता में यह दर्शन भर गया।

मूल्य और मूल्य संघर्षः

समकालीन वास्तविकता इतनी सरल-सीधी नहीं है कि इसे सिद्धांतबद्ध किया जा सके या किन्हीं निश्चित मूल्यों के सहारे उसकी व्याख्या की जा सके। सामाजिक मूल्यों पर आधारित रचना समय का अतिक्रमण कर सकती है दीर्घायु हो सकती है। वस्तुतः जीवन मूल्य जिनकी समग्रता को विचारधारा कहते हैं, साहित्य का एक महत्वपूर्ण अंग है। किन्तु जीवन मूल्य कोई स्थायी इकाई नहीं है। सामाजिक संबंधों में परिवर्तन के साथ पुराने मूल्यों को नए मूल्य स्थानांतरित करने लगते हैं। सामंती समाज के जो जीवन मूल्य थे वे पूंजीवादी समाज के लिए निरर्थक हो गये और जो पूंजीवादी समाज के मूल्य हैं, वे समाजवादी समाज के लिए निरर्थक हो जाते है। संक्रमण काल में वे ही जीवन मूल्य गतिशील और अनुप्रेरक हैं जो वर्तमान को भविष्य से जोड़ते हैं। लेकिन जिन वर्गों का पुराने जीवन मूल्य स्थापित रखने में स्वार्थ होता है, वे उनकी सुरक्षा करते हैं। यह एक व्यापक षडयंत्र बन जाता है। इसके विरुद्ध लड़ाई छिड़ती है। बिना इसके नये, जीवन्त और स्वस्थ मूल्य स्थापित नहीं हो पाते।

आज मूल्यों का संकट उपस्थित है। पुराने मूल्य निरर्थक हो गये हैं, नये बन नहीं पा रहे। मूल्यों की यह विघटन की अवस्था है। सामंती और पूंजीवादी विचारों तथा जीवन मूल्यों से अपनी मुक्ति का संघर्ष जो उनके प्रति विद्रोह से प्रारंभ होता है पूरे समाज के लिए उपयोगी होता है। सामंती-पूंजीवादी समाज में इन्हीं मूल्यों का व्यापक प्रसार और प्रभाव होता रहता है और आम लोगों को इनसे मुक्ति में साहित्य सहायता देता है।

सामंती-पूंजीवादी जीवन-मूल्यों के विरोध का स्वरूप कोरा राजनीतिक ही नहीं है। वह व्यक्तिगत, पारिवारिक और अन्य सामाजिक संबंधों में भी उन मूल्यों का विरोध है,जो इन संबंधों को विकृत कर रहे हैं। इस चेतना के प्रभाव में पुराने नैतिक मूल्यों के विरोध स्वरूप "यौन-क्रांति" के नये मूल्य पश्चिम के पूंजीवादी प्रभावों से ग्रहण किये गए हैं। विद्रोह किन्हीं पुराने मूल्यों के विरूद्ध है, तो इसलिए कि वे संवेदन स्तर पर पाशिवक और बर्बर ठहरते हैं।

3.3.6 समसामयिक चिंतन और साहित्य

बुद्धिवादः

अधुनिकता की एक पहचान बुद्धिवाद या उसकी वैचारिकता है। काव्याभिव्यक्ति में भावना का अब उतना योग नहीं रहा, जितना विचार का। आज का साहित्यकार जीवन के ठोस संदर्भों को महत्व देता है। अतः भावनामूलक संवेदना का स्थान बुद्धि ने ले लिया है। साहित्यिक को प्रतीति हो गई है कि वह एक बहुत बड़े मानवीय संकट से गुज़र रहा है। स्थिति की जटिलता, अंतर्विरोध और तनाव की अभिव्यक्ति केवल संवेदनगत परिवर्तन के आधार पर संभव नहीं रही। स्थिति का सामना वैचारिक स्तरों पर करना होगा। विचार समकालीन साहित्यानुभुति का अविच्छिन्न अंग हो गयाहै। एक प्रकार से विचार ने उखड़ी हुई आस्था का स्थान ले लिया है। जब जीवन और साहित्य समस्याओं से भर जाता है, तो बुद्धिवाद प्रबल हो ही जाता है।

वस्तुवाद और प्रकृतवादः

भाववादी युग के स्थान-पर वस्तुवादी युग की प्रतिष्ठा हुई। वस्तुवादी दृष्टि का आरंभिक विकास डारनिवन के विकासवाद और आगस्त कामटे के विधेयवाद (पोजिटिविज़्म) के आधार पर हुआ। वैज्ञानिक प्रगति ने वस्तु बोध को बहुत दूरी तक प्रभावित किया।

वस्तुवादी दृष्टि ने प्रकृतवाद के प्रति आकर्षण जगाया। व्यक्ति विकास और व्यक्ति मानस की आदिम स्थितियाँ साहित्य में स्थान पाने लगीं। फलाडवेयर जैसे लेखक प्रकृतवादी उपन्यास लिखने लगे जिनमें आदिम स्थितियों से निष्पन्न सौंदर्यबोध दिखलाई पड़ता है।

BRAOU

परंपराः प्रयोग और प्रगति

परंपरा शब्द भी "शाश्वत" की भांति विवादास्पद हो गया है। "प्रगति और प्रयोग" जैसे शब्दों नें "परंपरा" को प्रश्नचिन्हित कर दिया है। परंपरा की अस्वीकृति भी प्रकट हुई है। एक दृष्टि यह है कि जीवन और चेतना का विकास परंपरा से पूर्णतः विच्छिन्न नहीं हो सकता। साहित्य-जीवन के जिस अंश को ग्रहण करता है वह अपने आप में निस्संग, और निरपेक्ष नहीं होता। उस वैयक्तिक या सामाजिक परिस्थिति की पृष्ठभूमि में एक क्रमिक और दीर्घ ऐतिहासिक परंपरा चली आ रही होती है। इस प्रकार साहित्यकार एक ओर अपना वयक्तिगत अनुभूति और समकालीन समाज से संबद्ध है तो दूसरी ओर उसके द्वारा गृहीत जीवन एक संपूर्ण ऐतिहासिक परंपरा की कड़ी के रूप में भी रहता है। कोई भी साहित्य या साहित्यकार इतिहास की चिरंतन प्रवाहशील धारा से असंबद्ध होने की बात नहीं कह सकता। इस अविच्छिन्न प्रवाह में जीवन का कोई-न-कोई समान आधार बना रहता है।

वास्तव में मनुष्य कभी केवल वर्तमान में नहीं जीता। हम जाने या अनजाने जिस काल में जीते हैं- वर्तमान, भविष्य और अतीत तीनों से संबद्ध हैं। यही अन्य पशुओं से मनुष्य का वैशिष्ट्य है। इसी त्रिकाल-जीवन में मनुष्य की परंपराओं का बीज भी है। परंपरा का निर्माण मनुष्य के गतिशील मनन-चिंतन आदि से होता है। यह रूढ़ि से इसी अर्थ में भिन्न है कि रूढ़ि स्वयं बनती है और परंपरा मनुष्य के द्वारा बनाई जाती है। गति, या प्रवाह परंपरा को आवश्यक गुण है। इस गुण के अभाव में परंपरा एक रूढ़ि मात्र है। पीढ़ियां दर-पीढ़ियां परंपराओं के मुद्रा तत्वों को छोड़ते हुए, जीवंत तत्वों को ग्रहण करती रहती हैं। इस प्रकार मनुष्य सार्थक रूप से अतीत को ग्रहण करता है।

मनुष्य की प्रयास अनुप्रेरक शक्तियां है- जिज्ञासा, विवेक और आत्माभिव्यक्ति। ये ही हमारी सांस्कृतिक यात्रा के उपकरण भी हैं। मनुष्य की इसी सांस्कृतिक यात्रा को, संस्कृति की इसी सजीवता को हम मानवजाति की सांस्कृतिक परंपरा के नाम से पुकारते हैं।

मनुष्य की इस सांस्कृतिक परंपरा में पड़ाव भी आते हैं और उतार-चढ़ाव भी। इसके रास्तों पर झाड़-झंखाड़ भी उग आते हैं। इनकी सफ़ाई भी करनी होती है। उपयोगी पेड़ उगाने भी पड़ते हैं। सुखे पेड़ों को काटा भी जाताहै। यही प्रयोग और प्रगति के तत्व हैं। इसलिए परंपरा को प्रयोग और प्रगति से अलग करके नहीं देखा जा सकता। परंपरा की अंधाधुंध अस्वीकृति अविवेक और दुराग्रह मात्र है। वास्तव में प्रयोग और परंपरा का इतिहास साथ-साथ चलता है। इसमें नया जुड़ता भी चलता है।

BRAOU

समसामयिक कला और शाश्वतता का प्रश्नः

आज से कुछ दिन पहले साहित्य और कला के संदर्भ में शाश्वत सत्य और मूल्यों की चर्चा की जाती थी। यह चर्चा निरुपयोगी भी मानी जाती थी। किंतु अब समाज-दर्शन में "परिवर्तन" को एक सामाजिक सत्य के रूप में स्वीकार किया गया है। समाजवादी चिंतन का तो यह एक केन्द्रीय सिद्धांत शब्द है। इसका तात्पर्य है कुछ भी शाश्वत नहीं है। सब कुछ सामाजिक परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तित होता रहता है। शाश्वत की आड़ लेकर उच्च वर्ग परिवर्तन की शक्तियों को नकारते हैं। प्रतिक्रियावादी यथास्थिति के बनाए रखने में ही रुचि लेते हैं। उसीसे उनका स्वार्थ साधता है। इसीलिए शाश्वत की मान्यता और चर्चा करना अब निरापद नहीं रहा।

शाश्वतता वादियों का कहना है कि पृष्ठभूमि बदलती है। उपमान बदलते हैं। शैली में नए रूप आते हैं। मूल और शाश्वत तत्व इस परिवर्तन क्रम में नवीन श्रृंगार भी करता है किन्तु तत्वतः वह सनातन है, शाश्वत है। स्थायी सत्य परिवेश के अनुसार अपनी अभिव्यक्ति के नये उपकरणों के आश्रय से युग के स्वरों के साथ संबद्ध होता चलता है। इसके विपरीत कुछ आधुनिक विचारक शाश्वत के सिद्धांत में गतिरोध और अगति के लक्षण देखते हैं। फिर भी नवीन या समसामयकि कलाकृतियों में भी मानव-जीवन के आदिम प्रश्नों की गूंज सुनाई पड़ती है। प्रश्नों की दिशा और उनके समाधान नये हो सकते हैं- होते ही हैं और होने भी चाहिए। उदाहरण के लिए एक मूल प्रश्न है- विघटन और विकर्षण से उत्पन्न मानव-मन की विकलता और उससे मुक्ति पाने के लिए संघटन और आकर्षण शक्ति की खोज और पुनर्स्थापना। इसी प्रश्न की भिन्न-भिन्न परिणतियाँ होती है।

काव्य या कला के स्थायी सत्य और शाश्वत मूल्यों में अविश्वास समाजवादी दर्शन की देन हैं। मार्क्स ने सामाजिक परिणति की दृष्टि से मानव जीवन के किन्हीं शाश्वत मूल्यों को स्वीकार नहीं किया। उनकी दृष्टि में साहित्य और संस्कृति केवल बाह्य उपलब्धियां हैं। इस प्रश्न को लेकर समाजवादी विचारकों में भी कुछ अतर्विरोध अवश्य मिलता है।

इतिहास की शाश्वत धारा में विचारगत आंदोलन होते रहे हैं। पर सभी आंदोलन किसी आंशिक सत्य को ही लेकर प्रायः चलते हैं। ये अपने ढंग से मानव के ज्वलंत प्रश्नों के उत्तर प्रस्तुत करते हैं। जब आंशिक सत्य को पूर्ण सत्य मान लिया जाता है तथा उसे मानव जीवन के संदर्भ में अंतिम शब्द के रूप में घोषित किया जाता है, तब उसकी गत्यात्मक शक्ति का ह्रास होता है। किसी प्रकार के संशोधन को स्वीकार नहीं किया जाता है। यह स्थिति प्रगति में बाधा ही उपस्थित करती है।

साहित्य और जीवन के मूल्यों में कुछ अंतर रहता है। साहित्य जीवन को समग्र रूप में ग्रहण करता है। इसी लिए इसमें सत्य की देशकालगत सीमाओं से निरपेक्ष स्थिति भी आजाती है। साथ ही साहित्य में युगीन चेतना भी व्यक्त होती है। पर जीवन के संतुलन का जो आधार ग्रहण किया जाता है वह एक सा रहता है। इसको सौंदर्यबोध कहते हैं। सौंदर्य बोध ही समीक्षा और साहित्य का स्थायी मूल्य है। फिर भी यह विकासशील होता है। साहित्य अंतर्बाह्य, व्यक्ति और समाज का ऐसा समुचित सामंजस्य प्रस्तुत करता है और जीवन को इतनी पूर्णता के साथ ग्रहण करता है कि देशकालगत सीमाओं के एक होते हुए भी उसका समंजस सत्य सार्वदेशिक, सार्वकालिक और सार्वजनीन बन जाता है। स्थायी को स्थिर समझना एक भ्रांति है। स्थायी सत्य भी अपनी बाह्य परिणति और सज्जा में सतत विकासशील है।

क्या वास्तव में साहित्य में स्थायी नाम की कोई वस्तु है? प्रगतिवादी और मार्क्सवादी विचारक स्थायी साहित्य के सिद्धांत को मानकर नहीं चलता। दूसरी ओर सौंदर्यवादी दृष्टि है, जो साहित्य के स्थायी और अस्थायी स्वरूपों को स्वीकार करके चलती है। यह सत्य है कि युग परिवर्तन साहित्य को भी प्रभावित करता है और युग परिवर्तित होते ही रहते हैं। अतः साहित्य भी गतिशील रहता है। पर, निरंतर गातिशील जीवन की कुछ ऐसी आधारनुभूतियाँ भी है, जो परिवर्तन में अपरिवर्तित रहती हैं। ये पुरातन नहीं, चिरनवीन हैं। इस प्रकार साहित्य की साधना में भी सामयिकता के साथ-साथ कुछ स्थायी भी होता है जिसका संबंध जीवन की मूलभूत भूमियों से होता है। जीवन की आधारभूमियों से तात्पर्य कुछ ऐसी प्राकृतिक प्रवृत्तियों से है जिसका व्यावहारिक पक्ष युग के अनुसार परिवर्तित होता है, पर अपने में चिर नवीन हैं।

प्रेमचंद ने एक बार कहा था- "साहित्यकार बहुधा अपने देशकाल से प्रभावित होता है। जब कोई लहर में उठती है तो साहित्यकार के लिए उससे अविचलित रहना असंभव हो जा ता है और उसकी विशाल आत्मा अपने देश-बंधुओं के कष्टों से विकल हो उठता है। और इस तीव्र विकलता में यह रो उठती है पर उसके रूदन में व्यापकता होती है। वह स्वदेश का होकर भी सार्वभौम रहता है।"

BRAOU

नई मानसिकताः

"नया" स्वातंत्र्योत्तर साहित्य के लिए एक प्रतीक शब्द बन गया है। यह एक नई मानसिकता का वाचक शब्द है। इसका उदय नये परिवेश में होता है। नई मानसिकता वर्तमान को बीते हुए कल के मृत तत्वों से सुरक्षित रखती है। साथ ही, वह भावी जीवन की संभावना से युक्त तत्वों को भी "कल" की जड़ता से आक्रांत होना पसंद नहीं करती। इसलिए "अस्वीकृति" का स्वर प्रबल हो जाता है। यह भी देखना होता है कि वे जीवन्त तत्व कौन से हैं जो "आज" की काया को पोषण दे सकते हैं। इसीलिए "अस्वीकृति" यदि दुराग्रह का रूप ले लेती है तो दोष होता है।

जब "आज" एक अंधकारपूर्ण "कल" (बीता हुआ) की कोख से एक लंबे अरसे के बाद जन्म लेता है, तो तब सबका कायापलट करने की सामूहिक बेचैनी जन्म लेती है। यही "नयी" अहसास है

जो "नये" की साधना करता है और सब कुछ को नए रंग में रंग डालने के लिए व्याकुल हो उठाता है। तात्पर्य यह है कि जिसे हम नया कहते हैं वह एक ऐसा जीवनदर्शन है जो अत्यंत पेचीदा स्थितियों से गुजरता है। एक नये भविष्य, नई व्यवस्था, नये शिल्प, नई मानसिकता, नये जीवन की कल्पना उगती-जगती है और जब ऐसा नहीं हो पाता, तो एक नई पीड़ा जन्म लेती है।

संक्षेप में जिसे हम नई मानसिकता कहते हैं वह बीते हुए "कल" की जड़ता के संस्कारों से मुक्त होती है, या मुक्त होने की कोशिश करती है। दूसरी ओर वह अपने वर्तमान और भविष्य के प्रति अपने को यथार्थ वादी पद्धति से प्रतिबद्ध पाती है। इस संदर्भ में अस्वीकृति कोई निषेधात्मक दर्शन नहीं है। यह दकियानूस व्यवस्था को बुद्धि और तर्क से आहत करती है। "अस्वीकृति" किसी स्वीकृति की भूमिका ही बनाती है। "नये" का यही दर्शन समकालीन साहित्य विधाओं की पृष्ठभूमि में है।

जनसंस्कृति की ओर झुकावः

समसामयिक साहित्यिक कृतित्व में जन संस्कृति की ओर आकर्षण बढ़ता हुआ मिलता है। पीछे जनवादी प्रेरणा भी थी। यह इसलिए था कि लेखक सामान्य जन से जुड़ना आवश्यक मानता है। जन संस्कृति से जुड़कर ही साहित्यिक कृतित्व एक व्यापक संदर्भ प्राप्त कर सकता है। इसी प्रकार वह एक निश्चितवर्ग की संकीर्ण सीमाओं से मुक्त हो सकता है।

नये सामाजिक सत्य को सर्व-संवेदय बनाने के लिए लोक गीतों और लोक कला का प्रयोग साहित्य में होने लगा यह एक नये संस्कार की ही खोज थी। जनवादी प्रवृत्ति में इस नई प्रयोगशीलता भी। इसके आधार पर सैद्धांतिक जनवाद भी सहज, उदार और सजीव बन सका। लोक गीतों और लोकधुन के प्रयोग की प्रवृत्ति लोकप्रिय हुई। जन संस्कृति प्रकट इसलिए भी हुई कि इसके सहारे मध्यवर्गीय संस्कृति का पराभव संभव था। इसकी भूमिका समाजवादी राजनीतिक विचारों के लिए आवश्यक थी। एक प्रकार से साहित्य और सामान्य जन के बीच संबंध स्थापित करने की प्रवृत्ति ही इस रूप में प्रकट हुई।

आशावादः

आज जो कुछ घटित हो रहा है, उसमें आशा और आस्था के स्वर मौन होते जा रहे हैं। आशावाद की बात की जाती है, तो लगता है कि एक पुराना और निरर्थक राग अलापा जा रहा है। एक ओर से आशावाद की आवाजें इस रूप में आती है, जो कुछ है सब ठीक है। बहुत अच्छा है। कहीं कोई गड़बड़ी नहीं है। ओ, सब ठीक हो जायेगा। इन आवाज़ों को माइक के सहारे दूर-दूर फैलाया जाता है। मानवतावादी कलाकार झूठे वादों में पले हुए आशावाद के साथ समझौता नहीं कर सकता। वह एक नपुंसक, घटिया और सस्ते आशावाद को लेकर नहीं चलता।

मानवतावादी कलाकार निर्मम वास्तविकताओं को देखता है और सच्चा आशावादी साहित्यकार, मनुष्य की अंतिम विजय के प्रति जनता का विश्वास दृढ़ करता है। वह विश्वास जगाता है कि मनुष्य के द्वारा मनुष्य के शोषण वाली व्यवस्था निश्चित रूप से आगे और चल नहीं सकेगी। साहित्यकार जीवन को उसकी गति में देखता है। वह देख रहा है- कल्पनातीत गरीबी, आक्रांत करनेवाली राजसत्ता, धर्मसत्ता का पतन और उसकी आतंकवादी परिणति, जीवन की पीड़ाएँ, टूटते हुए संबंध और हारा हुआ मनुष्य, जो अपनी लड़ाई में लहूलहान हो रहा है। तब भी वह न आशावाद को छोड़ रहा है और न अपनी आस्था को।

3.4 सारांश

स्वतंत्रता के पूर्व के साथ वर्तमान की तुलना करते हैं तो निराश होना पड़ता है। भारतीय जीवन के हर एक क्षेत्र में भ्रष्टाचारिता फैल गई है। साधारण मनुष्य परिस्थितियों से विकल है। वह अपने अस्थित्व की रक्षा करते हुए अपनी अस्मिता को खोज रहा है। ज्ञान-विज्ञान का आधार लेकर नवीन

BRAOU

सामाजिक और दार्शनिक सिद्धांतों के आलोक में वह जीवन का नया पथ बनाने का प्रयत्न कर रहा है। आज की जटिल परिस्थितियों में भौतिक, आध्यात्मिक और सांस्कृतिक समस्याओं का समाधान करते हुए आगे बढ़ना आवश्यक है। अंतर्मुखी और बहिर्मुखी, सांस्कृतिक और सामाजिक जीवन की गतिविधियों में समन्वय और सामंजस्यपूर्ण विकास के द्वारा मानवता का विकास हो सकता है। जीवन की निराशा को दूर करके आशा और आस्था का संचार करना नये साहित्य का दायित्व है।

3.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

3.6.1 'अ' श्रेणी के प्रश्न

1. आधुनिक जीवन में भ्रष्टाचारिता और चरित्र हीनता पर प्रकाश डालिए।
2. समसामयिक आर्थिक परिवेश पर विचार कीजिए।
3. आधुनिक काल में पारिवारिक जीवन और समाज की गतिविधि का निरूपण कीजिए।
4. साहित्य में समसामयिकता और शाश्वतता के प्रश्न पर विचार कीजिए।
5. समसामयिक सांस्कृतिक समस्याओं का विश्लेशण कीजिए।

3.6.2 'ब' श्रेणी के प्रश्न

1. स्वातंत्र्योत्तर राजनीतिक परिवेश का विश्लेशण कीजिए।
2. आधुनिकता के विकृत रूप का परिचय दीजिए।
3. समाजवादी विचारधारा की मान्यताओं को स्पष्ट कीजिए।
4. आधुनिक जीवन में मूल्य-संघर्ष पर विचार कीजिए।
5. साहित्य में परंपरा, प्रयोग और प्रगति की व्याख्या कीजिए।

3.7 नमूने के प्रश्नोत्तर

सूचनाः प्रश्नों के उत्तर के लिए संबद्ध उप शीर्षकों को पढ़िये। इस पाठ को अगले पाठ के साथ जोड़कर समसामयिक जीवन और साहित्यिक प्रवृत्तियों के संबंध पर ध्यान दीजिए।

BRAOU

3.8 पठनीय पुस्तकें

1. मानव मुल्य और साहित्य – धर्मवीर भारती
2. छायावादोत्तर हिन्दी काव्य की सामाजिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि – कमलाप्रसाद पांडेय
3. समकालीन साहित्यः आलोचना की चुनौती – बच्चन सिंह
4. बदलते परिप्रेक्ष्य – नेमिचंद्र
5. हिन्दी कविता की समकालीन चेतना – सुखवीर सिंह
6. आधुनिक परिवेश और नव लेखन – शिवप्रसाद सिंह

इकाई-4: समसामयिक हिन्दी साहित्यः आधुनिक बोध

4.0 विषय प्रवेश
4.1 पाठ का उद्देश्य
4.2 पाठ-परिचय
4.3 मूलपाठ
 4.3.1 आधुनिकता: अर्थ और अवधारणा
 4.3.2 भारतीय आधुनिकता
 4.3.3 विश्व की आधुनिकता और भारत
 4.3.4 साहित्य की नई धाराएँ
 4.3.6 साहित्य की विधाओं में आधुनिकता
4.4 सारांश
4.5 शब्दार्थ
4.6 अभ्यासार्थ प्रश्न
 4.6.1 'अ' श्रेणी के प्रश्न
 4.6.2 'ब' श्रेणी के प्रश्न
4.7 नमूने के प्रश्नोत्तर
 4.7.1 'अ' श्रेणी के प्रश्नोत्तर
 4.7.2 'ब' श्रेणी के प्रश्नोत्तर
4.8 पठनीय पुस्तकें

4.1 उद्देश्य

BRAOU

इस पाठ में समसामयिक हिन्दी साहित्य में आधुनिकता बोध पर विचार किया गया है। इसके अध्ययन से आपः

- आधुनिकता के संबंध में विविध दृष्टिकोणों पर विचार कर सकेंगे।
- साहित्य में आधुनिक दृष्टि के ग्रहण पर विचार कर सकेंगे।
- समसामयिक कविता की प्रवृत्तियों में आधुनिक बोध का निरूपण कर सकेंगे।
- 'नई कहानी' में आधुनिकता बोध की दिशाओं को स्पष्ट कर सकेंगे।
- हिन्दी साहित्य में आधुनिकता के स्वस्थ-अस्वथ्य पहलुओं का उल्लेख कर सकेंगे।

4.2 पाठ परिचय

पाठ के आरंभ में आधुनिकता बोध के संबंध में विभिन्न दृष्टिकोणों की व्याख्या की गई। इस संदर्भ में ध्यान देने की बात है कि आधुनिकता भी भारतीय और पाश्चात्य आवधारणाओं में काफी अंतर है। हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल के आरंभ से ही साहित्य में आधुनिकता की ओर प्रवृत्ति दिखाई देती है। यह भारत की परिस्थितियों के अनुरूप भारतीय परिवेश में है। स्वतंत्रता के बाद, विशेषतः 1960 के बाद हिन्दी साहित्य में आधुनिकता बोध की पाश्चात्य अवधारण का आरंभ हुआ। प्रजातंत्रात्मक चिंतन, मनोवैज्ञानिक चेतना, वैज्ञानिक दृष्टि, नगरीकरण, औद्योगीकरण, नवीन दार्शनिक-मानवीय विचारधाराएँ आदि से जुडी हुई है। इस पाठ को पिछले पाठ में चर्चित स्वातंत्र्योत्तर भारतीय परिवेश के संदर्भ में समझना चाहिए।

4.3 मूल पाठ

4.3.1 आधुनिकता: अर्थ और अवधारणा

"आधुनिक" शब्द का एक अर्थ काल सापेक्ष है। आधुनिक एक विशेष कालखंड का विशेषण है। यह कालखंड अतीत या मध्यकाल से भिन्न और इसी अर्थ में नया है। यह वर्तमान है। वर्तमान की धारणा कालचक्र की गति से संबंधित है। इसलिए आधुनिकता का रूप युगानुसार बदलता रहता है। प्राचीन युग भी अपने रूप में आधुनिक रहे होंगे। आज उनके लिए "प्राचीन" विशेषण का प्रयोग होता है। बौद्धकाल आज पुराना हो गया है। अपने समय में वह आधुनिक था। तथाकथित आधुनिक युग के आरंभिक चरण भी अब पुराने होते जा रहे हैं। यहाँ तक कि बीसवीं शती के आरंभ में जो आंदोलन चले, वे भी अब प्रतिक्रियावादी लगते हैं।

आधुनिकता का दूसरा रूप विचारपरक है। आधुनिक एक विशेष जीवन दृष्टि या विचार पद्धति का द्योतक विशेषण है। यह विचार पद्धति मध्याकालीन विचार से भिन्न है। फिर भी यह मानकर चलना होगा कि मध्यकाल में भी ऐसे कुछ विचार-बिंदु लक्षित किये जा सकते हैं, जो आज की अवधारणा के अनुसार भी आधुनिक कहे जा सकते हैं। ये परवर्ती युगों में अनेक रूपों में विकास पाते हैं। तात्पर्य यह है कि आधुनिकता किसी देश या महादेश की बपौती नहीं है। आधुनिकता के संकेत के लिए हरदम यूरोप और अमेरिका की ओर देखते रहना बेतुकी बात है। साथ ही हर चीज जो समसामयिक या वर्तमान कालीन है आधुनिक नहीं है। जो चीज समसामयिक या वर्तमानकालीन नहीं है वह भी आधुनिक हो सकती है।

आधुनिकता को कुछ विशिष्ट विचारों और लक्षणों के आधार पर भी परिभाषित किया जा सकता है। कुछ ऐसी जीवन दृष्टियाँ और विचार पद्धतियाँ हैं, जो मध्यकाल से आधुनिक युग को विशिष्ट बनाती हैं। इस दृष्टि से आधुनिकता एक मिश्रित धारणा बन जाती है।

कुछ विद्वानों ने आधुनिकता के पाँच लक्षण बतलाए हैं: शहर और शहरीपन का विकास, साक्षरता का विकास, शिक्षित लोगों द्वारा पुस्तकों, समाचार पत्रों, रेडियो कार्यक्रमों में भाग लेना, कारीगरी, का विकास और ऐसी मानव शक्ति का विकास जिस पर देश की आर्थिक उन्नति निर्भर हो सके तथा राजनीतिक जीवन में परिवर्तन। इस रूपरेखा में गाँव का उल्लेख नहीं है। गांधी जी की आधुनिकता में ग्राम विकास भी सम्मिलित है। एक अन्य विद्वान ने आधुनिकत की मुख्य विशेषता "समता" मानी है। बहुत से देशों के लिए "समता" आधुनिकता का पर्याय ही है। इसका दूसरा पक्ष है विषमता का अंत। समानता को स्पष्ट करने के लिए तीन शब्द लाए गयेः समान नागरिकता, समाज कल्याण, तथा अवसर की समानता। इनकी सिद्धि के लिए ही वैज्ञानिक और तकनीकी विकास आवश्यक है।

यह तो आधुनिकता की एक सामान्य भूमि हुई जिसका रूप पश्चिम के देशों में बना। "भारत में आधुनिकता का आरंभ" ऐसे समय में हुआ जब भारत परतंत्र था। इस स्थिति में स्वतंत्रता और एक स्वतंत्र राष्ट्रीय चरित्र के विकास की इच्छा भारतीय आधुनिकता की पहली पहचान बनी। इसी के आधार पर राष्ट्रीय शक्ति का विकास हो सकता है। राष्ट्रीय शक्ति ही देश को आधुनिक बना सकती है। उसके साथ स्वदेशी की भावना, पुनर्जागरण, पुनःरुत्थान, सुधारवाद, वैज्ञानिक दृष्टि का विकास, आर्थिक समृद्धि की इच्छा और उसकी पूर्ति के लिए प्रयास, प्राचीन भारतीय परंपराओं को स्वीकृत या अस्वीकृत करने की क्षमता जैसी प्रवृत्तियाँ भी सम्मिलित हो जाती हैं।

इतिहास में एक कालक्रम की चर्चा की जाती है— प्राचीन काल, मध्य काल और आधुनिक काल। इस दृष्टि से आधुनिक एक कालखंड का नाम है। एक दूसरी दृष्टि भी है। आधुनिकता एक प्रवृत्ति है जिसका किसी निश्चित देश-काल से अनिवार्य संबंध नहीं है। ऐतिहासिक आधुनिक युग में रहनेवाला मानस पूर्णतः या अंशतः मध्य युगीन हो सकता है और मध्य काल में भी कबीर जैसे आधुनिक विचारक

BRAOU

हो सकते हैं। आधुनिक युग में ये शक्तियाँ अधिक शक्तिशाली होकर आंदोलन का रूप धारण करती हैं। जिस युग में ऐसा होता है वह आधुनिक युग कहा जाता है।

आधुनिकता मध्य कालीन जीवन दृष्टि और मूल्य व्यवस्था के प्रति एक प्रतिक्रिया है। दूसरी ओर धर्म के स्थान पर मनुष्य और बुद्धिवाद की प्रतिष्ठा होती है। बौद्धिकता परंपराओं के परीक्षण और पुनर्व्याख्यान की प्रेरणा देती है। यह परंपरागत मूल्यों में परिवर्तन लाती है। बुद्धि, यथार्थवाद, वस्तुवाद और विज्ञान के आधार पर जो मनुष्य केंन्द्रित समाजोन्मुख जीवन दर्शन बनता है, वही आधुनिकता का लक्षण है।

4.3.2 भारतीय आधुनिकता

जहाँ भारतीय आधुनिकता विश्व की आधुनिकता का एक अंग है, वहाँ भारतीय आधुनिकता का अपना चरित्र भी है। भारतीय आधुनिकता का सूत्र इतिहास में कौटिल्य, बुद्ध, समुद्रगुप्त और मध्यकालीन संत चेतना को जोड़ता हुआ आधुनिक युग के संतों तक चला आता है। आधुनिक संतों में महर्षि दयानंद, रामकृष्ण परमहंस, विवेकानंद, अरविंद, गांधी और विनोबा जैसी विभूतियाँ आती हैं। इन्होंने जिस आधुनिकता का सूत्रपात किया उसकी पृष्ठभूमि में औद्योगिक क्रांति जैसी कोई घटना नहीं है। इसमें राजनीति, पुरर्जागरण, सुधार, मानवातावाद और विश्वभावना का वह घोल है जो भारतीय आधुनिकता को पाश्चात्य आधुनिकता से अलग करता है।

भारत में आधुनिकता को पश्चिम का पर्याय मान लिया जाता है। यह भी कह दिया जता है कि आधुनिकता भारत को पश्चिम की देन है। दूसरी ओर यह भी माना जाता है कि आधुनिकता इतिहास की एक विशिष्ट प्रक्रिया और स्थिति का नाम है। यह प्रक्रिया देश और काल के अनुसार विभिन्न रूप भी धारणा कर सकती है। इसके लानेवाले कारण सदा और सर्वत्र एक से नहीं होते। यह सब होते हुए भी आधुनिकता के मूलाधार समान भी हो सकते हैं। पश्चिम ने भी आधुनिकता को एक लंबे अरसे में, एक संघर्ष के बाद पाया।

जब पश्चिमी आधुनिकता की चर्चा की जाती है, तो भारी उद्योग, उन्नत तकनीक, बड़ी मशीन, प्रयोगात्मक विज्ञान, तर्कपूर्ण विचार दृष्टि और आधुनिक शिक्षा के बिंब कल्पना में तैर आते हैं। पश्चिमी भाषा और वेषभूषा पर भी दृष्टि जाती है। लोकतंत्र तथा अन्य समाज दर्शन भी इस रूप में पश्चिमी आधुनिकता के ही लक्षण हैं। कुछ लोगों का विचार कि यही सब कुछ आधुनिक है। दूसरी ओर इससे भिन्न भारतीय आधुनिकता भी हो सकती है जिसे भारत ने स्वीकार किया है और जो भारत की भारती से उगी है और जो इसकी परिस्थितियों के अनुकूल है।

भारत में नवजागरण और सुधारवादी आंदोलन के पहले नेता राजा राममोहन राय माने जाते हैं। इनके मस्तिष्क पर ईसाई धर्म के सिद्धांतों का प्रभाव तो था, किन्तु वे युग के यथार्थ के प्रति जागरूक थे। मिशनरियों द्वारा दूसरों का धर्म परिवर्तन करना/कराना उनको पसंद नहीं था। उन्होंने इसका विरोध भी किया। वे यह भी जानते थे कि शासन ने मिशनरियों को ऐसी पुस्तकें लिखने की अनुमति दी है जिनमें हिन्दू और मुसलमान धर्मों की खिल्ली उड़ाई गई है। यह धार्मिक तटस्थता की नीति का परित्याग है। साथ ही उन्होंनें हिन्दुओं के बहुदेववाद, कर्मकांड, अवतार की पौराणिक धारणा, मूर्तिपूजा और सती प्रथा के विरोध में कदम उठाया। वे हिन्दू धर्म को एक सच्चे राष्ट्रीय धर्म के रूप में फिर से जीवित करना चाहते थे। एक ही ईश्वर और मानवीय मूल्यों के आधार पर एक विश्व धर्म की कल्पना भी उनके मन में जगी।

राजा राममोहन राय के धार्मिक सुधार का लक्ष्य राजनीति से कटा हुआ नहीं था। उनका विश्वास था कि सामंतवाद विरोधी और उपनिवेशवाद विरोधी संघर्षों में नया, गतिशील धर्म एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकता है। उनके नये या आधुनिक विचारों का विरोध प्रतिक्रियावादी पंडितों ने भी किया और ईसाई मिशनरियों ने भी। फिर भी उनके प्रगतिशील विचारों का आदर करनेवाला वर्ग पैदा हो रहा था।

BRAOU

भारत में राष्ट्राय पत्रकारिता के संस्थापक राजा राममोहन राय ही माने जाते हैं। "संवेद कौमुदी" (1821 बंगाली) तथा "अल अकबर" (1822: फारसी) की स्थापना हुई। ये दोनों ही राष्ट्रीय नव जागरण के संवाहक थे। अंग्रेज़ों ने इनको शंका की दृष्टि से देखा। इन पर सेंसर लगाया गया।

राजा राममोहन राय ने सती प्रथा का सबसे अधिक विरोध किया। इसके विरोध के लिए उन्होंने शास्त्र और स्मृतियों को ही आधार बनाया। कुछ मिशनरियों का भी इन्हें सहयोग प्राप्त हुआ। स्त्री और पुरुष दोनों के लिए समान अधिकारों की मांग उठाई गई। बाल विवाह रोकने तथा विधवा विवाह की अनुमति के लिए भी आंदोलन चलाया गया। राजा राममोहन राय ने आधुनिक शिक्षा के प्रचार का पूरी तरह समर्थन किया। उनके अनुसार नई शिक्षा ही आधुनिक चिंतन का रास्ता खोल सकती थी।

ब्रह्म समाज की स्थापना भी राजा राममोहन राय ने की। इसका उद्देश्य था, समाज में एक सामाजिक चेतना पैदा करके धार्मिक और सामाजिक आंदोलनों का संघटन करना। इसका भी समाज में विरोध तो हुआ किन्तु उसने बुद्धिजीवियों को अपनी ओर आकर्षित किया। ब्रह्म समाज मूर्ति पूजा, छुआछूत के भेदभाव, जातिप्रथा और धार्मिक कट्टरता का विरोध करता था। यह विधवाओं के पुनर्विवाह और अंतर्जातीय विवाह का समर्थन भी करता था। इसके समाजदर्शन के दो आधार थे- जो एक ईश्वर में विश्वास तथा मनुन्यों के बीच भ्रातृत्व। इससे राष्ट्र में नवजागरण की ज्योति जग गई, राजा राममोहन राय के बाद देवेंद्रनाथ ठाकुर और केशवचंद्रसेन ने इस कार्यक्रम को आगे बढ़ाया ईसाई धर्म का प्रभाव उनपर अवश्य था। पर ईसाई धर्म के मताग्रहों का विरोध भी किया गया। उन्नीसवीं शती के अंत तक इस आंदोलन में बिखराव आया।

उसके बाद स्वामी विवेकानंद पर हमारी दृष्टि केन्द्रित होती है। श्री रामकृष्ण परमहंस ने एक घोषणा की- "सब धर्म एक ही वृक्ष की शाखाएँ हैं।" इस घोषणा के साकार प्रतीक हैं- स्वामी विवेकानंद। उन्होंने रामकृष्ण मिशन की स्थापना की। जनता में सामाजिक चेतना जगाना ही उसका लक्ष्य था। फ्रांसीसी राज्य क्रांति से वे प्रभावित हुए। उनकी दृष्टि में एक देश नहीं, समूचा विश्व था। भारत की गरीबी उनको पीड़ित करने लगी। ब्रिटिश उपनिवेशवाद के नग्न रूप को उन्होंने देख लिया। उनकी क्रांति की वाणी उस प्रकार फूट उठी: भारत को ऊपर उठाया जाना है। गरीबों की भूख मिठाई जानी है। शिक्षा का प्रसार किया जाना है। पंडों पुरोहितों को हटाया जाना है। हमें सामाजिक आतंक नहीं चाहिए। हरेक के लिए रोटी, हरेक केलिए काम की अधिक सुविधाएँ चाहिए। आध्यात्मिक विकास के लिए यह सब आवश्यक है। इस प्रकार समाज सुधार का कार्य और तेज हुआ। विचारों में आधुनिकता और तीव्रतर होकर उतरी।

BRAOU

भारतीय सामाजिक सुधारवाद के इतिहास में महादेव गोविंद रानाडे का प्रमुख स्थान है। उन्होंने ब्रह्म समाज के आदर्श पर 1870 में बंबई में "प्रार्थना समाज" की स्थापना की। इसने जातिप्रथा, बालविवाह, मूर्तिपूजा तथा हिन्दू समाज की अन्य कुरीतियों के विरुद्ध आंदोलन को शक्तिशाली बनाया। रानाडे ने समाज सुधार की चेतना को राजनीति से जोड़ा। कुछ नेताओं ने इन दोनों में संबंध नहीं माना।

इस परंपरा में महर्षि दयानंद और उनके द्वारा स्थापित "आर्य समाज" आते हैं। इस संस्था ने राष्ट्रीय एकता की आवाज़ उठाई। किन्तु उसका आधार वेद और हिन्दू धर्म थे। इनकी दृष्टि मुख्य रूप से पुनरुत्थानवादी थी फिर भी समाज सुधार के कार्यक्रम में इन्होंने योगदान किया। स्वामी जी ने पूर्तिपूजा का विरोध किया। अस्पृश्यता के साथ भी इन्होंने समझौता नहीं किया। विधवा विवाह को भी ये स्वीकार करते चले।

केरल के सुधारवादी नेताओं में श्री नारायण गुरु का नाम उल्लेखनीय है। उन्होंने केरल में सामाजिक कुरीतियों का जोरदार विरोध किया। इसी सिलसिले में आन्ध्र प्रदेश के वीरेशलिंगम पंतुलु का भी नाम लिया जा सकता है। समाज-सुधार के प्रयत्नों में उनको सनातन धर्म के समर्थकों के अत्यचार भी सहने पड़े।

भारत में आधुनिकता के आंदोलन का विकास राष्ट्रीय आंदोलन के साथ हुआ। वैसे भारत में आधुनिक युग का आरंभ 18 वीं शती के उत्तरार्ध से माना जाता है जब देश के दक्षिण पश्चिमी और पूर्वी प्रदेशों में अंग्रेज़ी शासन स्थापित हो गया था। आधुनिकता की स्पष्ट छवियाँ 1857 के बाद ही उभर कर आई। यही समय भारतीय राष्ट्रीयता के नवोदय का है। जिस प्रकार 19वीं शती के साथ आई आधुनिकता यूरोप में 17वीं शती के वैज्ञानिक विकास के साथ स्पष्ट हुई थी, उसी प्रकार भारतीय आधुनिकता राष्ट्रीयता के उदय के समय सुनिश्चित आकार लेने लगी।

एक और दृष्टि है। 15वीं शती में भक्ति आंदोलन ने जिस भक्तिमूलक नई सामाजिक चेतना को जगाया था और धर्म के क्षेत्र में जिस क्रांति को उद्‌बुद्ध किया था, वही 1857 के बाद की युवाचेतना में नया निखार पाकर इस काल की सुधारवादी और पुनर्जागरण मूलक परिस्थिति में आधुनिक बनी। पाश्चात्य दृष्टि और तत्कालीन राष्ट्रीय चेतना इसको आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में लाई। आधुनिकता के भारतीय अग्रदूत भक्तिकालीन मानवतावाद से अवश्य ही प्रभावित हुए थे।

आधुनिकता का कोई चरण शाश्वत नहीं होता। अठारहवीं शती की आधुनिकता पुरानी हो गई। उन्नीसवीं शती की उपर्युक्त आधुनिकता को भी अब इस अर्थ में स्वीकृत नहीं किया जाता। बीसवीं शती के आधुनिक उत्स भी पुराने पड़ गये। इस प्रकार कालसापेक्ष आधुनिकता की कोई सुनिश्चित सरणि नहीं बनती। ऐतिहासिक परिप्रेक्ष में आधुनिकता से संबंधित एक ही सिद्धांत उभरता है: आधुनिकता किसी ठहराव का नाम नही है वह एक निरंतर गतिशीलता है।

4.3.3 अंग्रेजों का शासन और आधुनिकता

विश्व की आधुनिकता पर विचार करते समय विश्व के इतिहास की कुछ घटनाएँ ध्यान में आजाती हैं जैसे अमरिका का स्वातंत्र्य संग्राम, फ्रांस की राज्यक्रांति, औद्योगिक क्रांति और रूस की लाल क्रांति। इन घटनाओं ने मध्यकालीन जीवन दृष्टि को विदा दी। मध्याकालीन मानस पर धर्म का जो नियंत्रण था, वह शिथिल होते-होते समाप्त ही होने लगा। मनुष्य के विचारों में क्रांति हुई और नये दर्शन सामने आये जैसे विकासवाद, प्रकृतवाद, मनोविश्लेषणवाद, समाजवाद आदि। इन्होंने मनुष्य और उसके समाज पर नए सिरे से विचार किया। विश्व की आधुनिकता से भारत का संपर्क अंग्रेजी के माध्यम से हुआ।

आधुनिक युग की एक प्रमुख घटना ब्रिटेन की भारत विजय है। इस घटना के पश्चात् भारत का संपर्क पश्चिमी विचारों से हुआ। इसके परिणामस्वरूप आधुनिकता और आधुनिकीकरण की गति तेज़ हुई। ब्रिटेन के पूंजीवादी उपनिवेशवाद ने भारतीय उद्योगों को ठप कर दिया। यह चाहता था कि ब्रिटेन में तैयार होनेवाले माल का भारत उपभोक्ता बना रहे और यहाँ से कच्चा माल इंगलैंड जाता रहे।

इस सबकी सुविधा के लिए भारत में रेलों, भाप के जहाज़ों और तार भेजने की व्यवस्था की गई। लक्ष्य था- साम्राज्यवादी हितों को सुविधा देना। दूसरा कारण था विद्रोह आदि के समय, सुरक्षा दलों को यहाँ से वहां ले जाना। किन्तु अव्यक्त रूप से इस व्यवस्था ने भारत के भौगोलिक और राजनीतिक एकीकरण में सहायता दी। जनसमुदायों के बीच के अलगाव बहुत कुछ समाप्त हुए। सुधार और नवजागरण के लिए एक भूमिका तैयार हुई।

आरंभ में तो इस्ट इंडिया कंपनी ने आधुनिक शिक्षा और सुधार के कार्यों में कोई दिलचस्पी नहीं ली। सामाजिक रूढ़ियों और प्रथाओं तथा धार्मिक मामलों में हस्तक्षेप न करने की नीति रहीं। प्लासी के युद्ध (सन् 1757) के बाद नीति में परिवर्तन आया। पार्लियामेंट को समाज के नैतिक सुधार का वचन लेना पड़ा। आधुनिक शिक्षा और समाज-सुधार को लागू करना इसलिए आवश्यक हो गया कि भारत के बाज़ार ब्रिटिश व्यापार के लिए विकसित हो सकें और शासन में सुविधा हो। ईसाई धर्म प्रचार को भी प्रोत्साहन दिया गया। जाने-अनजाने धर्म परिवर्तन की भूमिका भी बन गई। मिशनरियों के कार्यक्रम से ब्रिटिश शासन सुदृढ़ होने लगा।

शासन तो जाति-भेद को मज़बूत करना चाहता था और हिन्दू-मुसलमान के भेद को भी कुटनीति के रूप में बरकरार रखना चाहता था किन्तु मिशनरियों ने जाति प्रथा, अस्पृश्यता, मूर्ति पूजा, बाल-विवाह, सती प्रथा अन्य धार्मिक रूढ़ियों के विरोध में आंदोलन चलाया। उससे भारतीय जनता में सामाजिक जागृति आने लगी। भारतीय इतिहास और संस्कृति के अध्ययन का क्रम चला। स्कूल और अस्पताल खोले गये। वैसे, यह सब ईसाई धर्म के प्रचार के कार्यक्रम के अंतर्गत ही था। किन्तु भारतीय विचारकों और सुधारकों को इस सबसे प्रेरणा मिली। तत्कालीन समाज सुधारकों ने ईसाई कालेजों में शिक्षा भी प्राप्त की थी और ईसाइयों के संगठन और कार्यक्रम का भी अध्ययन किया।

जो शिक्षा अंग्रेजों ने अपने प्रभुत्व को दृढ़ करने के लिए या भारतीयों को ब्रिटिश राज्य के प्रति वफादार बनाने के लिए आरंभ की थी, उसने नई चेतना जगाने में मदद की। साथ ही यह भी विश्वास था कि ईसाई धर्म के प्रचार में भी सहूलियत होगी। किन्तु उसने एक नई वैज्ञानिक दृष्टि पैदा की तथा राष्ट्रीय जागरण के लिए भूमि तैयार की। पुरर्जागरण और सुधार के लिए कार्यक्रम बनने लगे और संस्थाएँ गठित की गई।

4.3.4 समसामयिक साहित्यः आधुनिक दृष्टि

भारत की आज़ादी ने एक व्यापक ऐतिहासिक-सामाजिक परिप्रेक्ष्य दिया। सांस्कृतिक विघटन होते हुए भी विकास की संभावनाएँ हो गई। सामाजिक परिस्थितियाँ और अंतर्राष्ट्रीय प्रभावों के कारण साहित्य का विकास कुछ अधिक संश्लिष्ट रूपों मे हुआ। विचारधाराओं मे टकराव तो हुआ, पर संघर्ष अधिक नहीं टिका। हिन्दी का संवेदनशील रचनाकार यह तो समझ गया कि आज़ादी के पहले की सरल दुनिया का अंत हो गया है। राजनीतिक उद्देश्यों और आंदोलन से संबद्ध या असंबद्ध होने का नहीं है। बल्कि लेखक के रूप में प्रश्न अपनी अनुभूति की गहराई में जीवन के यथार्थ को माने और उसे अभिव्यक्ति देकर सत्य का उद्‌घाटन करने का है। समाज के प्रति उसकी यही प्रतिबद्धता है। इस दौर में रचे गये नये साहित्य में युग की वास्तविकता को गहरी कलात्मक अभिव्यक्ति देने की बेचैनी भी है और योजना भी। यह अभिव्यक्ति कुछ दुरुह अवश्य हो गई है। किन्तु उसमें जिजीविषा की अविकल झांकी मिलती है। दलित मानव के प्रति उसमें प्रेम का संचार भी है। नई और पुरानी पीढ़ी के लेखकों ने नवसृजन में एक समान उत्साह से भाग लिया है। बहुत कुछ नया रचा गया है। पिछले बीस-पच्चीस वर्षों की उपलब्धि पर हम गर्व कर सकते हैं।

BRAOU

स्वातंत्र्योत्तर युग के घात-प्रतिघातों ने भारतीय जीवनदर्शन को एक अप्रत्याशित मोड़ दिया। जो नए बुनियादी प्रश्न मानस-मंथन से उभरे, कलाशिल्पियों और साहित्यकारों ने अपने-अपने माध्यम से इन प्रश्नों को जिया और समाधान खोजे। जो विराट यथार्थ उभर कर इतिहास में आया उसने एक ओर तो अस्वस्थ प्रवृत्तियों और कुंठावादी वैयिक्तिक जीवनदर्शन को प्रश्रय दिया, दूसरी ओर कतिपय स्वस्थ जीवन मूल्य उजागर होने लगे। उनका संबंध मानव-मन की अपने वर्तमान और भावी जीवन के प्रति आस्था तथा सामाजिक विकास के प्रति सहज और अटूट निष्ठा से है।

इन परिस्थितियोंने ने व्यक्ति में पुरातन संस्कारों का व्यामोह भी उत्पन्न किया, जिससे प्रेरित होकर सांस्कृतिक पुनरुत्थान की लहर उठी। दूसरी ओर नए और पुराने के अनमेल संगम से एक अधकचरी मनःस्थिति भी पैदा हो रही थी। ऐसे भी वर्ग है जो नया जीवन गढ़ने में असमर्थता का अनुभव कर रहे हैं और समाजद्रोही, अनास्थाशील, विघटनवादी प्रवृत्तियों को ही नए जीवन मूल्य समझ बैठे हैं। इस प्रकार एक संस्कारगत सामाजिक मंथन चल रहा है। कुछ ऐसे भी हैं जो नए जीवन का निर्माण करने के लिए अपनी क्षमता के प्रति आस्थावान हैं और नए संस्कारोंको रूपायित कर रहे हैं। साहित्य के क्षेत्र में जीवन के ये केंद्रीय प्रश्न और संभावित समाधान आकार ले रहे हैं।

आज़ादी का क्षण कुछ ऐसी अनहोनी घटनाओं में फंस गया कि साहित्यकार उल्लास के गीत न गा सका। आगे यथार्थ इतना कटु होता चला गया कि साहित्यकार स्तब्ध रह गया। आज़ादी से पहले अधिकांश साहित्यकार राष्ट्रीय लड़ाई में सेनानियों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चलते रहे।

गांधी की कल्पना में रूपायित गाँव प्रेमचंद के कृतित्व में अभिव्यक्ति पाता रहा। अन्य साहित्यकार चाहे राष्ट्रीय हलचल से इतने न जुड़े न हों, फिर भी राष्ट्रीय चेतना से इतने उदासीन भी नहीं कहे जा सकते। यह आश्चर्य होता है कि स्वातंत्र्योत्तर लेखक-साहित्यकार देश के नव-निर्माण और सामूहिक विकास के कार्यक्रमों से कतरा गया। शायद वह नई प्रतिति पैदा नहीं कर सका और उसकी दिशा स्पष्ट नहीं हुई। फलतः उसकी रचनाधर्मिता में अपेक्षित प्रखरता नहीं आ सकी। देश में भ्रष्टाचार जन्य जो निरासा घनीभूत होती जा ही थी, इसको वाणी देने में लेखक अक्षम रहा। व्यंग्य और आक्रोश जितना तीखा और आक्रमक होना चाहिए था, उतना नहीं हुआ।

साहित्यकार निर्थकता के बोध से भर गया क्यों कि देश की वर्तमान और भावी योजनाओं के संबंध में उसका कोई प्रदेय निश्चित नहीं हो पा रहा था। नये परिवर्तनों के वातावरण में वह अजनबी सा हो गया। उसकी संवेदनशीलता अर्थहीन हो गई।

कभी वह अंतर्मन की गुहाओं में घुसने की चेष्टा करता हुआ मिलता है और कभी यूरोप की "बीटनिक" या "कृद्ध" पीढ़ियों से कुछ लेकर एक अधकचरे विद्रोह की मुद्रा में फंसा हुआ मिलता है। और भी कामू व सार्त्र उस दिग्भ्रान्त साहित्यकार को पतन की यथार्थता और जीवन की अस्तित्ववादी दृष्टि से जोड़ते मिलते हैं। कभी लगता है कि साहित्यकार अपने पैरों के नीचे की धरती को खिसकते हुए देखकर दूसरी धरती पर पैर जमाने की कोशिश कर रहा है। आज के प्रश्नाकुल परिवेश से उदासीन होकर यदि साहित्यकार मात्र शब्दजाल को शिल्प कहे और अंतर्विरोधों और असंगतियों के चित्रण को लक्ष्य बनाएं तो एक प्रकार से अपनी अस्मिता को संदिग्ध बना रहा है।

विज्ञान और बुद्धिवाद के विकास के परिणाम स्वरूप मानवेतर, महामानवीय या परा प्राकृतिक साहित्य वस्तु का ह्रास हो गया। साक्षितय की वस्तु में मानव की प्रतिष्ठा हुई। धर्म और ईश्वर पर आधारित काव्य वस्तु का आकर्षण समाप्त हुआ। धर्म पर आधारित नैतिकता के स्थान पर मानव-प्रकृति और समाज पर आधारित नैतिकता स्थापित हुई। मनोविज्ञान, समाज विज्ञान और जीव विज्ञान की दृष्टि से मानव केंद्रित साहित्य वस्तु को नियोजित किया गया।

बीसवीं शती के दूसरे दशक में मनोवैज्ञानिक की खोजें साहित्य की वस्तु योजना को बहुत प्रभावित करने लगी। प्रकृतिवादी वस्तु चेतना को मनोविज्ञान ने एक आधार दिया। स्वप्न, अचेतन, अवचेतन, दमन, वर्जन, कुंठा, सामूहिक चेतन आदि सिद्धांतों के प्रकाश में साहित्यक वस्तु की योजना होने लगी। फ्रायड, एड्लर और जुंग के सिद्धांतों का प्रभाव सबसे अधिक पड़ा।

BRAOU

4.3.5 नई विधाएँ

आधुनिक युग में हिन्दी साहित्य का विदेशी साहित्य से संपर्क-संबंध स्थापित हुआ। इस के परिणाम स्वरूप साहित्य में नई गद्य विधाओं का प्रयोग होने लगा। उपन्यास, कहानी, निबंध, एकांकी, रेखाचित्र, संस्मरण, व्यंग, जीवनी, यात्रा-विवरण, रिपोर्ताज जैसी नवोदित विधाओं ने साहित्य में स्थान बनाया। साहित्य की इन विधाओं के अंतर्गत नई प्रवृत्तियों और रूपों का विकास हुआ। कविता में प्रयोगवाद, नई कविता आदि ऐसी प्रवृत्तियाँ हैं। "नई कहानी" "नया नाटक" आदि शिल्प की दृष्टि से नये रूपात्मक प्रयोग हैं।

समीक्षा प्रायः साहित्य का अनुकरण करती है। साहित्य की प्रवृत्ति समीक्षा-दृष्टि का निर्धारण करती है। यदि साहित्य-सृजन उच्च कोटि का नहीं होता तो समीक्षा कैसे श्रेष्ठ हो सकती है। भारतीय इतिहास के आधुनिक युग में साहित्य ने अपनी दिशा भी बदली और अपना विस्तार भी किया। एक ओर तो साहित्य ने लोक साहित्य से नाता जोड़कर नये साहित्य रूपों को ग्रहण किया। अव्यक्त रूप से यह सामान्य जन से ही साहित्य का रिश्ता जोड़ने का उपक्रम था। साथ ही विदेशी साहित्य से संपर्क-संबंध स्थापित हुआ। नई गद्यविधाओं ने भारतीय साहित्य की भूमि पर पैर रखा। भाषाई क्रांति भी हुईः ब्रजभाषा का एक शासन शिथिल पड़ाः खड़ी बोली हिन्दी के आधार पर अभिव्यक्ति और प्रेषण

के नये तेवरों, मुहावरों और शैली की संभावना बढ़ी। काव्य जहाँ साहित्य का एक मात्र पर्याय बना हुआ था, वहाँ अब साहित्य की परिभाषा में गद्य की नई विधाएँ भी शामिल हुईः उपन्यास, कहानी, निबंध, एकांकी, रेखाचित्र, संस्मरण, व्यंग, जीवनी यात्रा-विवरण जैसी नवोदित विधाओं ने अपना स्थान बनाया। पत्रकारिता जन्मी और पनपने लगी।

जब साहित्य में एक अभूतपूर्व विकास होने लगा, तो समीक्षा के व्यावहारिक और सैद्धांतिक प्रतिमानों की आवश्यकता भी मालूम पड़ने लगी। नवीन साहित्यिक विधानों के साथ नवीन समीक्षा भी सामने आने लगी। जहाँ नये ग्रंथों का प्रकाशन होने लगा, वहाँ पुस्तकों के परिचय भी छपने लगे। समीक्षा के विकास की प्रेरणाएँ सबल होने लगीं। यानी साहित्य-प्रवृत्तियों के बोध और संस्कार का क्रम भी चला। देशी-विदेशी विद्वानों के द्वारा साहित्य के छोटे-मोटे इतिहास भी लिखे जाने लगे। साहित्य के इतिहास के प्रति जिज्ञासा बढ़ी और इतिहास बोध के लिए आधार-भूमि तैयार होने लगी। शोध और शोध परक समीक्षा भी अपनी जड़ें जमाने लगी। मतलब यह कि हिन्दी समीक्षा के लिए प्रेरणाएँ भी उगीं और आधार-भूमि भी स्पष्ट हुई।

लेकिन साहित्य के जितने ग्रंथ प्रकाशित हुए, उनकी तुलना में समीक्षा को स्थान बनाने में कुछ अधिक समय लगा। हिन्दी समीक्षा के प्रतिमानों के नये सिरे से बनना था। सृजन साहित्य के उबाल को एक निश्चित रूप लेने में भी तो समय लगता है। ग्रंथों को अपनी शक्ति के बल पर समय के थपेड़ों में बनना-टिकना था। समीक्षा के लिए आधारभूत सामग्री को सुनिश्चित रूप लेना था। नयी अभिरुचि जगनी थी और सामाजिक परिवर्तनों के साथ जुड़कर चलनेवाले ग्रंथों को सामने आना था। अतीत के स्वर्णजाल से मुक्त होने और आधुनिक बनने के संघर्ष को मजबूत बनने में भी तो समय लगता है। एक विश्वसनीय दृष्टिकोण को स्थापित होना था। फिर भी हिन्दी समीक्षा धीरे-धीरे ही सही रूप लेती गई। बात शुरू तो हुई काव्य समीक्षा से ही, पर नई विधाओं तक फैलती गई।

जब किसी नये युग का सूत्रपात होता है, तो साहित्य की भाषा में भी बदलाव आता है। आधुनिक युग के आरंभ होने के साथ ही ब्रज भाषा का साहित्यिक भाषा के रूप में एक छत्र शासन शिथिल हुआ। खड़ी बोली साहित्यिक भाषा के रूप में अपना स्थान बनाने लगी। आगे चलकर यही एकमात्र साहित्य-भाषा बन गई। नई जीवन दृष्टि, नई सामाजिक चेतना और नवीन साहित्य वस्तु के माध्यम के रूप में खड़ी बोली पर आधारित हिन्दी ने अपना विकास किया।

4.3.6 साहित्य की विधाओं में आधुनिकता

BRAOU

प्रयोगवाद का उपसंहार नई कविता के रूप में आए हो, किन्तु प्रयोगवादी कविता और नई कविता एक नहीं हैं। दोनों के कथ्य और रूप में स्पष्ट अंतर दिखाई पड़ता है। प्रयोगवाद की भाषा जिस व्यक्तिगत प्रतिक योजना से बोझिल हो गई, नई कविता ने उससे अपने को मुक्त किया। नई कविता ने कथ्य को व्यापक और वाद-निरपेक्ष बनाया। प्रगति की परंपरा में भी जो कुछ ग्राह्य और स्पृहणीय था, उस को भी इस काव्य धारा ने सहेजा-सजाया। नई कविता के केंद्र में अपने समस्त परिवेश में स्थित मनुष्य है। इसलिए नई कविता की स्वतंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य की एक स्वतंत्र काव्य धारा के रूप में नई कविता को लेकर चलना सुविधाजनक होगा।

उस युग में मनुष्य को अनेक अंतर्बाह्य संघर्ष झेलने पड़े हैं। तनाव और संत्रास ने उस के अस्तित्व को झक्झोर डाला है। इस स्थिति में मनुष्य के जो रूप-कुरूप विकसित हुए हैं, वे ही कविता के अंतर्वस्तु में समाविष्ट हैं। मानव की सही आकृति को परिवेश के साथ ही आंका जा सकता है। परिवेश का चित्रण नवीन यथार्थ के समुचित और सहानुभूतिपूर्ण बोध के आधार पर किया गया है। जीवन की समस्या को अपने निजी और संकटपूर्ण रूप में उभारा गया है।

नई कविता का मानव और मानवता में पूर्ण विश्वास है। महामानव के व्यामोह को उसने तोड़ा है। विज्ञान की प्रगति, मशिनों की निरंकुशता और युद्धों ने मानव का जो अपमान किया है, वह नई कविता को असह्य है। मानव की अस्मिता और उसके सम्मान को कवि फिर वापस लाना चाहता है।

नई कविता व्यक्त या परोक्ष रूप में अस्तित्ववाद से जुड़ी है। अस्तित्ववाद सार्वभौम और शाश्वत मूल्यों का निषेध करता है। उसका विश्वास है कि मनुष्य कर्म द्वारा अपने लिए मूल्यों का स्वयं निर्माण करने में स्वतंत्र है। साथ ही हर व्यक्ति अपने अस्तित्व के विकास के लिए स्वतंत्र है। वह अपना स्वयं भाग्य विधाता है। धर्म या ईश्वर के नाम पर किसी प्रकार के सार्वभौम नियमों का पालन करने के लिए वह विवश नहीं है। सभी नैतिक और अध्यात्मिक मूल्य वैयक्तिक स्वतंत्रता का अपहरण करते हैं।

अस्तित्ववादी दर्शन दुःख, विषाद और पीड़ा जीवन में काम्य समझता है। दुःख जीवन की विवशता नहीं, उपलब्धि है। दुःख में अंतरिक स्फूर्ति का जागरण होता है, जिससे मानव निर्द्वंद्व होकर उत्साहपूर्वक आगे बढ़ता है। पीड़ा ही अस्तित्व का बोध कराती है।

परंपराएँ और मर्यादाएँ भी मनुष्य को परतंत्र बनाती है। इसलिए इनको तोड़ना मानव की स्वतंत्रता के लिए आवश्यक है। नया कवि अस्तित्ववादी दर्शन के क्षणवाद को मानता है। किसी स्थायी सुख या शांति की कामना नहीं करताः इसका काम्य है– क्षणविशेष का मुक्त भोग। जीवन के कुछ क्षण उतने स्फीत होते हैं, कि युग-के-युग उसपर निछावर किए जा सकते हैं। क्षण के उस महत्वांकन से मानव बोध व्यापक और विविध बना है। यूरोप के साहित्य में मृत्यु के साक्षात्कार के क्षण का वर्णन अधिक है। सत्य के साक्षात्कार का क्षण भी महान है।

सत्य किसी महामानव, महा घटना या सिद्धांत में निहित नहीं रहता। यह क्षण–क्षण में बिखरा है। इन खंडों को एकत्र और संयोजित करने से ही सत्य का वास्तविक रूप खड़ा होता है। इसलिए "महा" के स्थान पर "लघु" की स्थापना नई कविता करती है। लघु मानव की प्रतिष्ठा उसकी एक उपलब्धि है।

नई कविता में वेदना, विषाद, संत्रास, कुंठा, अनास्था, निराशा, पलायन, बौद्धिकता और वह सब कुछ है, जो मानव के अनुभव में आता है। नई कविता का यही जीवन दर्शन है।

नई कविता का सौंदर्य बोध परिवेशगत है। परिवेश यथार्थ से ओतप्रोत है। सौंदर्य के शुभ और अशुभ दोनों ही पक्ष अपने अपने स्थान पर हैं। सुरूप और कुरूप के बीच एक अनिवार्य संबंध है। सौंदर्य जीवन की वास्तविकता से जुड़ा हुआ है। कवि असुंदर से पलायन नहीं करता, वह असुंदर को सुंदर की सापेक्षता में रख देता है।

जब एक नया जीवन–बोध आता है, तो प्रेषणीयता की समस्या को वह अपने साथ लाता है। इसके लिए एक नए मुहावरे और नयी अभिरुचि की आवश्यकता होती है, जिसके विकास में देर लगती है। इसलिए बहुत समय तक प्रेषण–विधि दुरूह रहती है। नई कविता की भाषा, उसका प्रतिक विधान सबकुछ अनगढ़ और खुरदरा लगता है। पर यह स्वाभाविक है।

इस धारा के प्रमुख कवि ये माने जा सकेत हैं– गिरिजाकुमार माथुर, धर्मवीर भारती, विजय देवनारायण साही, कुँवर नारायण, भवानी प्रसाद मिश्र, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना आदि।

अकविताः एक आंदोलन

"अकविता" का आंदोलन सन् 1960 के बाद का है। हर पीढ़ी अपने को साहसी, जागरूक और सचेतन मानती है। अपने से पीछे की पीढ़ी को नवोदित पीढ़ियां, रोमानी, असमर्थ और सपुंसक कह देती है। जब सन् 1960 में "नयी कविता" की कब्र खोद दी गई तब साठोत्तरी पीढ़ी अपनी पहचान कराने लगी। सन् १९६५ के बाद एक और पीढ़ी सिर उठाने लगी।

साटोत्तरी पीढ़ियों को विद्रोही पीढ़ी, भूखी पीढ़ी, यु कृद्ध के नाम से पुकारा जाता है। इनका दावा है कि ये वर्तमान जीवन के सबसे अधिक निकट हैं। ये पूर्ण परंपराओं और मान्यताओं को

BRAOU

नकारती हैं। इनका स्वर अस्वीकृति का ही स्वर है। "नयी कविता" वालों के प्रति उनका कहना है कि उसकी प्रतिभा-बासी पड़ गई हैः उनकी शक्ति चुक गई हैः वे केवल अपने को दोहरा रहे हैं। वे जीवन से दूर केवल कॉफ़ी हाउसों की चर्चा तक सीमित हो गये हैं। अकवि की घोषणा का स्वरूप ऐसा हो गया हैः साठोत्तर कवि परंपरागत रूढ़ियों तथा संस्कारों के प्रति विक्षुब्ध है। उसकी संवेदना परंपरा से मुक्त होकर नवसृजन के व्यापार में लगी है। आज का कवि परंपराओं को नकार कर अपना संपूर्ण और पृथक मार्ग को खोजने में रत है।

इस नये विकास में सौंदर्यबोध परिवर्तित हुआ है। श्याम परमार के शब्दों में साठोत्तर कवि वह सब कुछ देखना-दिखाना चाहता है जो अनावृत है, कुरूप है और नये संबंधों की भूमिका पर खड़ा है। पुरानी मर्यादा और नैतिकता की परिधियाँ टूट गई हैं। श्लील-अश्लील का भेद निरर्थक माना जाने लगा है। असुंदर की मर्मानुभूति को सौंदर्यबोध में लाया गया है। छंद का आरोप समाप्त हो गयो है।

यह सब क्रांति और विद्रोह के नाम पर हुआ है। यथार्थ और अतियथार्थ के नाम पर अश्लील और अरुचिकर गढ़ा जा रहा है। अश्लील की व्यंजना में कवि अवश्य ही साहसी हुआ है। उत्तेजित और अमर्यादित भावनाएं विकृति की ओर जा रही हैं। वैसे, सभी कविताएँ ऐसी ही नहीं हैं। क्रांति और आक्रोशपूर्ण विद्रोह की कविताएँ भी लिखी गई हैं। भदेस और कुरूप को साहसिकता के नाम पर अधिक लाया गया है। कहा यह जाता है कि नग्न, अनावृत सौंदर्य के माध्यम से सौंदर्य की अछूती, आंतरिक ऊंचाइयों का प्रस्तुतीकरण किया जा रहा है।

अकविता या अकहानी परिस्थितियों से वैचारिक साक्षात्कार न कर पाई। परिस्थितियों का साक्षात्कार निजी दायरे का साक्षात्कार बन कर रह गया। इसकी एक परिणति अकविता या अकहानी के नाम प्रचलित उन ढेर सारी अनुभववादी या केवल संवेदनावादी रचनाओं के रूप में हुई है जिनका रचनाकार की चेतना से अथवा उनकी अंतर्वर्ती वैचारिक भूमिका से कोई संबंध नहीं होता। दूसरे छोर पर ठीक इसके विपरीत वे रचनाएँ हैं जिसमें रचनाकार के निजी मंतव्य, विचार और प्रमुख होते हैं।

समसामयिक हिन्दी कविता में आधुनिकता बोध परिस्थितियों पर आक्रोश-व्यंग, नवमानववाद, बौद्धिक जगरूक चेतना, लोकोन्मुख सामाजिक दृष्टि आदि रूपों में प्रकट हो रहा है।

BRAOU

उपन्यासः

युग के नये यथार्थ और प्रश्नों को विविध भूमिकाएँ हिन्दी उपन्यासों ने दी है। उपन्यासों में विभिन्न प्रवृत्तियां सक्रिय हैं। एक ओर व्यक्तिवाद की विघटन शील प्रवृत्ति है। यह जीवन के प्रति एक अनास्था की दृष्टि रखती है। कई उपन्यासकारों ने अपने आत्मपरक उपन्यासों में व्यक्ति की इस प्रवृत्ति को जीवन मूल्य की गरिमा दी है। इनके पात्र समाज में नहीं, अपने आप में लीन हैं, उनकी समस्याओं का संबंध उनका व्यक्तिगत कुंठाओं और नकारात्मक विक्षोभ से है। इन पात्रों में कोई सामाजिक दायित्व-बोध नहीं है। "शेखर" की परंपरा में आनेवाले अज्ञेय के आत्मपरक उपन्यास- "नदी के द्वीप" में हैं। पात्र अधिकांश में असामान्य हैं। सभी पात्र समाज की स्वस्थ परंपराओं को अस्वीकार कर अपनी विकृत प्रवृत्तियों को जीवन मूल्य समझते हैं। "अपने-अपने अजनबी" में मृत्युवादी जीवन दर्शन है। अन्य कुछ लेखक भी इसी प्रकार एक विवशजीवन को चित्रित करते हैं, जो परिस्थितियों के सबब में मृत्यु की ओर कहा जा रहा है।

कुछ उपन्यासों में व्यक्ति और समाज का परस्पर संतुलन और सामंजस्य ही दिखलाया गया है। सामाजिक संबंधों को एक निश्चित दिशा में विकसित दिखलाया गया है। अमृतलाल नागर का "बूंद और समुद्र" इसी प्रकार का उपन्यास है।

यशपाल का "झूठा सच" विभाजन से उत्पन्न परिस्थितियों और उनके प्रभावों को उजागर करता है। परिवर्तन की प्रकृति को आंकता हुआ यह उपन्यास समग्र सामाजिक यथार्थ का साक्षात्कार कराता है। शरणार्थी की समस्या से लेकर बेकरी, विषमता जैसी समस्याओं तक का इसमें ताना-बाना है।

उपर्युक्त उपन्यासों में शहरी जीवन का यथार्थ सजीव हुआ है। नागार्जुन (बाबा बटेसरनाथ), नई पौध, फणीश्वरनाथ "रेणु" (मैला आंचल, परती परिकथा) तथा भैरवप्रसाद गुप्त (गंगा मैया, सत्ती मैया का चौरा) ने स्वतंत्रता के बाद ग्रामीण जनता द्वारा अपने आर्थिक और सांस्कृतिक पिछड़ेपन से मुक्त होने की कहानी कही है। स्वतंत्र्योत्तर भारत में किसान भी एक युगयुगाती हुई नई चेतना का अनुभव कर रही है। उसमें भी नव-संस्कार की लालसा है। रेणु के उपन्यासों में ग्रामीण जीवन का दुहरा संघर्ष चित्रित है। किसान देश के विकास-कार्य में भागीदार बनने के लिए बाधक तत्वों से संघर्ष कर रही है, दूसरी ओर रूढियों से उसे संघर्ष करना पड़ रहा है।

जमींदारी प्रथा का टूटना और देशी रियासतों का विलयीकरण ये दो बहुत ही महत्वपूर्ण घटनाएं हैं। इन्होंने स्वातंत्र्योत्तर ग्राम जीवन को एक मुक्ति का वातावरण दिया है। सामंती शोषण से पिसी हुई जनता नए सिरे से जीने की स्थिति में आयी है। इस नये यथार्थ का भी थोड़ा बहुत चित्रण उपन्यासों में हुआ है। रंगेय राघव के उपन्यास "कब तक पुकारू" में रियासत की सामंती व्यवस्था के नीचे सदियों से दबी-पिछड़ी तथा अपराधी समझी जानेवाली जाति "करवट" के मुक्ति कामी संघर्ष की कथा है।

निम्न मध्य वर्गीय स्थिति बहुत ही विडंबना-पूर्ण हो गई है। इसका जीवन अंतविरोधों और विसंगतियों से भर गया है। गिरधर गोपाल के उपन्यास "चांदनी का खंडहर" में एक निम्न मध्य वर्गीय परिवार की ऊंचा उठने की महत्वाकांक्षा से उत्पन्न अभिशाप-ग्रस्त स्थिति का चित्रण मिलता है। इसी प्रकार की मार्मिक झांकी मोहन राकेश के उपन्यास "अंधेरे बंद कमरे" में मिलती है।

देश के स्वातंत्र्योत्तर वातावरण में राजनीतिक नेता की स्थिति जनजीवन पर एक व्यंग्य बन कर रह गई है। नेता नजाने कितने छद्मों और नकाबों के साथ जनता के खिलाफ़ षडयंत्र कर रहा है। इन नेताओं पर साहित्यिक व्यंग्यों का प्रहार हुआ है। राजेन्द्र यदव के "उखड़े हुए लोग" तथा नागार्जुन के "बलचनमा" तथा "हीरक जयंती" में नेताओं को नंगा किया गया है।

नारी संबंधी नये यथार्थ को उदयशंकर भट्ट ने अपने "सागर, लहरें और मनुष्य" में चित्रित किया है। विष्णु प्रभाकर का उपन्यास "हटके बंधन" वर्तमान समय में दयनीय स्थितियों को सामने लाता है। इसमें दहेज का मुद्दा भी आया है।

आधुनिक हिन्दी उपन्यास की शुरूआत प्रेमचंद से मानी जा सकती है। प्रेमचंद से पहले उपन्यास के नाम पर जो लिखा गया, वह आख्यान साहित्य है। आधुनिक अर्थ में उनको उपन्यास नहीं कहा जा सकता। प्रेमचंद को आधुनिकता, अपनी समकालीनता और अपने समवर्ती सामाजिक जीवन का जीवित बोध था। राष्ट्रीय भावना और सामाजिक चेतना का उनके उपन्यासों में सह अस्तित्व है। उनके उपन्यासों में सामंतवादी समाज-व्यवस्था डगमगाती हुई दिखलाई पड़ती है। किसान सामंती शोषण के प्रति धीरे-धीरे जागरूक हो रहा है। यथार्थ पहले आदर्शोन्मुख मिलता है और धीरे-धीरे स्वतंत्र होकर प्रगति के रूप में प्रतिष्ठित हो जाता है। प्रेमचंद ने देहाती जीवन का खरा और सर्वांगीण चित्र खींचा है। गांव में प्रवेश करते समय प्रेमचंद की प्रगति-चेतना मानववादी हो उठती है। उनका सृजन मानवमात्र को सहानुभूति बांटता चलता है। प्रेमचंद में आदर्शवाद है, पर वह निर्जीव नहीं है। उसमें रचनात्मक संभावनाएं हैं। कुछ समस्याएं मनो-सामाजिक प्रकृति की भी हैं।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि प्रेमचंद के उपन्यासों में वे सभी सूत्र मिल जाते हैं, जिनके आधार पर उपन्यास की आधुनिकता को परि-भाषित किया जाता है। परवर्ती या समवर्ती उमन्यासों में इनका विकास मिलता है। मनोवैज्ञानिक या मनोसामाजिक यथार्थ जैनेन्द्र, इलाचंद्र जोशी, और अज्ञेय के उपन्यासों में नया आकार ग्रहण करता है और आगे के लिए रास्ता बनाता है।

सामाजिक यथार्थ यशपाल, नागार्जुन, रांगेय राघव, भगवतीचरण वर्मा जैसे उपन्यासकारों ने ग्रहण किया। इन्होंने सामाजिक जीवन की विकृतियों और समस्याओं को कभी मार्क्सवादी दृष्टि से और कभी

BRAOU

स्वतंत्र रूप से उजागर किया। अमृतलाला नागर और उपेंद्रनाथ अश्क के उपन्यासों में आधुनिकता बोध मिले-जुले रूप में और बहुआयामी बनकर आया है। अश्क जी ने "गिरती दीवारें" में दो मुद्दों को उठाया है- आर्थिक विषमता और काम संबंधी कुंठा। नागार्जुन ने आंचलिक भूमिका और मार्क्सवादी दृष्टि के साथ निम्न मध्य वर्ग के यथार्थ को जीवंत बनाया है। यह "बलचनमा" में देखा जा सकता है।

प्रेमचंद की ग्राम दृष्टि का विस्तार आंचलिक उपन्यासों में हुआ है। फणीश्वरनाथ रेणु के "मैला अंचल" और "परती परिकथा" में गोवों की ढहती हुई परंपराओं और नयी जीवन दृष्टियों को साथ-साथ चित्रित किया है। ग्रामांचल पर आधारित उपन्यासों में ग्रामीण जीवन के राजनीतिक संदर्भों को भी उभारा गया है। ग्रामीण जीवन के नये उपन्यासकारों में नागार्जुन, शिवप्रसाद सिंह आदि उल्लेखनीय हैं।

समाजोन्मुख उपन्यास चेतना डार्विन, हेगेल और मार्क्स की विच्धारधारा से प्रभावित हुई। इनमें आदर्शवाद का स्थान यथार्थवाद और व्यक्तिवाद का स्थान समाजवाद ले लेते हैं।

उपन्यासों में व्यक्ति-मन और व्यवहार का बोध भी उस्थित हुआ। फ्रायड, जुंग और एडलर जैसे मनोविज्ञानियों की खोडें उपजीव्य बनी। मनोवैज्ञानिक उपन्यासों के लिखनेवालों में पहले तीन नाम आते हैं- जैनेंद्र इलाचंद्रजोशी और अज्ञेय। इन उपन्यासकारों ने मुख्य रूप से वर्जन और यौन कुंठा जैसे सूत्रों को रचनांतरित किया। साथ ही नए नारी-पुरुष संबंध के संदर्भ में नैतिकता के प्रश्नों को मनोवैज्ञानिक दृष्टि से उठाया गया है। मुख्य रूप से पति-पत्नी और प्रेमी का त्रिकोण प्रस्तुत किया गया है। मनोनैतिक भूमिका को भी उभारा गया है। पतन और पाप का मनोविज्ञान भी मूर्तिमान हुआ है।

समसामयिक हिन्दी उपन्यासों में आधुनिकता बोध की अभिव्यक्ति यथार्थोन्मुख है। मनोवैज्ञानिक और सामाजिक धरातलों पर अन्तर्मुखी और बहिर्मुखी सच्चे यथार्थ की पहचान के जो प्रयत्न हो रहे हैं उनमें राजनीतिक भ्रष्टाचारिता, सामाजिक बुराइयों के साथ पारिवारिक विघटन और काम सम्बन्धों की स्वेच्छा चारितार्थ प्रकट हो रही है।

नाटकः

आधुनिक युग से पहले के नाटक घटना प्रधान होते थे। आधुनिक युग के आरंभ में नाटक चरित्र प्रधान होने लगे। आधुनिक नाटक चरित्र की मानसिक प्रक्रिया के विश्लेषण को केंद्र में रख कर चलता है। आज का पाठक या दर्शक नाटक में घटना को देख कर संतुष्ट नहीं होता। वह घटना के भीतरी और बाहरी कारणों को भी जानना चाहता है।

BRAOU

आजकल मंचीय दृष्टि से छोटे-छोटे एकांकी लिखे जाते हैं। अनेक नगरों में रंगमंच भी स्थापित हुए हैं।

जिस प्रकार आधुनिक विचारधारा ने साहित्य को अन्य विधाओं को प्रभावित किया उसी प्रकार हिन्दी नाटक भी नई भंगिमाओं के साथ प्रस्तुत हुए। नाटक की भूमिका में जन साधारण का प्रवेश हुआ। राष्ट्रीयता और राष्ट्रीय विचार नाटकों में आए। सामंतवादी युग के विशिष्ट पात्रों के स्थान पर, निम्न वर्गों के नायक और पात्र प्रतिष्ठित हुए। पुराने प्रेमालाप के स्थान पर जनता की रुचि महत्वपूर्ण हुई। जनता के सम्मुख झुकने के प्रसंग नाटकों में आने लगे। धर्म के अभिप्राय बहुत शिथिल हो गये। ऐतिहासिक और पौराणिक नाटक लिखे तो गए किंतु उनमें भी सामाजिक समस्याओं और द्वंद्वों को संकेतपूर्ण शैली पिरोया गया। नाटककार ऐतिहासिक और पौराणिक कथानक लेकर पात्र-कल्पना का आधुनिकीकरण करने लगे। इनको युग-प्रतीकों के रूप में चित्रित किया जाने लगा।

जन संपर्क का आग्रह बढ़ा। जनसंपर्क के माध्यमों का विकास हुआ। रेडियो की मांग पर "रेडियो नाटक" अथवा ध्वनि नाट्य" का विकास हुआ। जो नाटक दृश्य काव्य के अंतर्गत आते थे, वे अब श्रव्य हो गये। एक नया काव्य-प्रकार सामने आया। इसमें नाटकीय संघर्ष की तीव्रता शब्द-ध्वनि द्वारा ही प्रकट की जाती है।

सन् 1933 में "प्रसाद" जी की अंतिम नाट्यकृति धुर्वस्वामिनी' प्रकाशित हुई। इसके साथ हिन्दी नाटक की एक धारा अपने चरमोत्कर्ष पर पहुंची। दुसरे ही वर्ष सन् 1934 में लक्ष्मीनारायण मिश्र के नाटक "सिंदूर की होली" का प्रकाशन हुआ। इसके साथ एक नई धारा का जन्म हुआ, जिसका बीज धुर्वस्वामिनी में था।

ऐतिहासिक नाटकों के क्षेत्र में प्रसाद के नाटकों का अन्यतम स्थान था। इन नाटकों के माध्यम से प्रसाद जी ने भारतीय इतिहास के गौरवपूर्ण पृष्ठों को राष्ट्रीयता से अभिसिक्त करके प्रस्तुत किया। इस परंपरा में जो नया मोड़ आया, उसका प्रतीक जगदीशचंद्र माथुर का कोणार्क है। यथार्थवादी नाट्य लेखन परंपरा का यह पहला ऐतिहासिक नाटक है। शिल्प प्रयोग की दृष्टि से भी यह नाटक महत्वपूर्ण है। नये और पुराने शिल्प-सूत्रों का इसमें समन्वय है। माथुर का एक और नाटक "शारदीया" है।

ऐतिहासिक नाटक परंपरा में अग्रगामी चरणों के रूप में धर्मवीर भारती के "अंधायुग" तथा मोहन राकेश के "आषाढ़ का एक दिन" की चर्चा की जा सकती है। अंधायुग में नई कविता का नाटकीय अवतरण है। प्रौढ़ काव्य तत्व नाटकीय तत्वों के अनुगामी होकर इसमें विन्यस्त हैं। इसमें वैचारिक और सौद्धांतिक भूमिका प्रौढ़ है, साथ ही रंगमंच की दृष्टि से भी यह सफल कृति है। पहली बार नाट्य लेखन यथार्थवादी नाट्य लेखन की जड़ता से मुक्त हुआ है। साहित्य के श्रेष्ठ तत्वों का इसमें समावेश है।

"आषाढ़ का एकदिन" में पहली बार नाट्य लेखन में यथार्थवादी आंदोलन द्वारा निर्वासित काव्य तत्व प्रतिष्ठित हुआ। इसके बाद मोहन राकेश का दूसरा नाटक "लहरों के राजहंस" प्रकाशित हुआ। यह अश्वघोष के प्रसिद्ध महाकाव्य "सौंदरनंद" पर आधारित ऐतिहासिक नाटक है। सांसारिक सुख और आध्यात्मिक शांति के द्वंद्व में व्यक्ति स्थित है और उसे निर्णय लेना है।

इस प्रकार हिन्दी के ऐतिहासिक नाटकों की परंपरा समृद्ध और आधुनिकहोती गई है। इसको नई युगसापेक्ष भंगिमाएं दी गई हैं।

हिन्दी नाट्य लेखन की दूसरी परंपरा सामाजिक समस्या नाटकों की है। इस धारा में नाटक रचना तो पिछले 40 साल से हो रही है, पर इसकी उपब्धि सामान्य है। यथार्थवादी वातावरण इनमें प्रस्तुत किया गया है। समस्या केंद्र में रहती है। शॉ के नाटकों की प्रेरणा मुख्य रूप से इनमें प्रतिफलित हुई है। नाटककार ने प्रयत्न किया है, सामाजिक कथानकों को तीव्र अंतर्द्वंद्व और घात की स्थितियों में रखकर आपने परिवेश और परिस्थिति से जूझते हुए पात्रों को प्रस्तुत करने का। इस परंपरा में लक्ष्मीनारायण मिश्र और अश्क ने अनेक कृतियां जोड़ी हैं।

स्वतंत्रता के पश्चात् इस परंपरा को डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल ने महत्वपूर्ण योगदान दिया। इनकी "अंधा कुआँ", "मादा कैक्टस" "रातरानी" जैसी कृतियां चर्चित रही हैं।

हिन्दी नाट्य लेखन की एक नई प्रवृत्ति यह है कि इस समय हिन्दी में बहुत बड़ी संख्या में ऐसे नाटक लिखे जा रहे हैं जिनकी रचना केवल प्रदर्शन के लिए की जाती है। रंगशाला में इनका सफल प्रदर्शन होता है। इनमें वस्तुशिथिल रहती है। अंतद्वंद्व की भंगिमाओं की तकनीक पुरानी ही है।

समसामयिक नये नाटकों में आधुनिकता बोध कथ्य और शिल्प दोनों के माध्यम के अभिव्यक्त है। कथ्य के अंतर्गत नवीन मानवीय संवेदना, जीवन की उलझी स्थितियों में मानसिक द्वन्द्व और जीवन की सच्ची यथार्थता की ओर ध्यान गया है। कथ्य के अनुरूप शिल्प काव्य-संवेदनात्मक है या यथार्थोन्मुख।

कहानीः

प्रेमचंद से लेकर स्वातंत्र्योत्तर युग तक हिन्दी कहानी ने एक लंबी यात्रा पार की है। यह युगीन चेतना को उसकी समग्र जटिलताओं के साथ चित्रित करती गई। आरंभ में कहानीकार के सामने ऊंचे

आदर्श और सुस्थिर जीवन-मूल्य थे। आज तक आते आते मानवीय मूल्य अस्त-व्यस्त से हो गये हैं। यद्यपि आज का कहानीकार पूर्व परंपरा को नकारता है, फिर भी उसने जाने-अनजाने अपनी पूर्व पीढ़ियों से कुछ-न-कुछ लिया। पहली पीढ़ी के कहानीकारों में भी आधुनिक बोध था। प्रेमचंद की "कफन", अज्ञेय की "रोज" जैसी कहानियां आधुनिक बोध से अनुप्राणित हैं।

पुराने कहानीकार भी इस युग में लिखते रहे और नये हस्ताक्षर भी सक्रिय हुए। किन्तु इन दोनों के यथार्थ बोध में पर्याप्त अंतर रहा। स्थूल आदर्शवाद और भी निस्तेज हो गया। कहानी की पुरानी परिभाषाएं अधूरी लगने लगीं। आज की कहानी भोगे हुए यथार्थ की संवेदनात्मक अभिव्यक्ति बन गई।

पुरानी पीढ़ी के कथाकार प्रायः किसी आधुनिक समस्या को केंद्र में रखकर कहानी लिखते रहे। जैनेंद्र जी की "प्राण और परिणाम" कहानी में आत्म हत्या की समस्या है। "विज्ञान" कहानी में विशाल युग के नए मूल्यों की विकृतियों पर प्रहार किया गया है। यशपाल भी कहानी को समस्या और समाधान से जोड़नेवाली कड़ी मानते रहे। अज्ञेय मनोवैज्ञानिक कहानियां लिखते रहे। पर वे पूर्ण रूप से समसामयिक नहीं हो पाये।

ग्राम की भूमिका को लेकर चलनेवालें कहानीकारों का एक दौर आया। शिवप्रसाद सिंह की दादी का और काकंडेय की "गुलरा के बाबा" ऐसी ही कहानियां हैं, चाहे ऐसी कहानियों में आदर्शवाद किसी-न-किसी रूप में बना रहा हो, फिर भी इनमें भोगे हुए जीवन की अभिव्यक्तियां हैं और गांव पहली बार अपने पूर्ण और स्वतंत्र रूप में चित्रित हुआ है। इनमें एक रोमैंटिक परिप्रेक्ष भी गुंथा हुआ है। फणीश्वरनाथ रेणु की कहानियों में नवोदित ग्रामीण यथार्थ के साथ-साथ एक चटकीला रोमांटिक स्पर्श भी है। आधुनिक समस्या-संकट या तो इनमें आया नहीं है, या आया है तो अध्यारोपित सा लगता है। इनका ग्रामीण शब्दों और मुहावरों से बना-सजा शिल्प मन को मोह लेता है। एक शब्द में ये कहानियां रोमैंटिक यथार्थ और युगीन संक्रमण की कहानियां है।

युगीन संक्रमण की मनः स्थितियों को लेकर चलनेवाली कहानियां की भी एक प्रवृत्ति बनी। महायुद्ध के पश्चात् जो स्थिति और मनः स्थिति पैदा हुई उससे संवेदनशील व्यक्ति दुखवादी हो उठा। पुराने मूल्य समाप्त हुए किन्तु खालीपन को भरने के लिए नये मूल्यों की सृष्टि नहीं हुई, राजनीतिक शक्तियां भ्रष्ट और व्यावसायिक हो गई। उसने मनुष्य की स्वतंत्रता का अपहरण किया। व्यक्ति और समाज का संबंध टूटने लगा और आदमी अजनबी के समान हो गया। इस बोध को लेकर जो कहानियां लिखी गई उनमें ट्रैजिक जीवन ही अंकित है। इनको तनाव की कहानियां भी कहा जा सकता है। देश के विभाजन की थीम को लेकर भी ऐसी कहानियाँ लिखी गईं। मोहन राकेश की कहानी "मलवे का मालिक" विभाजन की त्रासदी को लेकर ही लिखी गई है। अज्ञेय के "शरणार्थी" संग्रह की कहानियां भी इस संदर्भ में उल्लेखनीय हैं।

आधुनिकता और उसकी मनोसामाजिक यथार्थ को लेकर निर्मलवर्मा ने कहानियां लिखीं। इनका रूपाकार पहली कहानियों से बिलकुल बदला हुआ है। इनकी "लंदन की एक रात" कहानी में जीवन की अनिश्चितता, घुटन, चीख, व्यर्थता बोध, भेदभाव, अजनबीपन के सूत्रों को पिरोया गया है।

इन कहायों के संदर्भ में आस्था का सवाल उठता है। वास्तव में ये कहानियां अनास्था की ही हैं। इनमें जीवन का भटकाव है। कुछ कहानियों में आस्था की तलाश भी है। कहानियों में युग का प्रतिबिंब और प्रतिध्वनि है।

आस्था के अन्वेषण की कहानियां एक और मोड़ उपस्थित करती हैं। कहानीकार हाथ पर हाथ रखे बैठा नहीं रह सकता। उन्हें अपने परिवेश में नये मूल्यों की तलाश करनी है। कमलेश्वर की कहानियां इसी प्रकार की हैं। इनकी "राजनिरवंसिया" में मार्मिक त्रासदी तो है, पर नया मूल्य भी इससे उभरता है। राजेन्द्र यादव की "बिरादरी से बाहर" कहानी नये मूल्यों को स्वाभाविक ढंग से उभारती है।

इधर कुछ कहानियां इस प्रकार की भी लिखी जा रही हैं जिनमें परंपरागत कहानीपन है ही नहीं। ये भागते हुए भूड़ों और क्षणों को पकड़ती हैं। रमेशबख्शी की "लेंस" भागते हुए भूड़ों को पकड़ता है। श्रीकाँत वर्मा की कहानियों को ट्यूमर या ब्रेन ट्यूमर की कहानियां कहा जाता है। इसमें आत्मग्लानि, झल्लाहट, अनिर्णयात्मक स्थिति, बेचैनी और क्षोभ है। आदमी न जी पाता है और न मर पाता है। तात्पर्य यह है कि इनमें समसामयिक मनोदशा को उभारा गया है।

बदले हुए मानवीय संबंध एक सामाजिक यथार्थ बन गया है। पति, पत्नी, प्रेमिका, मां, बाप, संतति सभी के संबंध बहुत बदले हैं। इनको समकालीन कहानीकारों ने खूब चित्रित किया है।

यद्यपि स्वातंत्र्योत्तर कहानीकारों में पूर्ववर्ती कहानीकारों की तरह के बड़े व्यक्तित्व नहीं बन पाये हैं तथापि इन्होंने कहानी की परंपरा को काफ़ी आगे बढ़या है। वस्तु संबंधी नये प्रयोग और नवीन दृष्टियां इनमें मिलती हैं। इनमें युगीन चेतना के विविध आयाम चित्रित हैं। इनमें भोगों हुए जीवन के यथार्थ खिलखिला उठे हैं। इनमें आज का परिवेश सजीवन हुआ है। नये यथार्थ का वहन करने के लिए कहानी ने अपना रूप काफ़ी बदला है। समसामयिक कहानी में आधुनिकता बोध जिस तरह बह आयामी रूप में अभिव्यंजित है, उस तरह अन्य विधाओं में नहीं.

निबंधः

आधुनिकता की एक पहचान निबंध भी है। युरोप के संपर्क से जहां अन्य गद्य विधाएं हिन्दी को मिली वहां निबंध भी मिला। उस समय दो निबंधकार खास तौर से दृष्टि केन्द्र बने। मॉनतेन (1533–1582) तथा बेकन (1561–1626)। ये दोनों क्रमशः फ्रांसीसी और अंग्रेज़ी भावधारा का प्रतिनिधित्व करते हैं। मांतेन के निबंध, वैयक्तिक और विषयी प्रधान हैं और इसके विपरीत बेकन के निबंध नियंत्रित विचार प्रधान, विषय प्रधान और विवेचनात्मक हैं। यदि एक निबंध धारा में फ्रांस की रोमांचक वृत्ति है, तो दूसरी में क्लासिकल वृत्ति का समावेश है। एक में स्वतंत्रता है, तो दूसरी की विशेषता चेतना के संयम में निहित है। एक में "प्रयत्न" का सौंदर्य है, तो दूसरा में मूल्यांकन, सिद्धांत-निर्धारण तथा ठोस निर्दिष्ट विचार का।

निबंध विधा आधुनिक युग की पहचान के रूप में लिया जा सकता है। निस्संदेह वह आधुनिक युग की देन है। निबंध के लिए जिस प्रकार की मनः स्थिति और परिस्थितियों की आवश्यकता होती है, वे आधुनिक युग में सहज ही उपस्थित हो गईं। सन् 1857 के पश्चात् देश में एक नव जागरण आने लगा था। सुधारवाद उस समय के सामाजिक बोध के रूप में प्रकट हुआ। अपनी दयनीय स्थिति का विश्लेषण और दासता से मुक्ति पाने लिए एक बौद्धिक चेतना का विकास होने लगा। साथ ही देश-प्रेम का रागात्मक तत्व भी विकसित हो रहा था। इतिहास की पुनर्व्याख्या आवश्यक हो गई थी। साहित्य को जनता से जोड़ना आवश्यक हो गया। प्रगति और प्रतिक्रिया के बीच संघर्ष छिड़ गया था। इस प्रकार की स्थितियां निबंध के लिए उपर्युक्त होती हैं।

मुद्रण कला, पत्रकारिता तथा व्यावहारिक जीवन भाषा की साहित्य में प्रतिष्ठा, अंग्रेजी निबंध साहित्य से परिचय आदि कुछ कारण हैं जो निबंध विधा के विकास में सहायक हुए। भारतीय आधुनिक काल की सबसे बड़ी आवश्यकता थी एक माध्यम की, जो लेखक और पाठक को पास ला सके। देश की प्रबुद्ध जनता परतंत्रता के प्रति असहिष्णु और विद्रोही बनती जा रही थी। अब एक व्यापक जनमत की आवश्यकता थी। इसके लिए नवचेतना को जनव्यापी बनाना था। कभी व्यंग्य से, कभी प्रीति से लेखक पाठक को अपनी सारी दुर्बलताओं और दुःख से परिचित कराकर, बौद्धिक उत्तेजना देना चाहता था – निराशा नहीं। इस परिस्थिति में निबंध की वस्तु और शैली का विकास होता गया।

अंग्रेज़ी निबंध साहित्य के आरंभिक प्रभाव ने भावी विकास के लिए दिशा प्रदान की। भारतेंदु युगीन निबंध पर अंग्रेज़ी का पर्याप्त प्रभाव दिखलाई पड़ता है। भारतेन्दु युग में मुख्य रूप से व्यंग्यपरक निबंध लिखे गये। शिक्षा, संदेश और प्रेरणाओं के लिए यही शैली उपर्युक्त थी। इस शैली में चित्रित यथार्थ सोचने, समझने और कुछ कर-गुज़रने की उत्तेजना दे सका। व्यंग्य और विनोद के सहारे पाठक

BRAOU

तीखे सत्यों और कडवे यथार्थ को गले उतार सका। सामयिक शासन की दुर्नीति, नौकरशाही की धांधली और अपने समाज की प्रतिगामी प्रवृत्तियों को निबंधकार व्यंग्य और अन्योक्तियों के माध्यम से उजागर कर रहा था। अतीत के गौरवचित्र भी निबंध में उतारे गये। कुछ गंभीर लेख भी लिखे गये।

वस्तु की दृष्टि से सुधारवाद, नवजागरण और राष्ट्रीयता की भावनाएं इन निबंधों में भर उठीं। शैली की दृष्टि से व्यंग्य-विनोद के तत्व महत्वपूर्ण रहे। बौद्धिकता और भावस्पर्श दोनों का सह अस्तित्व इनमें मिलता है। प्रजातंत्रीय शील ने इस विधा को नैतिक सहारा दिया। पत्र-पत्रिकाओं ने इस को विस्तार दिया और लोकप्रिय बनाया। इस युग के प्रमुख निबंधकार ये थे: भारतेन्दु, बालकृष्ण भट्ट, बालमुकुंद गुप्त, प्रताप नारायण मिश्र आदि। शैली का पर्याप्त वैविध्य उनके निबंधों में मिलता है।

द्विवेदी युग में निबंध की ये सभी शैलियाँ प्रचलित रहीं। केवल सभी में एक गंभीरता आई- वस्तुचुनाव में भी और विवेचन में भी। गोरवपूर्ण अतीत की चीज़ों का अवतरम किया गया, पर इस में अध्ययन की गंभीरता अधिक आ गई। उस समय के नेताओं पर व्यंग्य पद्मसिंह शर्मा के निबंधों में मिलता है। विदेशी राजनीति और राजनीतिक व्यवस्थाओं पर भी निबंध लिखे गये जिनसे राजनीतिक चेतना जगी।

सामाजिक चेतना पर भी निबंध लिखे गये। समाज सुधार और समाज सेवा से संबंधित निबंध विशेष रूप से लिखे गये। भारतेन्दु कालिन समाज सुधार की चेतना भी अधिक बौद्धिक और तर्कपूर्ण हो गई है। पुराने सामाजिक आदर्शों को वैज्ञानिक दृष्टि से परखा जाने लगा। यदि संभव हुआ तो उनका आधुनिकीकरण किया गया। जो समाजसुधार की भावना मध्य वर्ग तक सीमित थी, वह अब निम्न वर्ग तक जाने लगी। उदाहरण के लिए मुकुट धर पांडये के समाज सुधार के लेख को देखा जा सकता है। नारी शिक्षा और नारी आंदोलन से संबंधित अन्य पक्षों पर अधिक निबंध लिखे गये। साहित्य समीक्षा तथा शोध पर गंभीर और पांडित्यपूर्ण निबंध लिखे गये।

निबंध साधारण पाठक के लिए भी लिखे गए और विज्ञ पाठक के लिए भी। सरदार पूर्ण सिंह शैलीकार के रूप में द्विवेदी युग के सर्वश्रेष्ठ निबंधकार माने गये। वैसे इस विधा का शैली विषयवस्तु और वैविध्य की दृष्टि से बहुत अधिक विकास हुआ। विचारात्मक निबंधों की धारा अधिक समृद्ध हुई।

आगे का युग शुक्ल युग या प्रसाद युग कहा जा सकता है। शुक्ल जी ने समीक्षात्मक और साहित्यिक निबंधों की परंपरा को नये रूप में ढाला। दूसरी ओर भावात्मक लेखों की धारा में वियोगी हरि, माखनलाल चतुर्वेदी जैसे लेखकों पर ध्यान केन्द्रित होता है। चतुर्वेदी जी ने एक आवेदन पूर्ण शैली की परंपरा बनाई। भाषा बहुत ही सशक्त है। विचारात्मक लेखों का चरम विकास शुक्ल जी की "चिंतामणि" के निबंधों में स्पष्ट देखा जा सकता है। गाँधी वादी प्रेरणा इनमें प्रतिफलित हुई है।

प्रसादोत्तर युग में अंतर्राष्ट्रीय वातावरण पैदा हुआ। संसार युद्ध की आशंका और विभीषिका से भर गया। पुनरुत्थानवादी प्रवृत्ति को विराम मिला। नये और आधुनिक विषयों पर निबंध अधिक लिखे गये। आधुनिक युग के प्रगति और प्रयोग के चरण आगे बढ़े। राजनीतिक चेतना अधिक उद्‌बुद्ध हुई। हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इस हलचल के बीच मानववादी स्वर को ऊँचा किया। इनमें संस्कृति और अतीत का एक स्तरीय बोध मिलता है। रामवृक्ष बेनीपुरी भावात्मक निबंधों की परंपरा को बढ़या। अब प्रवृत्ति गहन अध्ययन और शोधपरक होती जा रही है।

निबंधों के क्षेत्र में नवीन विकास विद्यानिवास मिश्र, हरिशंकर परसाई, गोपाल राय आदि के द्वारा संपन्न हुआ। निबंधों का कथ्य पहले की परंपरा में राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक है। लेकिन भाव-विचारों का प्रतिपादन परिवर्तित परिवेश में आधुनिकता बोध के साथ है। जीवन के हर क्षेत्र में हासोन्मुखता और भ्रष्टाचारिता के कारण उनके निबंधों में व्यंग्य की प्रवृत्ति प्रधान हो गई। चिंतन का धरातल अत्यंत सूक्ष्म और नये भावबोध को व्यंजित करने वाला है। साथ ही उनके जीवन में भारतीय संस्कृति के साथ एक आत्मीयता का संबंध भी परिलिखित होता है विशेषतः मिश्र जी के निबंधों

BRAOU

में इन नये निबंधों में आधुनिक परिवेश के विरोध के साथ स्वस्थ भारतीय जीवन और परंपरा के अनुरूप सांस्कृतिक चेतना के विकास का आग्रह मिलता है। सामसामयिक निबन्धों में आधुनिक भावबोध अत्यंत सूक्ष्म, संवेदनाशील, मानवीय और सांस्कृतिक है।

नई समीक्षाः

नई समीक्षा से पहले तीन धाराएँ समीक्षा के क्षेत्र में मिलती हैं, शुक्ल समीक्षा, छायावादी समीक्षा तथा प्रगतीवादी समीक्षा। शुक्ल जी से पहले समीक्षात्मक टिप्पणियाँ मिलती हैं। शुक्ल जी ने मूल रूप में रसवादी समीक्षा की प्रतिष्ठा की। उन्होंने पांश्चत्य समीक्षा सिद्धांत और मनोविज्ञान की दृष्टि से इसका नव-संस्कार किया। साथ ही काव्य के स्थायी भावों के ऊपर निबंध लिखकर उनके साथ रसवादी समीक्षा को जोड़ने का प्रयास भी किया। सामाजिकता की पुष्टि लोकमंगल के सूत्र से हुई। चित्र या बिंब के रूप में कथ्या को प्रस्तुत करने की बात भी उन्होने कही। इस रूप में आने पर काव्यार्थ ग्राहण चित्तवृत्ति को अधिक उद्रिक्त करता है। एक प्रकार से शुक्ल जी को नव्य शास्त्रवादी कहा जा सकता है।

इसके बाद स्वच्छंदतावादी समीक्षा का उदय हुआ। इस पर पाश्चात्य रोमांसवाद का प्रभाव रहा और इस धारा के तत्वों का भारतीय तत्वों के आधार पर पुनरव्याख्या प्रसाद तथा महादेवी ने किया और रविंद्रनाथ टैगोर ने भी किया। मनोविज्ञान की सामग्री के आधार पर इस समीक्षा को पुष्ट किया गया। इसमें भाव, ललित और संवेदनशील की अभिव्यक्ति को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ। प्रबंध की अपेक्षा गीत की ओर गति रही। सृजन प्रक्रिया को मूर्त और बाह्य से अमुर्त और आंतरिक की ओर ले जाने की प्रवृत्ति मानी गई। अभिव्यंजना में चित्र और नाद के तत्वों को समन्वित किया गया।

कई दृष्टियों से छायावादी समीक्षा शुक्ल जी से संबंधित मानी जा सकती है। पहले तो स्वच्छंदतावादी समीक्षा ने रसवादी समीक्षा के प्रति कोई उग्र प्रतिक्रिया नहीं की। किन्तु शुक्ल जी की भांति रस के विकास की योजना को भी स्वीकृत करके यह नहीं चली। स्वच्छंदतावादी कवि यह राग अवश्य करता था- मनोविज्ञान से जुड़ने का और मनोवैज्ञानिक समीक्षक होने का दावा। इसीलिए रस सिद्धांत के मनोवैज्ञानिक पुनरव्याख्या की संभावना भी पलती रही। संभवतः ससवादी समीक्षा के द्वारा इस काव्य का मूल्यांकन हो सकता है। छायावादी काव्य के नगेंद्र और नंद दुलारे वाजपेयी जैसे समीक्षक रसवादी ही थे। शुक्ल जी के कुछ कथन स्वच्छंदतावाद के समीप पड़ते हैं। अर्थ ग्रहण के स्थान पर बिंब ग्रहण के सिद्धांत की बात दोनों में समान है। सृजन का तात्पर्य है अमूर्त या अगोचर को गोचर बिंबों में उतरना। इस प्रक्रिया में लक्षणा शक्ति, प्रतीकार्थ की शक्ति और बिंब प्रयोग की आवश्यकता होती है। कल्पना शक्ति इस प्रक्रिया का सबसे प्रधान तत्व है। इस प्रकार भाव पर्यवसायिनी चारुता और गोचर बिंब विधान का महत्व बढ़ा। सुक्लजी ने युग के इस करवट को पहचाना और छायावाद को उन्होंने एक विशिष्ट शैली के रूप में देखा। इसका अर्थ यह भी हुआ कि शुक्ल जी छायावादी शैली के प्रति विरोध भावना नहीं रखते थे। पर, कथ्य की सामाजिक उदात्तता के अभाव के साथ उनका समझौता नहीं था। यह लोकहित के सिद्धांत के विरुद्ध पड़ता है।

"लेकमंगल" का सूत्र कुछ-कुछ समाजवादी समीक्षा से जुड़ता है। समाजवादी समीक्षा के दो स्तंभ हैं। वर्ग संघर्षपरक यथार्थवादी सामाजिक वस्तु के आधार पर कृति का मूल्यांकन तथा सोद्देश्य लेखन। चाहे "लोक मंगल" किसी पारिभाषिक वस्तु की ओर संकेत नहीं करता है, किन्तु वस्तु की लोकपरकता का संकेत इसमें है। सोद्देश्य लेखन दोनों को ही स्वीकृत है।

शुक्ल जी उन समीक्षकों में से हैं, जिन्होंने किसी भी वाद से मुक्त रहते हुए, मात्र भावात्मक और प्रभावात्मक निष्कर्षों से हिन्दी समीक्षा को मुक्त किया। कवि और कृति की समाज-एतिहासिक संवेदना को उजागर किया था। कृति के आधार पर उन्होंने उस के समाजशास्त्रीय पुनराख्यान का मार्ग खोला। यें आलोचक अमार्क्सीय होते हुए भी साहित्य से सामाजिक निष्कर्ष निकाल रहे थे। "हंस" और "जागरण" जैसी पत्रिकाओं ने अमार्क्सीय समाजोन्मुख समीक्षाओं को प्रोत्साहन दिया। पीछे इस समीक्षा ने प्रगतिवादी समीक्षा का रूप ले लिया। शुक्ल जी के अनुसार समीक्षा किसी आधार पर हो, पर

साहित्य की साहित्यिकता की सुरक्षा होती रहे। डॉ. राम विलास शर्मा ने भी कहा कि प्रगतिशील साहित्य तभी प्रगतिशील है, जब साहित्य भी हो। यह स्वर शुक्ल जी से जुड़ जाता है।

प्रगतिवादी समीक्षा मार्क्स के जीवन दर्शन को लेकर चली। मार्क्स के स्फुट विचारों की व्याख्यात्मक विस्तृति लुकाचने की। साहित्य के कथ्य की सामाजिक और यथार्थवादी प्रकृति पर लूकाचने विशेष बल दिया। साहित्य का बाहरी या वस्तुवादी आधार ही आपकी दृष्टि में सबसे प्रमुख है। इतिहासवादी दृष्टि को इन्होंने इस प्रकार स्पष्ट किया: ऐतिहासिक इनक्वलाब वर्ग संघर्ष ही है। कृति से समाज और समाज से कृति की ओर चलने का सिद्धांत साहित्य के समाजशास्त्र का मूलाधार है। मनुष्य का सामाजिक अस्तित्व ही उसके सौंदर्यमूलक व्यापारों को निधारित करता है। कलाकार जिस सौंदर्य की सृष्टि करता है, वह समाज निरपेक्ष किसी व्यक्तिगत कल्पना की उपज नहीं हैं, सामाजिक जीवन और सामाजिक विकास के साथ उसका घनिष्ट संबंध है। नई समीक्षा ने प्रगतिवादी समीक्षा के प्रति भी प्रतिक्रिया की।

शुक्ल जी की रसवादी समीक्षा के प्रति नई समीक्षा ने प्रतिक्रिया की। नई समीक्षा ने रस सिद्धांत की सार्वभौमिकता और शवश्वतता को नकारा। भारतीय काव्य शास्त्र से नई समीक्षा ने अपना संबंध तोड़ लिया। मान्यता यह रही कि विश्व चेतना तेजी से बदल रही है। विचार तत्व सार्वभौम रूप लेता जा रहा है। विश्व की रचना और उसकी व्यवस्था से संबंधित इतने मौलिक रूप सामने आते जा रहे हैं कि आधुनिक समीक्षक इनसे कट कर, पिछड़ा हुआ ही कहा जायेगा। साहित्य इतने विविध रूपों में विकास कर रहा है कि नए समीक्षा सिद्धांतों के बिना उनके साथ न्याय करना संभव नहीं है। नए समीक्षक की एक परिभाषा ही बन गई कि नया समीक्षक वह है जो रस सिद्धांत की सार्वभौमिकता को नकारता है।

हिन्दी में "नई समीक्षा" प्रयोगवाद के साथ प्रारंभ होती है। इसका सरोकार समकालीन साहित्य से है। इसके प्रवर्तक के रूप में अज्ञेय का नाम ही उभरता है। आरंभ में अज्ञेय का काव्य छायावाद से प्रभावित रहा। पीछे ये प्रगतिवाद के भी प्रशंसक रहे। उसके प्रति उस समय उनके मनमें विरोध भावना नहीं थी। अक्षेय पर फ्रायड का प्रभाव भी रहा। ये अंतश्चेतनवादी प्रवृत्तियों के समर्थक रहे। नई समीक्षा का उदय प्रयोगवादी काव्य धारा के विश्लेषण और मूल्यांकन के लिए हुआ।

अज्ञेय ने साम्यवादी दर्शन को नकारा। उनकी दृष्टि में यह पूर्ण जीवन दर्शन नहीं है। फ्रायड, डार्विन और आइन्स्टीन की देन का वे इसके समान ही मूल्यांकन करते हैं। ये ही प्रयोगवाद और नई समीक्षा के आधार बने। नई समीक्षा का दर्शन व्यक्तिपरक है। इस समीक्षा का विरोध पुरुत्थानवादी रस–समीक्षा से भी है। अस्तित्ववादी दर्शन से भी वे प्रभावित है। नई समीक्षा के क्षेत्र में लक्ष्मीकांत वर्मा प्रमुख हैं। इनकी पुस्तक है– "नयी कविता के प्रतिमान"।

इस समीक्षा ने "लघु मानव" और "क्षणवाद" की स्थापना की। इस प्रतिष्ठा ने क्लासिकल साहित्य के महा मानव को धराशायी कर दिया। आज का मानव चाहे बड़ा न हो, किन्तु वह अपने प्रति जागरूक है। लघु परिवेश में सांस लेता हुआ लघु मानव के छोटे–से–छोटे क्षण की अनुभूति और उपलब्धि का अपना महत्व है। यह एक नया भाव बोध है। लघु मानव के साथ कुरुपता, कटुता, वर्जना, कुंठा, अहं, भटकाव, संत्रस– यह सब कुछ भी है। आधुनिकता, बौद्धिकता व्यक्तिस्वातंत्र्य को भी इस समीक्षा ने महत्व प्रदान किया है। शिल्प में ये नये छंद के समर्थक हैं। प्रयोगवाद काव्य के अभिव्यंजन पक्ष के नये संस्कार में विश्वास करता है। इसीलिए कभी तो प्रयोगवादी आंदोलन एक शिल्पगत आंदोलन जैसा ही लगता है। कहा जाता है कि इस समीक्षा के पास कोई अपना दर्शन नहीं है। पश्चिम की नई समीक्षा दृष्टि से नई समीक्षा अभिभूत है। अति वैयक्तिकता इस समीक्षा का अवगुण है।

प्रयोगवाद के बाद भी काव्य की कई नई प्रवृत्तियों और चिंतन के क्षेत्र में नये विचारों को लेकर मूल्यांकन के नये प्रतिमान ढूंडे जा रहे हैं। आजकल आलोचना के क्षेत्र में नवमानववादी, रूपवादी,

सौंदर्यशास्त्रीय, समाजशास्त्रीय, शैलीतात्विक, वैज्ञानिक विकासवादी, वास्तुनिष्ठ-सामाजिक मार्क्सवादी अनेक दृष्टियाँ सामने आ रही हैं। कुछ परम्परा से कुछ जुड़े हुए हैं और अधिकांश उससे कहे, हुए हैं। नई आलोचना की दिशाएँ प्रजातंत्रीय मानवीय संवेदना, मार्क्सवादी सामाजिक चेतना और वैज्ञानिक दृष्टि से प्रभावित और निर्धारित हैं। इन्हीं वैचारिक बिन्दुओं से सच्चें आधुनिकता बोध का विकास होता है। साहित्य को आधुनिकता की ओर गतिशील बनाना आलोचना का एक लक्ष्य है।

4.5 सारांश

जीवन और साहित्य में आधुनिकता और आधुनिकता बोध जटिल प्रश्न हैं। सामीक्षाओं ने अपने-अपने ढंग से उनकी व्यख्या की। इतना अवश्य है कि प्रत्येक युग का साहित्यकार अपने युग के परिवेश से प्रभावित होकर जीवन के यथार्थ को पकड़ने का प्रयत्न करता है। युग के बदल जाने पर परिवेश और परिवेशगत यथार्थ का स्वरूप भी परिवर्तित होता है। आधुनिक हिन्दी साहित्य का अवलोकन करते हैं, तो भारतेंदु युग से लेकर आज तक आधुनिकता बोध बदलता गया है। साहित्यकारों ने जीवन की यथार्थता को अपने समय और वेयक्तिक धरातलों पर समझने और परखने का प्रयत्न किया है। स्वतंत्रता-प्रप्ति तक जीवन और साहित्य का परिवेश भारतीय बना रहा। , आधुनिक के ग्रहण के बावजूद जीवन और साहित्य भारतीय परंपराओं से कटे नहीं ते। धीरे-धीरे भारतीय जीवन और साहित्य पर पाश्चात्य चिंतन का प्रभाव पढ़ता गया और दोनों भारतीय परंपरा से विच्छिन्न होते गये। इस कार्य में व्यक्तिवाद, मनोविज्ञान, मार्क्सवाद, विज्ञान, औद्योगीकरण और अस्तित्ववाद आदि नवीन दर्शनों की महत्वपूर्ण भूमिका रही। समकालीन साहित्य में आधुनिकता बोध की आधारभूमि इन्ही से प्राप्त हुई। सहज ही प्रश्न उठती है कि आधुनिकता बोध के नाम पर भारतीयता और भारतीय परंपराओं को छोड़ देना कहां तक उचित है?

4.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

अभ्यासार्थ प्रस्न (प्रश्नो के उत्तरर उप शीर्षकों में देखिए। साहित्य में आधुनिकता बोध का विश्लेषण परिवेश और नवीन चिंतन के संदर्भ में होना चाहिए।)

4.6.1 'अ' श्रेणी के प्रश्न

निम्न लिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 250 शब्दों में दीजिए:

1. आधुनिकता के संबंध में विविध दृष्टिकोणों की व्याख्या कीजिए।
2. साहित्य में आधुनिक दृष्टि के ग्रहण पर विचार कीजिए।
3. समसामयिक कविता की प्रवृत्तियों में आधनिकता बोध का निरूपण कीजिए।
4. "नई कहानी" में आधुनिकता बोध की दिशाओं को स्पष्ट कीजिए।
5. हिन्दी साहित्य में आधुनिकता के स्वस्थ-अस्वस्थ पहलुओं का उल्लेख कीजिए।

4.6.2 'ब' श्रेणी के प्रश्न

निम्न लिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 125 शब्दों में दीजिए:

1. भारतीय जीवन और परिवेश के संदर्भ में आधुनिकता पर विचार कीजिए।
2. समसामयिक साहित्य पर पाश्चात्य चिंतन का क्या प्रभाव पड़ा और उससे किस तरह के आधुनिकता बोध का विकास हुआ?
3. नई औपन्यासिक प्रवृत्तियों में आधुनिकता की झलक कहां तक मिलती है?
4. नये नाटकों में आधुनिकता बोध पर विचार कीजिए।
5. आलोचना में आधुनिक दृष्टि की व्याख्या कीजिए।

BRAOU

4.8 पठनीय पुस्तकें

1. नईकविता	:	स्वरूप और समस्याएं–जगदीश गुप्त
2. नया हिन्दी काव्य	:	शिवकुमार मिश्र
3. आलोचना के नये प्रतिमान	:	नामवर सिंह
4. नई कविता का आत्म संघर्ष तथा अन्य निबंध	:	मुक्तिबोध
5. आधुनिकता और राष्ट्रीयता	:	राजमन बोरा

BRAOU

इकाई-5: लोक संस्कृति और लोक साहित्य

5.0 विषय प्रवेश
5.1 उद्देश्य
5.2 पाठ परिचय
5.3 मूल पाठ
    5.3.1 लोक संस्कृति
    5.3.2 भारतीय लोक संस्कृति
    5.3.3 लोक संस्कृति-अध्ययन की सामग्री
    5.3.4 हिन्दी क्षेत्र और उसकी संस्कृति
    5.3.5 लोक साहित्य
    5.3.6 भारतीय लोक साहित्य
    5.3.7 लोक साहित्य के प्रकार
    5.3.8 भारतीय लोक साहित्य और साहित्य
5.4 सारांश
5.5 शब्दार्थ
5.6 अभ्यास
    5.6.1 'अ' श्रेणी के प्रश्न
    5.6.2 'ब' श्रेणी के प्रश्न
5.7 नमूने के प्रश्नोत्तर
    5.7.1 'अ' श्रेणी के प्रश्नोत्तर
    5.7.2 'ब' श्रेणी के प्रश्नोत्तर
5.8 पठनीय पुस्तकें

BRAOU

5.1 उद्देश्य

इस पाठ में लोक संस्कृति और लोक साहित्य पर विचार किया गया है। इसके अध्ययन से आप:

- लोक संस्कृति के अध्ययन की सामग्री के विभिन्न स्त्रोतों पर प्रकाश डाल सकेंगे।
- लोक सहित्य के विभिन्न रूपों पर विचार कर सकेंगे।
- लोक साहित्य की भारतीय परंपरा का निरूपण कर सकेंगे।
- हिन्दी कविता पर लोक गीतों के प्रभाव को स्पष्ट कर सकेंगे।
- सभ्य जीवन में अवशिष्ट लोक संस्कृति के तत्वों पर विचार कर सकेंगे।
- लोक संस्कृति और लोक जीवन की प्रमुख विशेषताओं को रेखांकित कर सकेंगे।

5.2 पाठ परिचय

किसी भाषा और साहित्य के बोध के लिए लोक संस्कृति और लोक साहित्य के अध्ययन की भी आवश्यकता होती है। "लोक" शब्द सामान्य जन या अविकसित, असभ्य या अर्द्ध सभ्य जनसमुदाय का वाचक शब्द है। अब लोक संस्कृति और जन से संबंधित साहित्य लोक साहित्य कहलाता है। प्रत्येक देश की लोक संस्कृति और उसका लोक साहित्य होता है। इनकी एक परंपरा होती है और यह परंपरा ऐतिहासिक युग तक ही सीमित नहीं रहती। लोक संस्कृति की सामग्री, इतिहास, पुराण, साहित्य, आदिम जातियों, पुरातत्व आदि के माध्यम से प्राप्त होती है। शिष्ट या उच्च वर्गीय साहित्य

और लोक संस्कृति के बीच आदान-प्रदान भी चलता है। लोक संस्कृति उच्च संस्कृति की सामग्री से समाज में अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाना चाहती है और उच्च संस्कृति लोक संस्कृति के तत्वों से अधिक नवीन, सजीव और जनव्यापी बनती है। इसी प्रकार का आदान-प्रदान साहित्य और लोक साहित्य के बीच भी होता रहता है।

लोक साहित्य के अनेक रूप होते हैं जैसे लोक कथा, लोक गीत, लोकोक्ति, पहेलियां आदि लोक साहित्य के रूप हैं। भारत में लोक साहित्य और उसके रूपों की परंपरा वेदों तक जाती है। वेदों से लेकर आज तक की साहित्य परंपरा लोक साहित्य की सामग्री को ग्रहण करती आई है। हिन्दी के आदिकाल से लेकर आधुनिक साहित्य तक लोक साहित्य के प्रयोग के प्रमाण मिल जाते हैं। सूर, तुलसी, कबीर आदि भक्त एवं संत कवि, बिहारी, मतिराम जैसे रीतिकालीन कवि, भारतेन्दु और मैथिलीशरण गुप्त जैसे आधुनिक कवि और अज्ञेय, नागार्जुन, केदारनाथ जैसे समसामयिक कवियों के काव्य में लोक साहित्य के तत्व मिल जाते हैं। अन्य विधाएं भी लोक साहित्य की सहायता से व्यापक वातावरण की सृष्टि करती हैं।

5.3 मूलपाठ

5.3.1 लोक संस्कृति

"लोक" शब्द के प्रयोग की परंपरा बहुत दीर्घ है। इसका अर्थ भी बहुत व्यापक है। समय-समय पर इसके अर्थ में परिवर्तन भी होता रहा है। वेद में लोक शब्द से उसका बोध होता है जो वेद के अतिरिक्त है। तुलसी ने भी लोक और वेद का साथ-साथ प्रयोग किया है। इससे वेदेतर का भाव तो व्यक्त होता ही है, साथ ही वेद के साथ लोक का अस्तित्व स्वीकार किया गया है। शायद कवि इन दोनों को परस्पर पूरक के रूप में देखता है। "लोक" के प्रति किसी प्रकार की उपेक्षा या अवहेलना का भाव प्रकट नहीं होता।

कालक्रम में यह शब्द और व्यापक अर्थ की व्यंजना करने लगा है। लोक का अर्थ हो जाता है- जन सामान्य। इसे जन सामान्य के अनुभव, अनुभवजन्य ज्ञान, उसके जीवन के नियम और आचार तथा उसकी समस्त अनुभूतियों और अभिव्यक्तियों की व्यंजना होने लगी। शब्द से व्यंजित जन-समुदाय किसी एक देश या काल की सीमाओं में बंधा हुआ नहीं है। यह विश्व मानव का बोधक शब्द है जो एक अनवरत गतिशील चेतना के रूप में प्रतिष्ठित होता है।

लोक शब्द को सुनते ही एक समूह या सामूहिकता का बोध होता है। सामूहिकता व्यक्तिगतनहीं, समष्टिगत होती है। लोक शब्द सामूहिक या समष्टिगत चेतना का बोधक है। जब लोक कल्याण की बात की जाती है तो समस्त जन समुदाय के हित की भावना ही प्रकट होती है।

हिन्दी में "लोक" शब्द अंग्रेज़ी के "फोक" शब्द के पर्याय के रूप में प्रयुक्त होता है। विदेशी विद्वान इस शब्द से जन समुदाय की आदिम स्थिति की व्यंजना मानते हैं। यह उस जन समुदाय की ओर संकेत करता है जो उच्च संस्कृति, शासक वर्ग की विचारधारा या लिखित प्रमाणवाली जातियों से अछूता रहता है। एक विद्वान का कहना है कि "लोक" वह समूह है जिससे नगर की सांस्कृतिक, आर्थिक और शिक्षा मूलक विविधता कम प्रकट होती है। इसमें जीवनगत विविधता, रीति नीति, वार्ता सारे समूह में एक जैसी प्रचलित रहती है। प्रायः यह बात सभी विद्वान मानते है कि लोक शब्द को आदिम, असंस्कृत या अविकसित समूह के लिए प्रयुक्त किया जाता है। किंतु इसके व्यापक अर्थ में राष्ट्र के समूचे जन समुदाय आ जाते हैं। डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी के मतानुसार- "लोक शब्द का अर्थ जनपद या ग्राम्य नहीं है, मगर नगरों और ग्रामों में फैली समस्त जनता है जिसके व्यावहारिक ज्ञान का आधार पोथियां नहीं हैं।"

BRAOU

लोक संस्कृति वह है जिसे साधारण जन ने अपने नीजी स्त्रोतों से गढ़ा है। इसका रूप शास्त्रीय नहीं होता। शास्त्रीय संस्कृति आदर्श संस्कृति है। उसमें मनुष्य के भौतिक जीवन से ऊपर उठे हुए तत्व आते हैं। इन तत्वों में धर्म, आध्यात्मिकता, बौद्धिकता, तर्क आदि आते हैं। यह उच्च वर्गीय संस्कृति है, जिसमें चेतना की सक्रियता अधिक रहती है। भौतिक जीवन गौण होता जाता है। इसके विपरित लोक संस्कृति में भौतिक जीवन से संबंधित सभी इच्छाएं, प्रयास, क्रिया-कलाप, उत्सव, त्यौहार और अनुष्ठान आ जाते हैं। इन्हीं से संबंधित एक लोक दर्शन भी जन्म लेता है। आदिम मानस के इस दर्शन में कार्य-कारण परंपरा का स्पष्ट बोध नहीं रहता है।

लोक संस्कृति में परा-प्राकृतिक तत्व पर विश्वास किया जाता है। इस तत्व में आदिम मानव का विश्वास रहता है। उसको प्रसन्न करने के लिए बलि दी जाती है, नाटक खेले जाते हैं, नृत्य और गायन की योजना चलती है। किंतु इस परा-प्राकृतिक शक्ति का वह रूप नहीं होता है जो सभ्यों के ईश्वर या ब्रह्म का होता है। उस शक्ति का संबंध जन-जीवन के भौतिक पक्ष से होता है। जन इस शक्ति की सहायता से अपने भौतिक जीवन का विकास करना चाहता है। और आपदाओं से बचना चाहता है।

इस संस्कृति में धर्म की अपेक्षा टोना का स्थान अधिक महत्वपूर्ण होता है। एक प्रकार से धर्म और टोना को अलग-अलग करना कठिन हो जाता है। इसके सहारे जन अपनी सत्ता बनाए रखने के संघर्ष में विजयी होना चाहता है।

लोकमानस से जन्मी संस्कृति में एक आरोपण की प्रक्रिया चलती है। वह यह मानती है कि सृष्टि का संचालन उन्हीं शक्तियों के द्वारा होता है, जिनमें लोक के समान ही मनोवेग हैं, जो उनकी पुकार को सुनकर द्रवित भी होते हैं और जिनमें उसी के समान आशा आकांक्षाएं हैं। वैदिक ऋषि में भी यह प्रक्रिया मिलती है। ऋषि ने सविता के प्रति अपने भावों को इस प्रकार व्यक्त किया है जैसे योद्धा अपने घोड़े की ओर जाता है, गायें गांवों की ओर जाती हैं गाय अपने बच्चे को दूध पिलाने जाती है और जैसे प्रियतम अपनी प्रेयसी की ओर जाता है, उसी प्रकार आकाश को धारण करने वाला सविता हमारे पास आये। इन उक्तियों में मानव ने अपनी भावनाओं का आरोप देव पर किया है। यह प्रक्रिया लोक मानस की है, तो लोक संस्कृति की ही प्रवृत्ति है। यह मात्र अलंकार विधान नहीं है।

इन्हीं भावनाओं से लोक धर्म का विकास होता है। लोक यह मानता है कि उसके द्वारा दी गई बलियों या भेंटों से देवता बलग्रहण करता है। और उसके विरोधियों को नष्ट कर देता है। लोक धर्म अपने से श्रेष्ठ और उच्चतर उन शक्तियों को संतुष्ट करने की प्रक्रिया है जिनको वह अपने से ऊँचा मानता है और यह विश्वास करता है कि ये ही शक्तियाँ मानव जीवन तथा प्रकृति को संचालित करती हैं। इनको संतुष्ट करने की विधियों से ही धर्म का व्यावहारिक रूप सामने आता है। लोक संस्कृति की प्रमुख विशेषताएँ ये हैं:

1. इनकी सामग्री मौखिक या अलिखित रहती है,
2. इसमें परंपरा, प्रथा, लोक विश्वास आदि का ताना-बाना रहता है,
3. लोक धर्म से संबंधित, त्योहार, व्रत, अनुष्ठान आदि तथा भूत-प्रेत आदि परामानवीय तत्व इसमें समाहित रहते हैं,
4. लोक के खान-पान, रहन-सहन, मनोरंजन आदि भी इसमें सम्मिलित रहते हैं। लोक संस्कृति का संबंध लोक मानस से है।

लोक मानस की बात आते ही हमारे ध्यान में उसकी आदिम मानवीय भूमिका आती है। आदिम मानस प्रत्येक व्यक्ति को उत्तराधिकार में मिला है। यह हमारा सहज मानस है। यह दमित और कुंठित मानस से अलग है। इसकी स्थिति विश्वव्यापी है। साथ ही यह लोक मानस भौगोलिक पर्यावरण से सामग्री ग्रहण करता है। इसी के अनुसार मूल लोक मानस सक्रिय होता है। इसीलिए स्थानीय संस्कृतियों का निर्माण होता है। यही इस मानस की भौगोलिकता है।

BRAOU

ऐतिहासिक दृष्टि से लोकमानस आदिम काल से लेकर आज तक मानव-मानस में अवतरित होता आया है। यह ऐतिहासिक काल-प्रवाह से भी सामग्री ग्रहण करता चलता है। इसीलिए लोकमानस भिन्न ऐतिहासिक युगों में भिन्न रूप धारण करता है। साथ ही यह अपने मूल रूप को भी सुरक्षित रखता है। यही गत्यात्मक लोकमानस, लोक संस्कृति और लोक साहित्य में परिणति प्राप्त करता है।

5.3.2 भारतीय लोक संस्कृति

भारतीय लोक संस्कृति समन्वय और सम्मिश्रण की एक सुदीर्घ परंपरा से विकसित हुई है। प्रागैतिहासिक काल से ही विभिन्न सभ्यताओं, संस्कृतियों तथा धर्मों का क्रीड़ा स्थल भारत रहा है। इसलिए भारतीय लोक संस्कृति में जहां आर्य पूर्व वन्य जातिओं के प्रभाव सुरक्षित है, वहां आर्य और आर्येतर सभ्यताओं के प्रभाव को भी इसमें लक्षित किया जा सकता है। संपर्क, समन्वय और सम्मिश्रण की इसी ऐतिहासिक प्रक्रिया ने इस उपमहाद्वीप की लोक संस्कृति का चरित्र निर्माण किया है। आर्यों के आगमन से लेकर मध्य युग तक ही नहीं, आधुनिक युग तक भी विभिन्न सभ्यताओं और संस्कृतियों के लोग कभी नये सुरक्षित निवास स्थानों की खोज में, कभी आक्रामक के रूप में तथा कभी उपनिवेश, कभी इच्छाओं के वशीयत होकर भारतीय उप महाद्वीप में आते और बसते रहे। इससे एक ओर तो यहां का सामान्य लोक जीवन अशांत और आक्रांत बना रहा और साथ ही एक ऐतिहासिक संपर्क एक व्यापक सामाजिक संस्कृति को भी जन्म देता रहा।

अपने उत्कर्षकाल में शक्तिशाली और प्रभावशाली रहने के बाद, अधिवासी लोगों के समूहगत-जातिगत अलगाव के भाव समाप्त होते गये। आपसी सद्भाव से जातियों के संबंध सौम्य और शांत बनते गये। कालांतर में स्थानीय और आगत सांस्कृतिक तत्व एक मिली-जुली परंपरा में परिणत हो गये। परंपराओं के इस भावात्मक एकीकरण से जीवन पद्धतियों का नवीकरण होता रहा और संस्कृति समृद्ध होती गई। यही भारतीय लोक संस्कृति का गत्यात्मक रूप है। विकास की विभिन्न अवस्थाओं में आदिम युग से लेकर वर्तमान तक और जनजातीय से लेकर नगरीय तक सभी प्रभाव समीकृत रूप में उभरे हैं।

5.3.3 लोक संस्कृतिः अध्ययन की सामग्री

लोक संस्कृति की सामग्री विविध स्त्रोतों से प्राप्त होती है। यह संस्कृति इतनी व्यापक होती है कि समस्त इतिहास, प्रागैतिहास, पुरातत्व, भाषा विज्ञान, मानव विज्ञान, वन्य जातीय जीवन तथा सभ्य संस्कृत जीवन में इसकी सामग्री बिखरी हुई मिलती है। इसके प्रमुख स्त्रतों पर आगे विचार किया गया है।

BRAOU

इतिहासः

इतिहास किसी राष्ट्र या जाति के जीवन की कहनी है। पुरातत्व विभाग इतिहास का अन्वेषण करता है। इतिहास में ज्ञात जीवन के विकास की परंपरा का निरूपण होता है। उसमें तथा-कथित सभ्य-असभ्य, नागरिक-ग्रामीण, अभिजात-निम्न वर्गों का जीवन और उनकी संस्कृति दोनों पर विचार होता है। असभ्य, ग्रामीण और निम्न वर्गों के जीवन में लोक संस्कृति प्रतिफलित होती है। इतिहास से हम आम लोगों की जीवन-पद्धति, रस्म-रिवाज, आचार-विचार आदि को जान सकते हैं जो लोक-संस्कृति को व्यक्त करते हैं। इतिहास को प्रायः राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृति वर्गों में बांटा जाता है। आम लोगों की आर्थिक स्थिति, उनके पारिवारिक-सामाजिक संबंध और उनका कला-साहित्य इतिहास के माध्यम से लोक जीवन और संस्कृति के स्वरूप को प्रकट करते हैं। बाहरी आक्रमणों से राजनीतिक इतिहास में परिवर्तन हो जाते हैं। इनका प्रभाव प्रधानतः नागरिक जीवन पर होता है। कालक्रम में होनेवाले सहज राजनीतिक परिवर्तन हो या विदेशी आक्रमणों से होने वाले आकस्मिक आमूल परिवर्तन हो, इनका प्रभाव लोक-जीवन और संस्कृति पर भी अवश्य पड़ता है। भारत के इतिहास में मुसलमानों और अंग्रेज़ों के आक्रमणों से भारतीय लोक-जीवन अछूता नहीं रहा।

लोक संस्कृति और पुरातत्वः

पुरातत्व किसी देश के अज्ञात अतीत या अतीत की अज्ञात सांस्कृतिक सामग्री को प्रकाश में लाता है। धरती के गहन स्तरों का उत्खनन करके इस सामग्री की खोज होती है। खुदाई से पुराने मिट्टी के बर्तन, मिट्टी या पत्थर की मूर्तियां या उनके खंड, प्राचीन भवनों के खंडहर, पुराकाल में प्रयुक्त व्यावसायिक औज़ार और हथियार तथा उस काल के सांस्कृतिक जीवन के अन्य उपकरण मिलते हैं। इनके आधार पर हम पुरानी लोक संस्कृति का ज्ञान प्राप्त करते हैं। इस ज्ञान के आधार पर किसी देश की वर्तमान सामग्री और उसके रूप की व्याख्या भी की जाती है। यह लोक संस्कृति के पुराखंडों और भौतिक अवशेषों का ही अध्ययन है। ये खोजें वर्तमान लोक संस्कृति को पाषाण काल तक भी ले जाती है। इस सामग्री से आखेटक युग, पशुपालन युग, कृषि युग और उद्योग युग की लोक संस्कृति के रूपों का परिचय होता है। भांडो (मिट्टी के बर्तनों) के अध्ययन से यह भी पता चलता है कि उस क्षेत्र में किस प्रकार का अन्न उत्पन्न होता था। इससे धन संग्रह का पता चलता है। इस खोज में अनेक गुफाचित्र मिले हैं, जो पुराकाल के जन-जीवन का परिचय देते हैं।

लोक संस्कृति और वन्य जातियों का अध्ययनः

लोक समस्कृति की बहुत सी सामग्री वन्य जातियों के अध्ययन से भी हाथ लगती है। लोक संस्कृति के अनेक तत्व जन जातियों के स्त्रतों से ही आगत है। जातियों में कुछ वर्णन होते हैं, टोट्क होते हैं। इनके अनुसार जीवन नियंत्रित होता है। उदाहरण के लिए बैगा नामक जाति में धान की खेती करना, जाति के पतन के रूप में देखा जाता हैं। इनके एक लोकगीत में हिरण अपने बच्चे से कहता है कि तेरा पतन हो गया है, तू तो धान की खेती करने लगा। इसी प्रकार की अनेक मान्यतौं है, जो लोक संस्कृति के अंतर्गत आती हैं। चावल का स्थान धार्मिक कृत्यों में महत्वपूर्ण है, जबकि गेहूं का पूजा में कोई स्थान नहीं है। अन्न को कुछ जातियों में देवता कहा जाता है। यह तत्व लोक संस्कृति में भी विद्यमान है। आदिम जातियों के तत्व अथर्ववेद की संस्कृति में विशेष रूप से मिलते हैं। इस प्रकार लोक संस्कृति के अनेक तत्वों की खोज मानव विज्ञान की सहायता से की जा सकती है।

लोक संस्कृति, भाषा और भाषा विज्ञानः

भाषा के अनेक शब्द पुरानी जन संस्कृति की कथा अपने में छुपाए रहते हैं। ये एक प्रकार से लोक संस्कृति के शब्द प्रतीक ही होते हैं। इनके अर्थों का संबंध बहुत सी लोक सांस्कृतिक मान्यताओं और विश्वासों से होता है। कुछ विद्वानों के अनुसार धर्मगाथा भाषा का ही विकार है। वे शब्द जो आरंभ में रूपक अथवा विशेषण के रूप में प्रयुक्त हुए थे, वे आगे चलकर स्वतंत्र रूप ग्रहण करने लगते हैं। उनके अर्थ-विशेषण के द्वारा आरंभिक विश्वासों तक पहुंचा जा सकता है। "दुहिता" शब्द यह बतलाता है कि पुराने संस्कृति युग में गो-दोहन का कार्य पुत्री ही करती थी। भाषा विज्ञान की पद्धति से इस सामग्री को प्राप्त किया जा सकता है।

BRAOU

व्यक्तिगत नामः लोक तत्व

कुछ व्यक्तियों के नामों के आधार पर भी लोक संस्कृति की सामग्री मिल सकती है। इन नामों की पृष्ठभूमि में लोक प्रचलित कोई प्रथा या विश्वास हो सकता है। जिसके बच्चें नहीं जीते या छोटी उम्र में ही स्वर्ग सिधार जाते हैं, वह अपने बच्चें की सुरक्षा के लिए कुछ लोक प्रक्रिया में प्रवृत्त होता है। जन्म के बाद ही बच्चों को "घूरे" पर फेंक दिये जाते है और फिर उनको मोल लिया जाता है। विश्वास किया जाता है कि बच्चा "घूर" के रूप में मृत्यु की दृष्टि से बच जाता है। इस प्रकार के बच्चे का नाम ही "घूरे" घूरेलाल, घूरेसिंह रख दिया जाता है। इसी प्रकार कुछ नाम छितु, छीतु, छीतर भी होते हैं। मेरठ की बोली में टूटी डालिया को "छोतरी" कहा जाता है। उस में रखकर, छटी के दिन बच्चे को कूडे के ढेर पर डाल दिया जाता है। या छोतरी में रखकर उसको घसीटा जाता है। फिर उसको भंगिन से मोल लेते हैं। उपरर्युक्त नाम इसी प्रथा के आधार पर रखे गये हैं।

इसी प्रकार स्थानों के नाम भी कभी-कभी लोक संस्कृति की सामग्री देते हैं।

सभ्य जीवन में अवशिष्ट तत्वः

लोकमानस का व्यावहारिक पक्ष ही लोकतत्व या लोक-वार्ता की व्याप्ति जन समुदाय के जीवन के प्रत्येक स्तर पर मिलती है। इन स्तरों या सोपानों को इस प्रकार जाना जा सकता है: आदिम या जंगली जातियों में, सभ्यता विरहित अनपढ़ ग्रामीण समाज में, सभ्यता विरहित निरक्षर नगर समाज में, अर्द्ध सभ्य, अर्द्ध शिक्षित नगर समाज में, सभ्य समाज में। इस प्रकार लोकतत्व का आस्तित्व आदिम स्थिति से लेकर पूर्ण सभ्य समाज तक मिलता है। सभ्य समाज में इसकी स्थिति परंपरागत, अपरिमार्जित विश्वासों तथा प्रथाओं से सिद्ध होती है। एक प्रकार सभ्य जीवन में लोकतत्व "अवशिष्ट" के रूप में मिलता है। अवशिष्ट का अर्थ है- आदिम मानस और आदिम संस्कृति के वे विश्वास या प्रथाएं जो पूर्ण सभ्यता जीवन के साथ भी चिपके रह गये हैं। लोकवार्ता जन जीवन की संस्कृति के सहज स्वाभाविक प्रवाह से संबंधित हैं। लोकतत्व साहित्य और कला को भी प्रभावित करता है। यह तत्व अभिव्यक्ति में एक व्यापक प्रभाव पैदा करता है।

साहित्यः

साहित्य में भी लोक सांस्कृतिक सामग्री का प्रयोग मिल जाता है। साहित्यकार सदा से लोक संस्कृति के तत्वों को ग्रहण करता आया है। रामायण, महाभारत, पुराण-साहित्य सभी में लोक संस्कृति के तत्व भरे पडे हैं। उच्च साहित्य में भी इन तत्वों का समावेश होता है। पुराने साहित्य के समान आधुनिक साहित्य भी प्रभाव और वातावरण को जीवंत करने के लिए लोक संस्कृति के तत्वों का प्रयोग करता है। इस प्रकार साहित्य भी लोक सांस्कृतिक सामग्री का एक स्त्रोत है। "गाथा सप्तशती" जैसे ग्रंथ तो लोक साहित्य और लोक संस्कृति की सामग्री के आधार पर ही रचे गये हैं।

शास्त्रीय ग्रंथों में प्रायः उच्च संस्कृति की सामग्री का ही उपयोग होता है, फिर भी लोक संस्कृति के अनेक सूत्र भी शास्त्र ग्रंथों में समाए रहते हैं। "काम सूत्र" में ऐसी बहुत सी सामग्री देखी जा सकती है।

लोक साहित्यः

लोक संस्कृति की सामग्री के स्त्रोत के रूप में लोक साहित्य का प्रमुख स्थान है। लोक साहित्य में लोक संस्कृति की परंपरा झांकती रहती है। अनेक गीत लोक में पूज्य देवी-देवताओं से संबंधित होते हैं और अनेको का संबंध व्रत, त्यौहार और पर्वों से होता है। कुछ में विवाह आदि संस्कारों का विधान रहता है। कुछ गीतों में पारिवारिक संबंधों की झांकी रहती है। सामाजिक परिवेश और प्राकृतिक पर्यावरण के जो प्रभाव लोक मानस पर पड़ते हैं, उनका सहज रूप लोक गीतों में देखे-पहचाने जा सकते हैं। बदलती हुई परिस्थितियों में सामाजिक व्यवस्थाओं और परंपराओं में परिवर्तन आ जाते हैं, किंतु उनके मूलरूप सम सामयिक लोक-गीतों में बने रहते हैं। परंपराओं के विघटन के बाद भी उनसे उत्पन्न लोकगीत अपने भावात्मक गुणों के कारण लोक व्यवहार और लोक गीतों में एक लंबे समय तक बने रहते हैं। तत्कालीन संस्कृति और समाज व्यवस्था के अध्ययन के लिए मूल्यांकन सामग्री हमें लोक साहित्य से प्राप्त होती है।

5.3.4 हिन्दी क्षेत्र और उसकी संस्कृति

हिन्दी एक बहुत व्यापक क्षेत्र की भाषा है। केलौंग और बीम्स जैसे भाषा विज्ञानियों ने इसकी सीमाएं इस प्रकार निर्धारित की हैं, हिन्दी क्षेत्र उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में नर्मदा नदी और विंध्याचल तक, पश्चिम में पंजाब, सिंध और गुजरात से लेकर पूर्व और दक्षिण पूर्व में बंगाल और छोटा नागपूर तक हिन्दी का क्षेत्र है।

संविधान की दृष्टि से हिन्दी का मूल व्यवहार क्षेत्र राजस्थान हरियाणा, उत्तर प्रदेश, हिमाचल प्रदेश, मध्य प्रदेश, बिहार तथा दिल्ली राज्य को लेकर बना है। इस विस्तृत क्षेत्र की अपनी क्षेत्रीय बोलियां भी है। इनका प्रयोग दैनिक व्यवहार में होता है। विस्तृत सांस्कृतिक, साहित्यिक और शैक्षिक संदर्भों में, हिन्दी का ही प्रयोग इस क्षेत्र में होता है।

पुराने साहित्य में इस क्षेत्र को "मध्य देश" नाम से पुकारा गया है। मनु ने इस क्षेत्र को भाग्यशाली कहा है। भारत के मध्य भाग में होने के कारण यह क्षेत्र भारतीय सभ्यता और संस्कृति हुआ है। भाषा-विकास और साहित्य-रचना के लिए भी यह प्रदेश प्रसिद्ध रहा है। प्राकृतिक पर्यावरन में पर्याप्त वैविध्य मिलता है। नदी, वन, मरूभूमि पर्वत, मैदान सभी की स्थिति इस क्षेत्र में हैं। प्रकृति का लोक जीवन और लोक संस्कृति से बहुत गहरा संबंध होता है। अतः इस क्षेत्र में सांस्कृतिक वैविध्य भी बहुत मिलता है। राजस्थान, बिहार और मध्य प्रदेश में वन्य या आदिम जातियों के आवास भी हैं। साथ ही बाहर से आनेवाली जातियों के लिए यह उपजाऊ भाग आकर्षक रहा है। इन जातियों के साथ विदेसी संस्कृतियां भी यहां आती रहीं। भारत के मध्य भाग में होने के कारण भारत के अन्य भागों के सांस्कृतिक प्रभाव भी यहां की लोक संस्कृति की रूप रचना में शामिल होते रहे।

गंगा-यमुना, नर्मदा, विध्याचल आदि की घाटियों में जो खुदाई हुई है, उससे बहुत से सांस्कृतिक अवशेष मिले हैं। प्रागैतिहासिक युग की प्रचुर सामग्री के साथ ऐतिहासिक युग की सामग्री भी प्रकाश में आई है। मध्य प्रदेश में अनेक चित्रित गुफाएं मिली हैं। इनके चित्रों में आखेट, पशुओं की सवारी, गायन, वादन और नृत्य संबंधी विविध चित्र मिले है। पाषाण युग के भी बहुत से उपकरण मिले हैं। इससे सिद्ध होता है कि लोक संस्कृति की दृष्टि से यह बहुत समृद्ध क्षेत्र रहा है। मौर्य काल से लेकर मुसलमानी काल तक की एतिहासिक सामग्री भी अनेक रूपों में मिलती है।

हिन्दी क्षेत्र की लोक संस्कृति की सबसे बडी विशेषता है इसकी मिश्रित प्रकृति। ऐतिहासिक विकास क्रम में यह प्रदेश अनेक जातियों और संस्कृतियों का विलास-क्षेत्र रहा है। बौद्ध, जैन, हिन्दु, मुस्लिम, सभी धर्मों का इस क्षेत्र में विकास हुआ है। इसी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि ने यहां की संस्कृति को मिश्रित और समन्वित रूप प्रदान किया है।

हिन्दु और मुसलमानी युगों में यहां बडे-बडे राज्य बने और बिगडे। एशिया में प्रसिद्ध राज दरबार इस क्षेत्र में बने। राजा विक्रमादित्य, राजा भोज के दरबारों की परंपरा बल बन और अकबर के दरबारों तक चली आई। दरबारों में महान् कवियों और विद्वानों को आश्रम दिया गया। दरबारों की अपनी एक संस्कृति विकसित हुई। इस संस्कृति में लोक संस्कृति के जीवंत रूपों का परिष्कार भी किया गया। इस संस्कृति के साथ-साथ लोक संस्कृति की धारा भी प्रवाहित रही।

5.3.5 लोक साहित्य

लोक साहित्य शब्द "फोक लिटरेचर" के पर्याय के रूप में हिन्दी में प्रयुक्त हुआ। इसके लिए "ग्राम साहित्य" या "जन साहित्य" जैसे शब्दों का प्रयोग भी होता रहा। लोक साहित्य शब्द कई अर्थों में प्रयुक्त होता है जैसे-

1. इस लोक का साहित्य, जो सभ्यता की सीमाओं से बाहर है,
2. वह साहित्य जो लोक मनोरंजन के लिए लिखा गया हो, उस लोक के लिए जो विशेष पढ़ा-लिखा नहीं है,
3. आदिम या जंगली जातियों का साहित्य,
4. ग्रामीण साहत्यि,
5. वह साहित्य जो मौखिक परंपरा से हमें मिला है।

वास्त्व में लोक साहित्य वह है जिसमें लोक मानस की छवियां अंकित होती हैं, जिसमें लोक संस्कृति प्रतिबिंबित रहती है, जो एक व्यक्ति या कई व्यक्तियों के द्वारा रचा हुआ होने पर भी, आज सामान्य जन का सामूहिक कृतित्व माना जाता है, जो समस्त जनसमुदाय की विरासत है, जिसमें जाति, समाज या एक क्षेत्र में रहनेवाले सामान्य लोगों की परंपराएं, प्रवृत्तियां और आचार-विचार, रीति, नीति आदि निहित रहते हैं।

लोक साहित्य के वस्तुविधान में लोक जीवन और लोक संस्कृति के तत्व रहते हैं। इसकी अभिव्यक्ति सरल, आदिम प्रवृत्ति की नैसर्गिक तथा प्रायः अनायास होती है। अभिव्यक्ति के उपकरण भी लोक जीवन और लोक संस्कृति से आगत होते हैं। इनके इस प्रकार सूचीबद्ध किया जा सकता हैः

क) भाषा– लोक प्रचलित सामान्य भाषा, लोक प्रचलित मुहावरे जन पदीय या ग्राम्य शब्द, लोकोक्तियां, लोक सुलभ ज्ञान–विज्ञान से संबंधित पारिभाषिक सब्दावली, इस शब्दावली की लोक–साहित्यि परिणति।

ख) छंद– शास्त्रीय छंद नहीं. लोकाचार में आवश्यक अंग के रूप में प्रयुक्त लयात्मक गीत, शास्त्रेत्तर निर्माण पद्धति।

ग) अलंकरण– लोक जीवन से जुडा हुआ अप्रस्तुत विधान

घ) साहित्य रूप– गीत, गाथा, कथा, गेय रूप, मिश्रित रूप, श्रव्य और दृश्य तत्वों का मिश्रण।

ङ) वस्तु विन्यास– चेतनापक्ष तथा अवचेतन पक्ष का समसमावेश, लोक धर्म और जादू, लोक दर्शन, नीति तथा रीति।

लोक साहित्य और साहित्यः

साहित्य हो चाहे लोक साहित्य, लोक और जीवन से संबंध होता है। दोनों की सामग्री का स्त्रोत व्यापक लोक जीवन ही है। किंतु साहित्य लोक जीवन से सारभूत जीवनी शक्ति लेकर, लोक धरातल से ऊपर उठकर, अपना व्यक्तिनिष्ठ अस्तित्व बना लेता है। इसके विपरित लोक साहित्य का आद्यंत विलास लोक धरातल पर ही होता है। लोक संस्कृति और लोक साहित्य में अभेद ही रहता है। साहित्य के संबंध में यह बात नहीं हो ती। साहित्य में वैयक्तिकता का प्राधान्य होता है। लोक साहित्य लोक जीवन की सीधी अभिव्यक्ति है। इसमें विशिष्ट व्यक्तित्व का लोप रहता है। साहित्य पर इसका त्वरित प्रभाव नहीं होता। लोक साहित्य, साहित्य की भांति, परिनिष्ठित, संस्कृत और परिमार्जित भाषा का आग्रही नहीं होता। यह लोकभाषा और बोली में लिखा जाता है। साहित्य किसी प्रकार से नियमन और अनुशासन को लेकर चलता है, जबकि लोक साहित्य की अभिव्यक्ति स्वच्छन्द होती है। साहित्य की अपेक्षा लोकसाहित्य अनायास और नैसर्गिक होता है। लोक साहित्य की परंपरा मौखिक होती है और साहित्य की परंपरा लिखित। साहित्य और साहित्यकार की प्रवृत्ति संस्कार की ओर होती है। लोक साहित्य संस्कार की औपचारिक प्रक्रिया से वियुक्त रहता है।

BRAOU

लोक साहित्य की पहचानः

लोक साहित्य की पहचान यह है कि इसकी भाषा परिनिष्ठित और साहित्यिक न होकर, जन भाषा होती है। साथ ही लोक–साहित्य की वस्तु भी सामान्य जनजीवन से संबंध रखती है। इसमें जनजीवन के अनुभव, चित्र, भाव और प्रभाव समाविष्ट रहते हैं। इसकी रचना चाहे व्यक्ति के माध्यम से ही हो, किन्तु इसमें समूचे समाज का योगदान रहता है। तात्पर्य यह है कि लोक साहित्य की रचना सामूहिक प्रकृति की होती है। बहुत से श्रमगीतों की रचना सामूहिक ही होती है। लोक साहित्य का शिल्प–विधान किसी अभ्यास या शास्त्रीय कौशल के अनुसार नहीं होता। इसमें लोक प्रचलित शब्द, लोकोक्तियां और लोक छंदों का प्रयोग रहता है लय, ताल और बिंबविधान भी सामान्य जीवन से ही लिये जाते हैं। सायास शिल्प लोक साहित्य में नहीं मिलता, सब कुछ अनायास और नैसर्गिक। एक विशेषता यह होती है कि लोक साहित्य में वस्तु और शिल्प को परस्पर अलगाया नहीं जा सकता।

5.3.6 भारतीय लोक साहित्य

भारतीय लोक साहित्य का अध्ययन अनेक देशी–विदेशी विद्वानों ने किया है। विभिन्न क्षेत्रों के लोक साहित्य का संग्रह भी हुआ है और उस पर शोध कार्य भी हुआ है। यदि तुलनात्मक दृष्टि से देखा जाये तो यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है– भारत का लोकमानस या सांस्कृतिक मानस एक

है। भारत की सांस्कृतिक एकता को छिन्न-भिन्न नहीं किया जा सकता है। सभी क्षेत्रों में लोकसाहित्य के केंद्र में नारी की स्थिति मिलती है। चाहे वह पंजाबिन हो, बंगालिन या मद्रासिन हो, या बनजारिन, उसकी मानसिक एकता अखंड है। डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल के अनुसार- "भले ही आकाश के खंड हो सके, किंतु भारतीय स्त्री का हृदय जिन आदर्शों और भावनाओं से प्रतिपादित हुआ है, उनका बंटवारा नहीं हो सकता। भारतीय स्त्री ही अधिकाश लोक गीतों की कवयित्री ऋषिका है। उस मंगल्यानी गंवारिन के सुरीले कंठ की अमृत ध्वनि गीतों के रूप में मूर्त है। इस मंगलमयी गीतकारिणी की भाषा के अनेक रूप हैं, किन्तु उनमें छिपे हुए अर्थों का रूप एक है। "आगे अपनी बात को बढ़ाते हुए उन्होंने लिखा है- "दुर्भाग्य से आज मेल की अपेक्षा भेद या बंटवारे की प्रवृत्ति अधिक बलवाती है। निषाद, नाग, यक्ष, किन्नर आदि संस्कृतियों के तत्वों की बात जब शास्त्रीय ढंग से कही जाती है, तो उससे आपसी भेद के बीज जड पकड लेते हैं, मानो यक्ष और आर्यों में, आर्य और निषादों में अथवा निषाद और किरातों में कोई भारी वैमनस्य और कलह हो।"

वास्तव में भारतीय लोक साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन हमारे भारतीय समाज की भावनात्मक एकता को प्रकट करनेवाला एक प्रमुख साधन है। यह साहित्य हमें देश की अखंडता का संदेश देता है।

जिस प्रकार भारतीय साहित्य की चर्चा की जाती है, उसी प्रकार भारतीय लोक साहित्य की भी की जाती है। दोनों ही धाराओं में विधकीय समानता मिलती है। शिव-पार्वती, राम-सीता, राधा-कृष्ण जैसे युग्मों के आस पास समान साहित्य की सृष्टि हुई है। इसी प्रकार कथा सारीत्सागर भारत के राष्ट्रीय मानस की एकता को सिद्ध करता है।

लोक साहित्य की परंपराः

विद्वानों ने वेद परंपरा में भी लोक साहित्य की खोज की है। वेदों में "गाथा" शब्द मिलता है। इसका अर्थ है गेयस्तुति अर्थात् गाई जानेवाली देवस्तुतियां। यह गायन पद्धति संभवतः लोक से ही ली गई थी। "गाथा" का प्रयोग गेयस्तुति से भिन्न अर्थ में भी मिलता है। विवाह सुक्त में कहा गया है कि बधू (सूर्या) के मंगल वस्त्रों को "गाथा" के द्वारा परिष्कृत किया गया। आज भी विवाहों में वर-वधू से संबंधित सामग्री पर लोक गीत मिलता है, जिनका गायन करके उस सामग्री को विशेषता प्रदान की जाती है। इस प्रकार गाथा लोकगीत का वाचक शब्द ही प्रतीत होता है। विवाह के समय कुछ पद्यात्मक आख्यान भी गाये जाते थे। इनको भी लोक आख्यान के रूप में माना गया है।

"गाथा" के अतिरिक्त "गीत" शब्द भी आया है। यह गीत-विधा आख्यानपरक नहीं थी। गृह सूत्रों में आये कुछ गीत लोकगीत ही प्रतीत होते हैं। एक लोरी गीत का भी संकेत मिलता है। विवाह के अवसर पर भी ये गीत गाये जाते थे।

प्रहेलिका भी वैदिक साहित्य में सम्मिलित हैं। कुछ पहेलियां तो ऋग्वेद की स्तुतियों के बीच में पिरोई हुई हैं। ब्राह्मण ग्रंथों से पता चलता है कि अश्वमेध और दशरात्र के समय प्रहेलिकाओं की प्रतियोगिताएं भी होती थीं।

तात्पर्य यह है कि उच्च साहित्य में लोक साहित्य के ग्रहण किए जाने की परंपरा वेदों तक जाती है। "गाथा" की परंपरा आगे प्राकृत साहित्य में विकसित होती हुई मिलती है।

वैदिक साहित्य में कुछ संवाद सूक्त हैं- यम-यमी, पुरूखा-उर्वशी, अगस्त्य-लोपामुद्रा, सरमा-पणीस आदि। ये वास्तव में लोक प्रचलित आख्यान ही हैं, जिन्होंने वैदिक साहित्य में स्थान पाया। यास्क ने निरूक्त में पुरूरवा-उर्वशी के संवाद को और सरमा-पणीस की कथा को लोकाख्यान कहा है।

BRAOU

वाल्मीकि के द्वारा लिखे जाने से पूर्व रामायण की कथा नाराशंसी गाथा की परंपरा से या लोकस्त्रोत से गृहीत हुई। हरिवंश में उल्लेख है कि पुराणविद रामकथा का गायन किया करते थे। मूलकथा के साथ कई लोक कथाएं सम्मिलित होती गई हैं।

इसी प्रकार महाभारत में भी अनेक लोककथाओं का समावेश हुआ है। नाटकों के विकास में भी लोकनृत्यों और गेय तथा संवादात्मक लोक कथाओं का बहुत योगदान रहा।

तात्पर्य यह है कि हमारे साहित्य तथा उसके मुख्य-मुख्य काव्य रूपों को लोक साहित्य ने पर्याप्त प्रभावित किया। वेद, रामायण, महाभारत, पुराण आदि सभी लोक साहित्य के ऋणी हैं। वैसे यह प्रवृत्ति सभी देशों की साहित्य-परंपरा में मिलती है। महाभारत एक ऐसा महाकाव्य है, जिसमें अनेक अवदित लोक प्रचलित आख्यानों का समावेश किया गया है। सामायण भी इसी प्रकार की रचना है। इनमें जनजातियों के तत्वों का भी पर्याप्त प्रयोग हुआ है। रामायण और महाभारत को वैदिक साहित्य के गाथा, नाराशंसी और अख्यानों जैसे लोक साहित्य के रूपों से जोड़ा जा सकता है।

5.3.7 लोक साहित्य के प्रकार

लोक गीतः

रचयिता का प्रश्नः

लोकगीत की प्रकृति व्यक्तिपरक न होकर, लोकपरक होती है। एक सिद्धांत यह प्रस्तावित हुआ था कि लोकगीत का कोई व्यक्ति रचयिता नहीं होता। आरंभ में कुछ श्रमगीत सामूहिक रूप से विकसित हुए होंगे। पीछे उसकी रचना किसी व्यक्ति विशेष के द्वारा ही होने लगी। यह कहना कि लोक गीत का रचयिता अज्ञात होना चाहिए, कोई विशेष अर्थ नहीं रखता। वास्तविक बात यह है कि लोक गीत को ग्रहण करके उसका ही मूल्य करने लगता है। प्रायः यह महत्वपूर्ण नहीं रहता कि इसका रचयिता कौन है। लोक उसको प्रायः भुला देता है। इससे कोई अंतर भी नहीं पडता कि लोकगीत का रचयिता ज्ञात है या अज्ञात है। शिष्ट साहित्य और लोक साहित्य में अंतर इस बात को लेकर होता है कि शिष्ट साहित्य में रचयिता का व्यक्तित्व ऊपर आता है, जब कि लोक साहित्य में लोक का ही व्यक्तित्व तैर कर ऊपर आता है। लोक साहित्य में प्रयुक्त प्रतीक, उपमान, रूपक, बिंब, लय आदि और उनके द्वारा व्यंजित भाव लोक रुचि के अनुकूल होता है। लोक उसमें अपना ही व्यक्तित्व और चरित्र देखता है। रचयिता का व्यक्तित्व इस लोक के व्यक्तित्व में खो जाता है। लोक इस साहित्य को सहज ही स्वीकार कर लेता है। इस प्रकार लोक साहित्य किसी व्यक्ति विशेष की भाषाभिव्यक्ति न होकर समाज के समूहिक मनोभावों से भर जाता है। लोकगीतों का सामूहिक गान भी होता है और कथात्मक गाथाएं भी समूह के कंठ के स्वर में फूटती है।

लोक किसी गीत की कड़ियों में चाहें जो फेर-बदल कर सकता है। इस प्रकार बदलती परिस्थितियों के अनुसार लोकगीत लोक सम्मत और लोकप्रीय बना रहता है। इसी प्रक्रिया से लोकगीत की दीर्घ परंपरा बनती रहती है।

5.7.2 लोकगीतों के प्रकार

लोक साहित्य में लोक गीत का प्रमुख स्थान है। इनका बहुविध प्रयोग भी होता है। लोक गीत के रूप और प्रकार भी बहुत हैं। नीचे की तालिका से लोकगीतों के प्रकार स्पष्ट हो जाते हैं:

BRAOU

लोक गीत	विविध अवसरों पर गाये जाने वाले
संस्कार गीत	जन्म
	विवाह
	अन्य
ऋतुगीत	सावन
	झूला
	होली
	बसंत
धार्मिक और अनुष्ठानिक	त्योहारों के गीत
	देवी-देवता के गीत
	व्रत गीत
	पूजा अनुष्ठान
स्फवट या मुक्तक गीत	स्त्री गीत
	पुरुष गीत
	बाल गीत
व्यावसायिक	कृषि गीत
	भ्रमर गीत

इस तालिका से स्पष्ट हो जाता है कि लोक जीवन के साथ लोकगीतों का घनिष्ट संबंध है। कोई भी महत्वपूर्ण घटना या अवसर बिना गीतों के नहीं रह सकता।

रूप और रचना की दृष्टि से भी लोकगीतों में विविधता मिलती है। स्त्री और पुरुषों के गीत नृत्य और अभिनय के साथ भी गाये जा सकते हैं। ये गीत मुक्तक भी हो सकते है और कथात्मक भी। तेलुगु क्षेत्र का बुर्र कथा गीत नृत्य और अभिनय के साथ गाया जाता है। साथ ही गीतों का गायन व्यक्तिगत रूप से भी होता है और सामूहिक रूप से भी। कुछ गीत संवाद प्रधान होते हैं। संवाद पति-पत्नी, मां-बेटी, सास-बहू, ननद-भाभी, देवर-भाभी आदि के बीच चल सकता है।

BRAOU

कुछ लोक गीत परंपरा से प्रचलित चले आते हैं। इनमें रचयिता का निजी व्यक्तित्व छुपा रहता है या अज्ञात ही होता है। इस प्रकार के गीतों का लोकमानस से तादात्म्य रहता है। समस्त लोक का व्यक्तित्व ही इनमें उभरता है। यह सामूहिक लोक की मूल्यवान संपत्ति है। कुछ लोकगीतों की रचना लोक की शैली में, लोक में और लोक कवि के द्वारा होती है।

लोक कथाः

लोक साहित्य का दूसरा महत्वपूर्ण अंग लोक कथा है। इसके तीन प्रमुख रूप है- लोक कथा, लोक कहानी, तथा लोक गाथा। सामान्य रूप से लोक कथा किसी धार्मिक अवसर पर सुनाई जाती है और इसमें धार्मिक अभिप्राय समाए रहते हैं। उनको सुनकर श्रोतागण धर्म का लाभ करते हैं। यह धर्मकथा अथवा पुराण कथा की शैली में होती है और अंत में कथा श्रवण का फल-कथन भी रहता है। लोक कथा वह है जो धार्मिक अभिप्राय से व्रत या अनुष्ठान के साथ सुनी/सुनाई जाती है। हिन्दी लोक साहित्य में भाईदूज, करवाचौथ, संकट चौथ आदि की कथाएं इसी प्रकार की है।

लोक कहानीः

यह शब्द अंग्रजी के फोकटेल (Folktale) के अर्थ में प्रयुक्त होता है। ये कहानियां मौखिक परंपरा से चली आती हैं। इनका उद्देश्य मनोरंजन, नैतिक उपपदेश और सांस्कृतिक बोध होता है। भारत में इनकी बहुत पुरानी परंपरा है। "कथा सरित्सागर" की कहानियां प्रसिद्ध हैं। मूलतः ये कहानियां गुणाढ्य के द्वारा पहले पैशाची में लिखी गई थी। कुछ विद्वानों का मत है लोक कहानियों का मूल स्थान भारत ही था। किन्तु सत्य यह है कि जहां भी मानव का विकास हुआ और उसके समुदाय बने, वहां लोक कहानियों का विकास हुआ। क्योंकि लोक मानस की मूल रचना और इसकी प्रवृत्तियां

सभी जगह समान थीं, इसलिए कहानियों की कथा रूढ़ियां या अभिप्राय अंतिम विश्लेषण में समान ठहरते हैं। इनके कई रूप मिलते हैं- पशु-पक्षी की कहानियां, नीति कथाएं, (हितोपदेश), जन्म कथाएं (जातक), प्रश्नों के समाधान से संबंधित कहानियां, शुद्ध मनोरंजन की कहानियां आदि। में बैताल पच्चीसी, शुक्र बहत्तरी, सिंहासन बत्तीसी, जैसे कहानी संग्रह मिलते हैं। बौद्धों की जातक कथाएं भी एक प्रकार से लोक कहानियां ही हैं। बहुत सी लोक कहानियां शिष्ट साहित्य में भी प्रवेश पा जाती हैं।

लोक कथा (वीरगीत):

यह शब्द अंग्रेजी के बैलेड (Bollad) के पर्याय के रूप में प्रचलित हुआ है। इनको वीरगीत के नाम से भी जाना जाता है। इस कथा रूप को इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है- वीरगीत वह कथात्मक गेय काव्य है, जो या तो लोक कंठ में ही उत्पन्न और विकसित होता है या लोकगाथा के सामान्य रूपविधान को लेकर किसी विशेष कवि द्वारा रचा जाता है। इसमें गीतात्मक और कथात्मकता दोनों का मिश्रण रहता है। कथा-केन्द्र में कोई विशिष्ट वीर-चरित्र होता है। गाथा का गायन वाद्य और नृत्य के साथ भी किया जाता है। किसी पौराणिक पुरुष या देव-देवताओं के आख्यान भी लोक गाथा का रूप धारण कर लेते हैं।

हिन्दी क्षेत्र में "आल्ह खंड" एक प्रसिद्ध वीर गीत है। अमरसिंह राठौर, जवाहर सिंह, जैसे ऐतिहासिक वीरों की गाथाएं लिखी गई हैं। तेलुगु क्षेत्र में सीताराम राजु संबंधित वीर गीत गाया जता है। पुराने महाकाव्यों में लोकगाथात्मक सामग्री का प्रचुर उपयोग किया जाता था। इन वीर गाथाओं का संबंध वैदिक नाराशंसी की परंपरा से जोड़ा जा सकता है। इनके द्वारा यज्ञ के अवसर पर ऐतिहासिक व्यक्तियों तथा उनके वृत्थों की उद्‌भावना की जाती थी। इसी परंपरा में रामायण तथा महाभारत काव्य भी आते हैं।

काव्य रूप:

लोक साहित्य में चार काव्य रूपों को देखा जा सकता है- लोक गीत, लोक गाथा, लोक कथा और लोक नाट्य। लोक गाथा प्रायः पद्यात्मक होती है। यह एक लंबा आख्यान गीत ही होता है। जिसमें गाथा की प्रधानता न होकर रस की प्रधानता रहती है। लोक गाथा गद्यात्मक होती है। इसमें प्रधानता घटना बहुल कथा की रहती है। लोक नाट्य संकट मूलक पद्यात्मक रचना भी हो सकती है और गद्य-पद्य की मिश्रित रचना भी। जन सुलभ लोक रंगमंच और लोक रुचि को ध्यान में रखकर इसकी रचना की जाती है। अभिनय वाचिक और आंगिक दोनों ही प्रकार का रहता है, पर आंगिक अभिनय की प्रधानता रहती है। लोक नाट्य "स्वांग" (= संगीतात्मक) और "लीला" (पैसे रामलीला) इन दो रूपों में रचा जाता है। लोक गीतों के अनेक प्रकार होते हैं। संक्षेप में लोक साहित्य के रूपों का परिचय इस तालिका से हो सकता है।

लोक साहित्य —
- लोक गाथा
- लोक कथा
- लोक कहानी
- लोक गीत
  - बडे गीत
  - कथात्मक गीत
  - अनुष्ठानिक गीत
  - विशेष संस्कारों के गीत
  - जन्म गीत
  - अन्य
- चुटकुले
- कहावतें
- पहेलियां
- मंत्र

BRAOU

5.3.8 भारतीय लोक साहित्य और साहित्य

लोक साहित्य की भारतीय परंपरा समृद्ध, सुदीर्घ और महत्वपूर्ण है। बैनके के अनुसार भारत ही सभी देवकथाओं और नीतिकथाओं का जन्म स्थान है। भारत अपने कहानी प्रेम के लिए प्रसिद्ध है। कहानी साहित्य की भारतीय परंपरा विश्व में बहुत पुरानी है। वैदिक साहित्य में ही किसी न किसी प्रकार लोक साहित्य का प्रयोग मिल जाता है। भारतीय महाकाव्य, जातक, कथा सरित्सागर, चुर्णि आदि भारतीय लोक साहित्य की महत्वपूर्म कड़ियां हैं। देवत्व और नैतिक कथाएं कहाकाव्य, पालि त्रिपटिक, जैन चूर्णि, पुराण आदि में उपलब्ध हैं। अन्य प्रकार की कथाओं के स्वतंत्र संकलन भी मिलते हैं जैसे जातक, कथाकोष, पंचतंत्र, कथा सरित्सागर, सिंहासन द्वात्रिंशिति (सिंहासन बत्तीसी) हितोपदेश, वैताल पच्चीसी, शुक बहत्तरी आदि। आप्सराओं और परियों की कथाएं दंडी के दशकुमार चरित, सुबंधु के वास्तवदत्ता, बाण की कादंबरी जैसे साहित्यिक माध्यमों से प्रस्तुत हैं। इस प्रकार भारतीय लोक साहित्य की परंपरा ऋग्वेद से लेकर बाण तक चली आई है।

वैदिक संहिताओं में स्तोत्र और गीतों के द्योतक दो शब्द हैं- "सूक्त" और "गाथा" शब्द वेदपूर्व परंपरा से ही चला आया है। इसका अर्थ है- एक गीत या वीरगीत। अवेस्तन साहित्य में भी इसका महत्वपूर्ण स्थान है। मध्यकालीन साहित्य में भी इस शब्द का प्रयोग चला आया है। प्राकृत से तो इसका घनिष्ट संबंध है। गाथाओं में दिव्य और मानवीय दोनों ही प्रकार के चरित्र गेय होते हैं। मानवीय गाथाएं धर्म-निरपेक्ष होती हैं। इनको नराशंसी भी कहा जाता था।

जैन साहित्य में आटा पीसते हुए गीत गाती हुई स्त्रियों का उल्लेख है। कहा जाता है कि वररुचि ने स्त्रियों के गीत एकत्र किये थे। प्राकृत में इनको "लोइ अकब्ब" (= जनप्रिय गीत) कहा जाता है। प्राचीन तमिल साहित्य में भी स्त्रियों के गीतों का प्रसंग है। इनके व्यापक प्रभाव की भी चर्चा है। राजशेखर ने लोकगीत की परिभाषा दी है। उन्होंने लिखा है कि ये गीत स्त्रियों और बच्चों के द्वारा गाए जाते थे।

वैदिक युग से चली आती हुई "गाथा" की परंपरा आज तक चली आती है। इनमें राष्ट्रीय वीरों और घटनाओं के विवरण भी होते हैं और प्रेमियों के भी। इस प्रकार के गाथा के दो रूप हो जाते हैं- वीर गाथा और प्रेम गाथा। अथर्ववेद में परीक्षित गाथाओं का उल्लेख है। यह प्रथम वीर गाथा है। प्रेमगाथाएं भारत के विभिन्न भागों में मिलती हैं। काठियावाड में उणली और जेठवा, मालवा में रूपमती और राज बहादूर, उत्तर प्रदेश में सारंगा-सदाबिरत, राजस्थान में ढोला-मारू आदि प्रेमगाथाएं मिलती है। बंगाल, सिंध, कश्मीर, आंध्र की गाथाओं में भी प्रेम और वीरत्व का समावेश मिलता है। महाराष्ट्र में ये केवल वीरगाथा के रूप में रह गई हैं। गाथाओं में जीवन के आदर्श भी पिरोये हुए रहते हैं।

ब्राह्मण साहित्य में आख्यान, पुराण, इतिहास, अर्थवाद जैसे शब्द पाये जाते है, जो लोक-कथा के वाचक हैं। अर्थवाद धार्मिक शास्त्र और विधि की व्यख्या करनेवाली कथा होती है। इतिहास और पुराण अतीत से संबंधित कथाओं के वाचक शब्द हैं। ये "सूत" परंपरा का प्रतिनिधित्व करते हैं। यह परंपरा मंत्र परंपरा से कम प्राचीन नहीं है। "सूत" सारथि जाति के थे। उग्रश्रवा और लोमहर्षण जैसे सूतों का उल्लेख महाभारत में भी मिलता है।

लोक कथाओं या उनके प्रयोग की दूसरी परंपरा शौनक से संबंधित है। इस परंपरा में संलाप और पवित्र आख्यान जैसे कथा रूप मिलते हैं। संलाप वार्तालाप है और पवित्र आख्यान पवित्र कथा ही है।

आख्यायिका, आख्यान, इतिहास और पुराण शब्द वैयाकरणों के संप्रदाय में भी मिलते हैं। वैयाकरणों को परंपरित गीतों और कथाओं का पूर्ण ज्ञान था। भारतीय लोक कथाओं के विश्व विख्यात संग्रह इनके द्वारा ही किये गये हैं। वररुचि और गुणाढ्य इस दृष्टि से उल्लेखनीय है। बाद में इस परंपरा में जैन आचार्य हेमचंद हुए जो वैयाकरण होने के साथ-साथ कहानी के संगलन कर्ता भी थे।

BRAOU

भरतीय लोक कथाओं के प्रयोग की दृष्टि से बौद्ध और जैन परंपराएं भी बहुत महत्वपूर्ण है। गौतम बुद्ध का निर्वाण-काल 450 ई.पू. है। उनके लगभग 100 वर्षों के अंतर्गत, त्रिपाटिकों का संग्रह किया गया। जातक "खुद्दद कलिकाय" का एक अंग है। बौद्ध मत के प्रचार-प्रसार में इन लोक कथाओं का बहुत प्रयोग किया गया है।

महावीर स्वामी बुद्ध के लगभग समकालीन थे। उन्होंने अनेक लोक प्रचलित नीतिकथाओं का उपयोग धर्मप्रचार की दृष्टि से किया। सामान्य लोक कथाओं को धार्मिक रूप प्रदान किया गया। जैन कथाएं चूर्णि, चूर्णा, चूर्णिका आदि नामों से पुकारी जाती हैं। ये नैतिक कथाएं हैं जो लोक-स्त्रोत से ग्रहीत हैं।

बौद्ध जीव जंतु कथाओं को अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त है। इनका विशाल भंडार प्राप्त है। यह महाकाव्यों की कथाओं से भी अधिक विशाल है। जैनों के द्वारा दृष्टांत अथवा रूपक कथा के रूप में, लघु लोक कथाओं का प्रयोग कुशलता के साथ किया गया है।

इन धर्म-कथाओं और नीतिकथाओं की परंपरा के साथ ही विशुद्ध कथा परंपरा "बृहत्कथा" के रूप में मिलती है। ये कथाएं गुणाढ्य के द्वारा पैशाची प्राकृत में लिखी गई हैं। यह कथासंग्रह लगभग 700 ई.पू. में हुआ। ये कथाएं धार्मिक अभिप्रायों से मुक्त हैं। इसका मूल रूप अप्राप्त है। इसके कुछ अंशों का अनुवाद संस्कृत में सोमदेव ने कथा सरित्सागर के नाम से और क्षमेंद्र ने बृहत्कथा कहानी नाम से किया। भारतीय लोक कहानी को इस परंपरा ने महत्वपूर्ण योगदान दिया।

बाद के कथा संकलन इस परंपरा से प्रभावित रहे। हेमचंद्र ने कल्पित कथा और कूट कथानक (= पहेलिका) इन दो शब्दों का उल्लेख किया है। 16वीं शती में अम्मजद ने प्रसिद्ध बेताल कहानियां लिखी। ये कथा पहेलिका ही कही जा सकती है।

लोक गीतः

प्रेम और विरह काव्यों में लोकगीतों का प्रयोग होता रहा है। लोक गीतों में प्रेम की सहज व्यंजना कितनी गहरी होती है उतनी अभिजात भाषा में नहीं हो सकती। इसीलिए परिनिष्ठित भाषाओं में लिखे काव्यों में भी लोकगीतों का प्रयोग किया जाता है। उनके अनुकरण पर भी गीत रचे जाते हैं। कालिदास ने विक्रमोर्वशीय में राजा की विरह वेदना को व्यक्त करने के लिए लोकभाषा के लोकप्रचलित रूप का प्रयोग किया है। "संदेशरासक" के कवि अद्दहमाण ने भी इस प्रणाली को अपनाया है। विद्यापति "कीर्तिलता" में जहां चारण शैली की परिनिष्ठित भाषा का प्रयोग करता है, वहां प्रेम-भक्ति श्रृंगार के गीतों के लिए लोकभाषा मैथिली और लोकगीत शैली को अपनाता है।

BRAOU

आधुनिक हिन्दी कविता पर लोक गीतों का प्रभावः

केवल पुराना साहित्य ही लोक साहित्य से जीवन और प्रभाव नहीं ग्रहण करता, आधुनिक साहित्य भी लोक साहित्य से कुछ न कुछ लेता-देता आया है। पं. रामचंद्र शुक्ल ने साहित्य और लोक साहित्य का संबंध इन शब्दों में प्रकट किया था "जब-जब शिष्टों का काव्य पंडितों द्वारा बंधकर निश्चेष्ट और संकुचित होगा, तब-तब उसे सजीव और चेतन प्रसार देश की सामान्य जनता के बीच हुई प्राकृतिक भाव धारा से जीवनतत्व ग्रहण करने से ही प्राप्त होगा"। जिस प्रकार मध्यकालीन सिद्ध, संत और भक्त कवि लोक साहित्य की प्रेरणा और सामग्री लेकर साहित्य को जीवन और जन-व्यापी बनाते रहे, उसी प्रकार आधुनिक युग में हिन्दी कथा साहित्य और काव्य लोक साहित्य से प्रभावित हुआ।

भारतेन्दु जी ने लोक गीतों और लोक नाट्य का पर्याप्त प्रयोग अपने सहित्य में किया। एक मुकरी का प्रयोग कितना सजीव हुआ हैः-

भीतर-भीतर सब रस चुसे
हंसि हंसि के तन-मन धन मूंसे।
जाहिर बातन में अति तेज
क्यों सखि साजन? नहीं अंगरेज।

भारतेन्दु के अनेक सहयोगी होली, कनली, बिरह जैसे लोकगीत रूपों का प्रयोग अपने व्यंग्य साहित्य में करते रहे। द्विवेदी युग तथा छायावादी युग के साहित्य पर लोक साहित्य का प्रभाव क्षीण रहा। फिर भी निराला जैसे कवि इसके प्रभाव को लेकर चले। निराला के काव्य पर कहीं-कहीं लोक संस्कृति और लोक साहित्य का गहरा प्रभाव दिखलाई पड़ता है। आल्ह-गीत की तर्ज पर उन्होंने कुछ लिखा- "काले-काले बादल छाये आये वीर जवाहर लाल"। केदारनाथ अग्रवाल, नागार्जुन एवं त्रिलोचन में लोक गीतों का प्रचुर गीतों का प्रचुर प्रभाव दिखलाई पड़ता है। अज्ञेय के कुछ गीतों पर यह प्रभाव स्पष्ट है-"ओ मिया पानी बरसा"। "फूल कचानार के" केदारनाथ का एक गीत देखिए-

धान उगेंगे कि प्राण उगेंगे
    उगेंगे हमारे खेत में।
    आनाजी बादल जरूर।
चंदा को बांधेंगे कच्ची कलगियां
    सूरज को सूखी रेत में।
    आनाजी बादल जरूर॥

बच्चन जी ने लोक धुन का प्रचुर प्रयोग किया। नव गीत में लोक साहित्य के तत्व बहुत मिलते हैं।

कविता के क्षेत्र में ही नहीं लोक साहित्य और लोक संस्कृति के तत्वों का प्रयोग कहानी और उपन्यास की विधाओं में भी मिलता है। उदाहरण के लिए इनके प्रयोग की आधुनिक परंपरा को प्रेमचंद के कथा साहित्य से जोड सकते हैं। प्रेमचंद का सारा कृतित्व लोकतत्वों से सहज और स्वाभाविक बना है। नागार्जुन और फणीश्वरनाथ रेणु के आंचलिक उपन्यासों में तो अधिकांश सौंदर्य लोकतत्वों का ही है। इनमें लोक मानस के प्रतिबिंब, लोक शब्दावली और लोकोक्तियों का प्रयोग, लोक प्रथाओं और विश्वासों का चित्रण तथा लोक काव्यरूपों का उपयोग मिल जाता है।

5.5 विशेष शब्दावली

BRAOU

लोक संस्कृति	=	Folk Culture
लोक साहित्य	=	Folk Literature
लोक वार्ता	=	Folklore
मानव विज्ञान	=	Anthropology
पराप्राकृतिक	=	Super Natural
पुरातत्व	=	Archeology
टोना	=	Magic
अभिप्राय	=	Motif
वीरगीत	=	Ballad
त्रिपिटक	=	बौद्धों का धर्म ग्रंथ
अरेस्ता	=	पारसियों का धर्म ग्रंथ और भाषा।

5.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

5.6.1 'अ' श्रेणी के प्रश्न

निम्न लिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 250 शब्दों में दीजिएः-

1. लोक-संस्कृति के अध्ययन की सामग्री किन-किन स्त्रोतों से प्राप्त होती है?
2. लोक-साहित्य के विविध रूपों का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
3. लोक साहित्य की भारतीय परंपरा का निरूपण कीजिए।
4. आधुनिक हिन्दी कविता पर लोक गीतों का प्रभाव स्पष्ट कीजिए।

5.6.2 'ब' श्रेणी के प्रश्न

निम्न लिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 125 शब्दों में दीजिएः-

1. लोक-सांस्कृति किसे कहते हैं?
2. पुरातत्व से लोक-संस्कृति की क्या जानकारी प्राप्त कर सकते हैं?
3. लोक-साहित्य और साहित्य के साम्य-वैषम्य का निरूपण कीजिए।
4. लोक-साहित्य में लोक जीवन और संस्कृति किस रूप में प्रतिफलित होते हैं?
5. लोक-गीत की विशेषता बताकर उसके प्रकारों की व्याख्या कीजिए।
6. सभ्य जीवन में अवशिष्ट लोक-संस्कृति के तत्वों पर विचार कीजिए।

5.7 नमूने के प्रश्नोत्तर

सूचना-सभी प्रश्न उपशीर्षकों पर आधारित है। इसीलिए अलग नमूने के उत्तर नहीं दिये गये हैं।

5.8 पठनीय पुस्तकें

1. हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहासः सोलहवा भाग : हिन्दी का लोक साहित्य
2. ब्रज लोक साहित्य का अध्ययन : डॉ. सत्येन्द्र
3. भोजपुरी लोक साहित्य का अध्ययन : डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय,
4. आंध्र के लोक गीत : डॉ. राजशेषगिरिराव
5. भारतीय लोक साहित्य की रूप रेखा : डॉ. दुर्गा भागवत।

BRAOU

BRAOU

आंध्र प्रदेश सार्वत्रिक विश्वविद्यालय

स्नातक परीक्षा - तृतीय वर्ष - हिन्दी पाठ्यक्रम

हिन्दी साहित्य

विषयः हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहास

पाठ्यक्रम

खण्ड-1ः भाषा का उद्भव और विकास

इकाई-1 : भाषा और साहित्यः सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ

1. भाषा
2. भाषा, समाज और संस्कृति
3. भाषा के प्रकार
4. साहित्य, समाज और संस्कृति
5. साहित्य और साहित्येतिहास
6. मूल्यांकन

इकाई-2 : भारत की बहुभाषिक स्थिति

1. भारत का भौगोलिक स्वरूप
2. भारत की भौगोलिक स्थिति का भारतीय जनजीवन पर प्रभाव
3. भारत में विभिन्न भाषा परिवार और भाषाएँ
4. प्राचीन एवं मध्यकालीन भारत में भाषाओं की स्थिति
5. आधुनिक भारत में भाषाओं की स्थिति
6. भारत की बहुभाषिक स्थिति और उसमें हिन्दी का स्थान
7. भारत के संविधान में भाषाओं की स्थिति
8. भाषा संघ एवं आधुनिक जीवन में बहुभाषा ज्ञान की आवश्यकता और हिन्दी की भूमिका

BRAOU

इकाई-3 : भारत की प्राचीन और आधुनिक भाषाएँ

1. भारतीय आर्यभाषा
2. प्राचीन आर्यभाषा
3. मध्यकालीन आर्यभाषा
4. आधुनिक आर्यभाषाएँ
5. आर्येतर जातियाँ और भाषाएँ
6. आर्य-अनार्य संपर्क

इकाई-4 : भौगोलिक हिन्दी क्षेत्र का ऐतिहासकि परिप्रेक्ष्य

1. भाषा और साहित्य के साथ भौगोलिक स्थिति और जीवन का संबंध
2. हिन्दी प्रदेश या मध्य देश का भौगोलिक स्वरूप
3. हिन्दी क्षेत्र के भौगोलिक-स्वरूप का हिन्दी भाषा और साहित्य के साथ संबंध
4. हिन्दी प्रदेशः ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य
5. हिन्दी भाषा और साहित्य पर इस्लामी धर्म और संस्कृति का प्रभाव
6. हिन्दी भाषा और साहित्य पर अंग्रेजी शासन, यूरोपीय चिंतन और संस्कृति का प्रभाव

इकाई-5 : हिन्दी की बोलियाँ और विभाषाएँ

1. हिन्दी क्षेत्र
2. हिन्दी की बोलियाँ
3. हिन्दी बोलियों का वर्गीकरण
4. पश्चिमी हिन्दी
5. पूर्वी हिन्दी
6. राजस्थानी वर्ग
7. पहाड़ी वर्ग
8. बिहारी वर्ग

इकाई-6 : हिन्दी की प्रमुख साहित्यिक बोलियाँः ब्रज और अवधी

1. प्रस्तावना
2. आदिकालीन साहित्यिक बोलियाँ
3. मध्यकाल की साहित्यक बोलियाँ
4. अवधी
5. ब्रजभाषा

इकाई-7 : खड़ीबोली हिन्दी का ऐतिहासक विकास और प्रसार

1. खड़ीबोली के विकास के कारण
2. संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश
3. आदिकाल में विकास
4. मध्यकाल में विकास
5. आधुनिक काल में विकास
6. साहित्येतर क्षेत्रों में प्रयोग
7. संपर्क भाषा, राष्ट्र भाषा, राजभाषा

इकाई-8 : हिन्दी के विविध रूप- हिन्दी, उर्दू, हिन्दुस्तानी और दक्खिनी

1. हिन्दी का भाषिक परिवेश, उसके विविध रूप और विविध नाम
2. हिन्दी, उर्दू, हिन्दूस्तानी और दक्खिनी का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य
3. हिन्दी, उर्दू, हिन्दूस्तानी और दक्खिनी और अन्य रूपों का भाषिक संगठन
4. हिन्दी के विभिन्न रूपों पर विभिन्न भाषाओं का प्रभाव तुलनात्मक विवेचन
5. हिन्दी के विविध रूपों का प्रयोग क्षेत्रः साहित्य एवं साहित्येतर क्षेत्र-सीमाएँ एवं संभावनाएँ

इकाई-9 : प्रयोजनमूलक हिन्दी और उसकी विभिन्न शैलियाँ

1. प्रयोजनात्मक भाषा शैली का तात्पर्य
2. प्रयोजनमूलक भाषा-प्रयोग के क्षेत्र
3. प्रशासन का क्षेत्र
4. वैज्ञानिक तकनीकी क्षेत्र
5. विधि और न्याय का क्षेत्र
6. वाणिज्य-व्यापार-बैंकों का क्षेत्र
7. प्रयोजनमूलक शैलियों का विकासः आधारभूत विचारधाराएँ
8. प्रयोजनमूलक प्रयुक्तियों के अन्य क्षेत्र

BRAOU

इकाई-10 : हिन्दी भाषा के आधुनिकीकरण के प्रयत्न

1. भाषा और समाज
2. समाज का विकास और भाषा का विकास
3. दो भिन्न संस्कृतियों का दृष्टिकोण और भाषा के विकास का संदर्भ
4. पुनर्जागरण युग और हिन्दी के आधुनिकीकरण का प्रारंभ
5. भाषा आधुनिकीकरण का पहला संदर्भ- भाषा रूप व प्रतिमान का चयन
6. भाषा आधुनिकीकरण का दूसरा संदर्भ- भाषा के प्रयोग क्षेत्रों का विस्तार
7. भाषा आधुनिकीकरण का तीसरा संदर्भ- पारिभाषिक शब्दावली का निर्माण व प्रयोग
8. भाषा आधुनिकीकरण का चौथा संदर्भ- मानवीकरण
9. भाषा आधुनिकीकरण का पाँचवा संदर्भ- मशीनीकरण
10. सामाजिक संस्कृति का संदर्भ- हिन्दी भाषा और साहित्य का आधुनिकीकरण

इकाई-11 : हिन्दीतर प्रांतों और विदेशों में हिन्दी भाषा और साहित्य

1. हिन्दी, उर्दू और हिन्दुस्तानी
2. हिन्दीतर प्रांतों में हिन्दी का विकासः दक्खिनी
3. हिन्दी प्रचार आन्दोलन
4. हिन्दी साहित्य को हिन्दीतर प्रांतों की देन
5. विदेशों में हिन्दी का प्रसार

खण्ड-2 : हिन्दी साहित्य का आदिकाल

इकाई-1 : साहित्य का इतिहासः दृष्टिकोण और स्वरूप

1. इतिहास, साहित्येतिहास और इतिहास दर्शन
2. साहित्येतिहास लेखन की समस्यायें
3. हिन्दी साहित्येतिहास लेखन की समस्यायें
4. साहित्येतिहास लेखन की पद्धति
5. साहित्येतिहास और इतिहास-दृष्टि
6. मूल्यांकन

BRAOU

इकाई-2 : हिन्दी साहित्य का इतिहासः दृष्टिकोण-काल विभाजन और नामकरण

1. साहित्य का इतिहास
2. शुक्ल पूर्व हिन्दी साहित्य का इतिहास लेखन
3. शुक्लोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास लेखन
4. साहित्येतिहास लेखन की दृष्टि
5. हिन्दी साहित्य के इतिहास के विविध विकास चरण
6. काल विभाजन और नामकरणः मूलाधार
7. हिन्दी साहित्य के इतिहास में काल विभाजन और नामकरण

इकाई-3 : आदिकालः सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ

1. राजनीतिक परिस्थिति
2. धार्मिक परिस्थिति
3. सामाजिक एवं पारिवारिक परिस्थिति
4. साहित्यिक परिस्थिति
5. सांस्कृतिक परिस्थिति
6. आदिकालीन साहित्य की सांस्कृतिक पीठिका

इकाई-4 : आदिकालः साहित्यिक प्रवृत्तियाँ और काव्यधाराएँ

खण्ड-3 : हिन्दी साहित्य का मध्यकाल

इकाई-1 : भक्तिकालः सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ

1. भूमिका
2. राजनीतिक संदर्भ
3. सामाजिक संदर्भ
4. धार्मिक संदर्भ
5. सांस्कृतिक संदर्भ
6. प्रेरणासूत्र और प्रभाव

इकाई-2 : भक्तिकालः साहित्यिक चेतना और प्रवृत्तियां

1. नवीन साहित्यिक चेतना
2. व्यापक जीवनाधार
3. जीवन मूल्यों का पोषण
4. सामान्य मानवीय भाव भूमि
5. नवीन सौंदर्य दृष्टि
6. भक्ति साहित्य की प्रवृत्तियाँ

इकाई-3 : भक्तिकालः काव्यधाराएँ और काव्यरूप

1. भक्तिकाव्य का वर्गीकरण
2. समान तत्व
3. ज्ञानाश्रयी शाखा
4. सूफी प्रेमाश्रयी शाखा
5. रामभक्ति शाखा
6. कृष्णभक्ति शाखा
7. अन्य काव्य धाराएँ

BRAOU

इकाई-4 : रीतिकालः सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ

1. भूमिका
2. राजनीतिक संदर्भ
3. सामाजिक संदर्भ
4. धार्मिक संदर्भ
5. सांस्कृतिक संदर्भ
6. युगीन संदर्भ और साहित्य

इकाई-5 : रीतिकालः काव्यधाराएँ, काव्य-रूप और भाषा

1. भूमिका
2. रीतिकाव्य
3. रीतिबद्ध काव्यधारा
4. रीतिसिद्ध काव्यधारा
5. रीतिमुक्त काव्यधारा
6. वीर काव्य
7. भक्ति काव्य
8. नीति काव्य
9. काव्य रूप
10. काव्य, भाषा और छन्द
11. मूल्यांकन

खण्ड-4: हिन्दी साहित्य का आधुनिक काल

इकाई-1 : आधुनिक कालः सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ

1. मध्यकालीनता से आधुनिकता की ओर
2. आधुनिक जीवन में परिवर्तन
3. नया आर्थिक ढाँचा
4. यातायात के साधन
5. प्रेस और जनमत
6. भारतीय नवजागरण
7. आधुनिक जीवन में परिवर्तन के कारण
8. नवीन भारत-- युरोप संपर्क
9. युवा विद्रोह

इकाई-2 : आधुनिक साहित्यः चिन्तन धाराएँ

1. सुधारवाद
2. पुनरुत्थानवाद
3. नवजागरण और राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम
4. क्रंति की भावना
5. नवीन चिंतनः तकनीकी विकास और औद्योगिक जीवन की समस्याएँ
6. अस्तित्ववाद और नया साहित्य
7. साहित्य में आधुनिक बोध

इकाई-3 : आधुनिक कालः साहित्यिक चेतना और सौंदर्य बोध

1. मध्यकालीन संवेदना बनाम आधुनिक साहित्यिक चेतना
2. साहित्यिक चेतना के विविध आयाम
3. नये साहित्य रूप
4. मध्यकालीन सौंदर्य बोध बनाम आधुनिक सौंदर्य बोध
5. सौंदर्यबोध का विकास
6. स्वच्छंदतावादी सौंदर्य बोध
7. मार्क्सवादी सौंदर्य बोध
8. बौद्धिक चिंतन से उत्पन्न सौंदर्य बोध

BRAOU

इकाई-4 : साहित्य को प्रभावित करने वाले विभिन्न वाद

1. विचारधारा, वाद और साहित्य
2. आदर्शवाद
3. मानववाद
4. राष्ट्रवाद
5. व्यक्तिवाद
6. स्वच्छन्दतावाद
7. प्राकृतवाद
8. यथार्थवाद
9. मार्क्सवाद
10. मूल्यांकन

इकाई–5 : हिन्दी काव्यधाराएंः प्रवृत्तिमूलक ऐतिहासिक विश्लेषण

1. भारतेन्दु युग
2. द्विवेदी युग
3. छायावाद युग
4. प्रगतिवाद
5. प्रयोगवाद
6. साठोत्तरी जनवादी कविता
7. मूल्यांकन

इकाई–6 : हिन्दी निबंधः ऐतिहासिक विकास और वर्गीकरण

1. निबंध की परिभाषा और महत्व
2. हिन्दी निबंध साहित्य
3. भारतेन्दु युग
4. भारतेन्दु युगीन निबंधों की विशेषताएँ
5. भारतेन्दु युग के निबंध साहित्य का मूल्यांकन
6. द्विवेदी युग
7. द्विवेदी युगीन निबंध साहित्य की विशेषताएँ
8. द्विवेदी युग के प्रमुख निबंधकार
9. द्विवेदी युग के निबंधों का मूल्यांकन
10. शुक्ल युग
11. वर्तमान युग

इकाई–7 : हिन्दी उपन्यास साहित्यः प्रवृत्तिमूलक ऐतिहासिक विश्लेषण

1. उपन्यास की परिभाषा
2. उपन्यास के तत्व
3. उपन्यास के प्रकार
4. हिन्दी उपन्यासों का प्रवृत्यात्मक विकास
5. मूल्यांकन

इकाई–8 : हिन्दी कहानीः प्रवृत्तिमूलक ऐतिहासिक विकास

1. प्रस्तावना
2. पाश्चात्य प्रेरणा से नई विधा का आरंभ
3. संस्कृत साहित्य में कहानी
4. हिन्दी में कहानी का आरंभ
5. स्वतंत्रता से पूर्व हिन्दी कहानी का विकास
6. नई कहानी
7. अ–कहानी आन्दोलन
8. सचेतन कहानी
9. समान्तर कहानी
10. हिन्दी कहानी की नई दिशाएँ
11. नयी कहानी का शिल्प

BRAOU

इकाई-9 : हिन्दी नाटकः ऐतिहासिक विकास और नये रूप

1. हिन्दी नाट्य साहित्य
2. भारतेन्दु-पूर्व नाट्य परंपरा
3. भारतेन्दु युग
4. द्विवेदी युग
5. प्रसाद युग
6. प्रसदोत्तर युग

इकाई-10 : एकांकी और श्रव्य रूपकः ऐतिहासिक विकास-क्रम

1. एकांकी की परिभाषा
2. एकांकी के तत्व
3. एकांकी के प्रकार
4. हिन्दी एकांकी का विकास
5. श्रव्य-रूपक की परिभाषा
6. श्रव्य रूपक के तत्व
7. रेडियो रूपक के प्रकार
8. हिन्दी में रेडियों-रूपक का विकास
9. मूल्यांकन

खण्ड-5: सामाजिक-साहित्यिक गतिविधि

इकाई-1 : भारतीय सामाजिक जीवन और संस्कृति (पूर्व आधुनिक काल)

1. भारतीय सामाजिक व्यवस्थाः सामंतवाद के परिप्रेक्ष्य में
2. भारतीय संस्कृतिः विकास के संदर्भ में
3. मूल्यांकन

इकाई-2 : आधुनिक भारतीय जीवनः सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ

1. भारतीय सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन का विकास
2. मध्य युगीन भारतीय सामाजिक जीवन एवं संस्कृति
3. आधुनिक भारतीय सामाजिक जीवन एवं संस्कृति
4. नई शिक्षा के दुष्परिणाम
5. भारतीय संस्कृति का नवोत्थान
6. धार्मिक सुधार
7. समाज सुधार
8. नवीन आध्यात्मिक-सांस्कृतिक चेतना का विकास
9. आधुनिक भारत की नवीन सामाजिक सांस्कृतिक चेतना

इकाई-3 : समसामयिक संदर्भः सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश और चिंतन

1. समसामयिकताः अर्थ और परिधि
2. नया युग
3. नया परिवेश
4. विकृत आधुनिकता
5. नवीन चिंतन
6. समसामयिक चिंतन और साहित्य

BRAOU

इकाई-4 : समसामयिक हिन्दी साहित्य: आधुनिकता बोध

1. आधुनिकता: अर्थ और अवधारणा
2. भारतीय आधुनिकता
3. विश्व की आधुनिकता और भारत
4. साहित्य: आधुनिक दृष्टि
5. साहित्य की नई धाराएँ
6. साहित्य की विधाओं में आधुनिकता

इकाई-5 : लोक संस्कृति और लोक साहित्य

1. लोक संस्कृति
2. भारतीय लोक संस्कृति
3. लोक संस्कृति-अध्ययन की सामग्री
4. हिन्दी क्षेत्र और उसकी संस्कृति
5. लोक साहित्य
6. भारतीय लोक साहित्य
7. लोक साहित्य के प्रकार
8. भारतीय लोक साहित्य और साहित्य

BRAOU

FACULTY OF ARTS

B.A. III Year (3 Year Degree Course) Examination

HINDI LITERATURE

Model Question Paper

PAPER III

Hindi Bhasha Aur Sahitya Ka Itihas

Time 3 Hours] [Max. Marks 100
Min. Marks 35

खण्ड–अ (15 x 4 = 60)

ध्यान दें:– 1. इस खण्ड में से केवल 4 प्रश्नों के उत्तर दें।
2. सभी प्रश्नों के अंक समान हैं।
3. प्रत्येक प्रश्न का उत्तर 250 शब्दों में दें।

1. भारतीय संस्कृति की मूलभूत अवधारणा को समझाइये।
2. हिन्दी क्षेत्र के भौगोलिक स्वरूप को स्पष्ट कीजिये।
3. भारत की प्राचीन और आधुनिक भाषाओं पर प्रकाश डालिये।
4. हिन्दी की विभिन्न विभाषाओं और बोलियों का विवरण लिखिये।
5. खड़ी बोली हिन्दी का ऐतिहासिक विकास और प्रसार समझाइये।
6. हिन्दी के विविध रूप– हिन्दी, उर्दू, हिन्दुस्तानी और दक्खिनी को स्पष्ट कीजिये।
7. लोक साहित्य और अभिजात्य साहित्य में क्या अंतर है।
8. प्रयोजनमूलक हिन्दी और उसकी विभिन्न शैलियों पर प्रकाश डालिये।

BRAOU

खण्ड–ब (15 x 4 = 60)

ध्यान दें:– 1. इस खण्ड के 5 प्रश्नों के उत्तर दें।
2. प्रत्येक प्रश्न का उत्तर 125 शब्दों में दें।
3. सभी प्रश्नों के अंक समान है।

9. साहित्येतिहास के लेखन की क्या समस्यायें होती है।
10. हिन्दी साहित्य के इतिहास के काल विभाजन और नामकरण पर प्रकाश डालिये।
11. आदि काल की प्रमुख प्रवृत्तियों का विवेचन कीजिये।
12. पृथ्वीराज रासो की प्रामाणिकता क्यों संदिग्ध है? तर्क दीजिए।
13. भक्तिकालीन साहित्य में कौन सी नवीन साहित्यिक चेतना उभर कर आई?
14. भक्ति काल की विभिन्न काव्य–धाराओं को स्पष्ट कीजिये।
15. रीति काव्य की प्रवृत्तियों को समझाइये।
16. रीति काव्य के काव्यरूप और भाषा पर प्रकाश डालिये।
17. हिन्दी के कहानी–साहित्य के ऐतिहासिक विकास और वर्गीकरण को समझाइए।
18. हिन्दी के एकांकी और श्रव्य रूपकों के उद्भव और विकास को समझाइए।

BRAOU

FACULTY OF ARTS

B.A. III Year (3 Year Degree Course) Examination
Academic Year 1990-91

Third Assignment

HINDI LITERATURE

PAPER III

Hindi Bhasha Aur Sahitya Ka Itihas

खण्ड–अ

ध्यान दें:–

1. सभी प्रश्नों के उत्तर लिखें।
2. प्रश्नों के उत्तर अपने शब्दों में लिखें।
3. उदाहरण देना आवश्यक हो तो सही उद्धरण दें।
4. प्रत्येक प्रश्न का उत्तर 250 शब्दों से कम न हो।

प्रश्नः–

1. छायावादी काव्यधारा का महत्व स्पष्ट कीजिए।
2. लोक साहित्य के विविध रूपों का परिचय दीजिए।

BRAOU

खण्ड–ब

ध्यान दें:–

इस खण्ड के प्रश्न का उत्तर लगभग 125 शब्दों में लिखें।

प्रश्नः–

1. बुद्धिवाद और वैज्ञानिक दृष्टि से क्या तात्पर्य है?

BRAOU

BRAOU

BRAOU

BRAOU

UNIVERSITY AT YOUR DOOR STEP

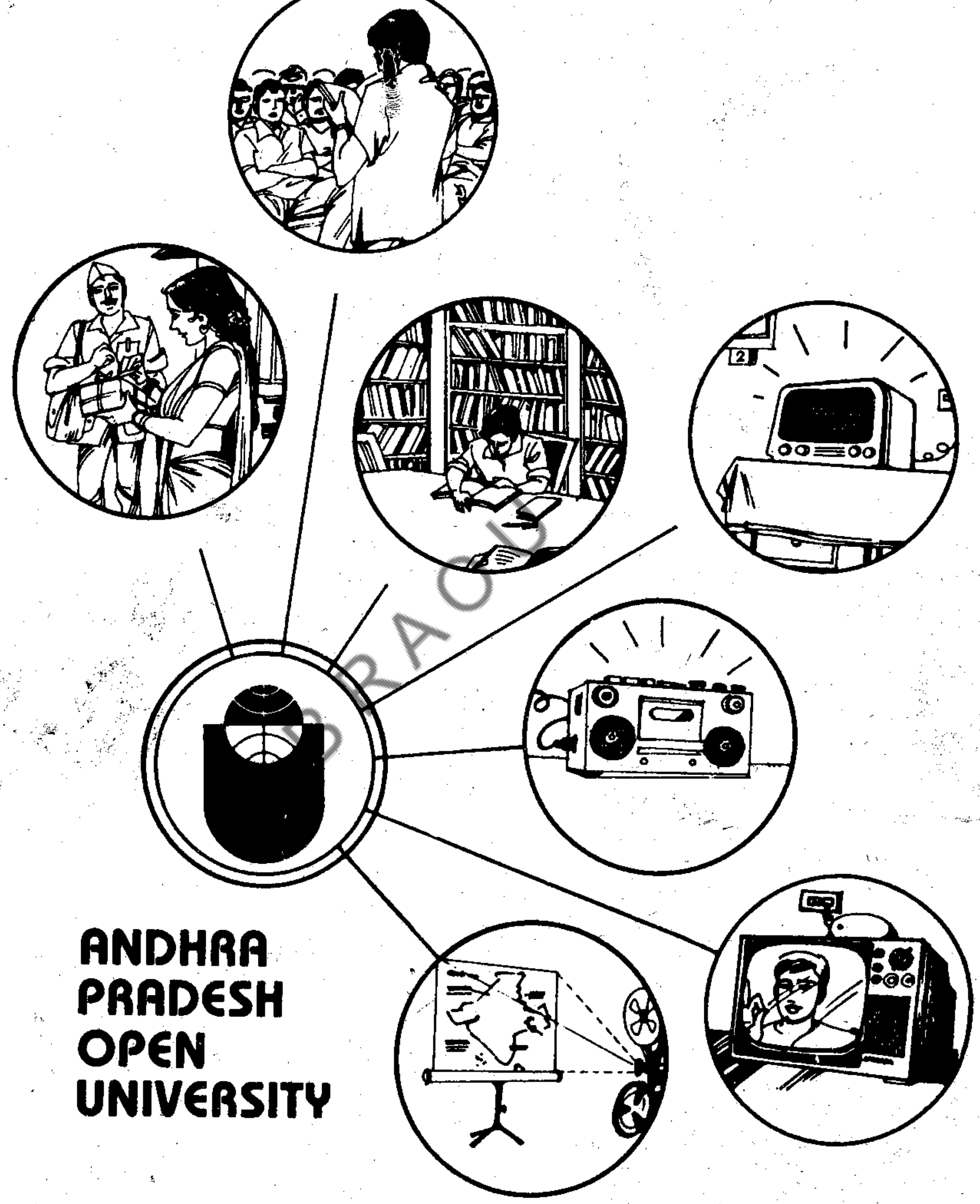

BRAOU

ANDHRA PRADESH OPEN UNIVERSITY

6-3-645, SOMAJIGUDA, HYDERABAD - 500 004.